

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# सीमा के भीतर असीम प्रकाश



परमश्रद्धेय स्वामीजी

श्रीरामसुखदासजी महाराज



गीता प्रकाशन, गोरखपुर

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# श्रीमाके भीतर अशीम प्रकाश

[ परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके  
प्रवचनोंका सार-संग्रह ]

~~~~~  
त्वमेव माता च पिता त्वमेव  
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।  
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव  
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥  
~~~~~

संकलनकर्ता—

राजेन्द्र कुमार धवन

प्रकाशक—गीता प्रकाशन,  
गीता-सत्संग-मण्डल,  
कसौधन पंचायती मन्दिर (हरिवंश गली),  
गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)

सम्पर्क-सूत्र—093 895 93 845; radhagovind10@gmail.com

## नम्र निवेदन

जीवन्मुक्त-तत्त्वज्ञ-भगवत्प्रेमी महापुरुष परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज रात-दिन इसी खोजमें लगे रहते थे कि मनुष्यमात्रका शीघ्रतासे तथा सुगमतासे कल्याण कैसे हो? इस विषयमें उन्होंने अनेक क्रान्तिकारी उपायोंकी खोज की और उन्हें अपने पुस्तकोंके माध्यमसे लोगोंतक पहुँचाया। प्रस्तुत पुस्तकमें परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा जुलाई १९९८ से लेकर दिसम्बर १९९९ तक दिये गये प्रवचनोंका सार-संग्रह दिया गया है। ये प्रवचन क्रमशः जोधपुर, वृन्दावन, बीकानेर, कोलकाता, सूरत, ढालेगाँव, नासिक, गाँधीधाम, गोरखपुर, पुरी, कानपुर, लखनऊ, दिल्ली, नोखा, चरखी-दादरी, भिवानी, चुरु, रतनगढ़ और श्रीडूंगरगढ़में दिये गये थे। इन प्रवचनोंमें लोक और परलोकका सुधार करनेवाली अनेक महत्त्वपूर्ण बातोंका समावेश हुआ है। ऐसी कौन-सी बाधाएँ हैं, जिनके कारण साधककी उन्नति नहीं हो रही है, उनका परिचय भी इस पुस्तकमें मिलेगा। इसमें परमात्मप्राप्तिकी ऐसी सरल-सरल युक्तियोंका भी प्राकट्य हुआ है, जिन्हें पढ़नेपर साधकको लगेगा कि परमात्मप्राप्ति अब दूर नहीं!

सन्त शरीरसे प्रकट नहीं होते, अपितु वाणीसे प्रकट होते हैं। परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज वर्तमानमें शरीररूपसे हमारे दृष्टिगोचर नहीं हैं, पर वाणीरूपसे वे हमारे बीच ज्यों-के-त्यों विद्यमान हैं और सदा विद्यमान रहेंगे। उनकी हृदयस्पर्शी वाणी युगोंतक साधकोंका मार्गदर्शन करती रहेगी।

श्रीस्वामीजी महाराजके सिद्धान्तसे, उनके विचारोंसे पूर्णतः परिचित होनेके लिये उनके सम्पूर्ण साहित्यका अध्ययन करना चाहिये।

किसी भी देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदिका कोई भी जिज्ञासु यदि प्रस्तुत पुस्तकका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करेगा तो उसके साधनमें अवश्य उन्नति होगी, इसमें सन्देह नहीं है। परमार्थ-पथके पथिक प्रत्येक साधकसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि कम-से-कम एक बार तो इस पुस्तकको अवश्य ही पढ़ें।

वसन्तपञ्चमी  
विक्रम संवत् २०६७

निवेदक  
राजेन्द्र कुमार धवन



## सीमाके भीतर असीम प्रकाश

पराकृतनमद्वन्धं परं ब्रह्म नराकृतिः । सौन्दर्यसारसर्वस्वं वन्दे नन्दात्मजं महः ॥  
प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये । ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥  
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् । देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्  
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।  
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् ।  
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥  
हरिः ॐ नमोऽस्तु परमात्मने नमः ।  
श्रीगोविन्दाय नमो नमः ।  
श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः ।  
महात्म्यो नमः ।  
सर्वेभ्यो नमो नमः ।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

सबसे कीमती धन है—समय। समय लगानेसे धन मिल सकता है, पर धन लगानेसे समय नहीं मिलता। अगर धनके बदले समय मिलता तो धनी आदमी नहीं मरते; क्योंकि पैसे देकर वे अपनी उम्र और बढ़ा लेते। परन्तु **साठ वर्षोंमें जो धन कमाया है, उसके बदले साठ मिनट भी समय नहीं मिलता।** ऐसे अमूल्य समयको भगवान्‌के भजनमें और संसारकी सेवामें लगाना चाहिये। नहीं तो समय सब चला जायगा और मिलेगा कुछ नहीं। जो भगवान्‌के भजनमें समय लगाता है, वही चतुर आदमी है। दूसरेका धन लेनेमें तथा दूसरेका मन खींचनेमें तो वेश्या भी चतुर होती है—

**तुलसी सो नर चतुर है, राम भजन लवलीन।**

**पर-धन पर-मन हरण को, वेश्या भी परवीन ॥**

विचार करें, आज दिनतक जितना समय चला गया, उसमें हमने आध्यात्मिक उन्नति कितनी की है? इसमें लोग कलियुगको दोष देते हैं, पर वास्तवमें **कलियुग उनके लिये खराब है, जो भजन नहीं करते। भजन करनेवालोंके लिये कलियुग बहुत लाभदायक है, बड़ा सुन्दर मौका है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जिस तत्त्वको हम प्राप्त करना चाहते हैं, उससे हमारी सजातीयता होनी चाहिये, उसके समान स्वभाव होना चाहिये—‘**देवो भूत्वा यजेद्देवम्**’। हमारे पास जो स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर हैं, उन सबमें ‘**अहम्**’ (मैं-पन) मुख्य है। अहम् सबका राजा है। जिस काममें हम अहम्‌को मिला लेते हैं कि ‘मैं करता हूँ’, उसके साथ सब हो जाते हैं। उसके अनुसार ही फल मिलता है, गति होती है। इसलिये अगर आप परमात्माको प्राप्त करना चाहते हैं तो यह अहम् परमात्माके साथ मिलना चाहिये। तात्पर्य है कि **यदि आपको तत्त्वबोध चाहिये तो आपको ‘जिज्ञासु’ बनना होगा और भगवान्‌की प्राप्ति चाहिये तो आपको ‘भक्त’ बनना होगा,**

तभी आपकी उपासना सिद्ध होगी। 'मैं गृहस्थ हूँ'—इस प्रकार संसारका अहम् रहनेसे जल्दी सिद्धि नहीं होती। 'मैं गृहस्थ हूँ'—ऐसा मानेंगे तो गृहस्थका काम तो हरदम होगा, पर भगवान्का काम कभी-कभी होगा। कारण कि अहंता बदलनेपर उसका सम्बन्ध ध्येय वस्तुके साथमें हो जाता है, जो हरदम रहता है। यदि 'मैं साधक हूँ, परमात्माकी प्राप्ति चाहनेवाला हूँ'—ऐसा मान लें तो हरदम साधन-भजन होगा।

**भजन अखण्ड नहीं होता, पर सम्बन्ध अखण्ड होता है।** इसलिये आप 'मैं भगवान्का हूँ'—इस प्रकार अपना अहम् बदल दें अर्थात् भगवान्के साथ सम्बन्ध जोड़कर एक जातिके हो जायें तो जल्दी सिद्धि होगी। इसीलिये गोस्वामीजीने कहा है—'**होय राम को नाम जपु**' अर्थात् भगवान्का होकर भगवान्का भजन करो। जैसे बालक माँका होकर माँको पुकारता है तो माँको सब काम छोड़कर आना पड़ता है, ऐसे ही भगवान्का होकर भगवान्को पुकारो तो भगवान्को आना ही पड़ता है। छोटा बालक माँकी पीठपर भी चढ़ जाता है तो माँ राजी हो जाती है! बालकने माँको क्या दे दिया? पर माँका होनेके कारण बालककी हरेक चेष्टा माँको प्रसन्न करनेवाली होती है। ऐसे ही आप भगवान्के हो जाओ तो आपकी सब चेष्टाएँ भगवान्को प्रसन्न करनेवाली हो जायँगी।

**भगवान्का होनेका जो प्रभाव है, वह भजनका नहीं है। भगवान्का होकर भजन करनेसे जो शक्ति आती है, वह संसारका होकर भजन करनेसे नहीं आती। भगवान्का होकर भगवान्का भजनकरनेसे मनुष्य भगवान्से भी बड़ा हो जाता है—'राम ते अधिक राम कर दासा'** (मानस, उत्तर. १२०/८), **पर बड़ा होता है भगवान्से ही शक्ति पाकर।** वह शक्ति भगवान्का होनेसे ही प्राप्त होती है। भगवान्का होकर ही मनुष्य वह शक्ति ले सकता है। जैसे माँके दूधसे बच्चेमें शक्ति आती है, ऐसे ही भगवान्के साथ भक्तकी जितनी एकता, तल्लीनता होगी, उतनी ही भगवान्की शक्ति उसमें आ जायगी। राम-रामका टेप लगा दें तो उससे कल्याण नहीं हो जाता; क्योंकि उसमें भगवान्का सम्बन्ध नहीं है। **भगवान्का सम्बन्ध कल्याण करनेवाला है। इसी तरह संसारका सम्बन्ध पतन करनेवाला है।**

आजकलके गुरु चेलेको अपना बनाते हैं, पर पुरानी रीतिमें सन्त-महात्मा भगवान्का बनाते थे कि अब तुम भगवान्के हो गये। चेलेको भी विश्वास हो जाता कि 'गुरु महाराजने कह दिया तो मैं भगवान्का हो गया। महाराजकी बातको भगवान् कैसे टालेंगे? अब भगवान्को मुझे स्वीकार करना ही पड़ेगा'। इसलिये गुरुके पास जाकर चेला भगवान्का भक्त बन जाता था। इस प्रकार चेलेकी अहंताको बदल देना ही 'दीक्षा' कहलाती थी। इसलिये साधुओंमें ऐसा कहनेकी रीति थी कि भगवान्के (रामजीके) कितने घर हैं? इतने घर भगवान्के हैं। ऐसा नहीं कहते थे कि मेरे इतने घर (चेले) हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

साधक जो भी कार्य करे, संसारकी सेवा समझकर अथवा भगवान्की पूजा समझकर करे। **जो अपना काम करता है, उसका पतन होता है। कारण कि अपना सब काम बन्धन है।**

कोई भी काम करें, उसके तीन विभाग होते हैं कर्म, सेवा और पूजा। कर्म तो मजदूर भी कर देता है, पर सेवा और पूजा भावसे होती है, पैसोंके लिये नहीं होती। सबसे ऊँचा भाव पूजामें होता है। इसलिये पूजा-भाव सबसे श्रेष्ठ है—

**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।**

(गीता १८/४६)

'उस परमात्माका अपने कर्मके द्वारा पूजन करके मनुष्यमात्र सिद्धिको प्राप्त हो जाता है।'

जैसे किसी सेठका जो नौकर होता है, वह सेठके बेटेका भी नौकर होता है, ऐसे ही भगवान्का सेवक संसारका भी सेवक होता है; क्योंकि यह संसार भगवान्का ही है। पशु-पक्षी, वृक्ष-लता

आदि भी भगवान्‌के ही हैं। इसलिये सबका पालन-पोषण करो, सबका आदर करो, सबकी सेवा करो। सबको भगवान्‌का ही स्वरूप मानकर सबका पूजन करो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

गुरुकी महिमा भगवान्‌से भी अधिक मानी गयी है। पर गुरु वह होता है, जिसमें उद्धार करनेकी सामर्थ्य हो। परन्तु जो स्वयं तो उद्धार नहीं कर सकता, पर दूसरेको अपना शिष्य बनाकर उसे अन्य जगह जानेसे रोक देता है, वह दूसरेके कल्याणमें बाधा लगानेके कारण घोर नरकमें पड़ता है। अतः **जो दूसरेका उद्धार करनेमें समर्थ न हो, उसे गुरु बननेका अधिकार नहीं है।** यदि वह गुरु बनता है तो उसकी बड़ी दुर्दशा होती है।

एक सन्त (गीताप्रेसके संस्थापक श्रीजयदयालजी गोयन्दका) पूर्वजन्ममें एक राजाके मन्त्री थे। उनको वैराग्य हो गया तो वे मन्त्रीपद छोड़कर अच्छे विरक्त साधु हो गये। उनके पास कई साधु आकर रहने लगे। राजाके मनमें आया कि मैं मन्त्रीको ही अपना गुरु बना लूँ और मैं भी भजन करूँ। अतः राजा भी जाकर उनका शिष्य बन गया। जब गुरुका शरीर शान्त हो गया, तब वह राजा वहाँका महन्त हो गया। महन्त बनकर वह गुरुकी बात भूल गया और भोग भोगने लग गया। भोगोंमें लगनेके कारण वह मरनेके बाद नरकोंमें चला गया। मन्त्री ऊँचे लोकोंमें गया था। जब कालान्तरमें राजाका पुनर्जन्म हुआ तो मन्त्री (गुरु) ने भी पुनर्जन्म लिया और राजाको चेताया। राजा तो उनको पहचानता नहीं था, पर मन्त्री उनको पहचानता था। मन्त्रीने उनको सन्मार्गपर लानेकी खूब चेष्टा की। मन्त्रीने फिर उग्रभर किसीको शिष्य नहीं बनाया। तात्पर्य है कि गुरु शिष्यका उद्धार न कर सके तो शिष्यके उद्धारके लिये गुरुको पुनः संसारमें जन्म लेना पड़ता है। यह इतिहासकी बात है, कहानी नहीं है।

गुरु-शिष्यका सम्बन्ध केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही होता है। अतः जो परमात्माकी प्राप्ति करा दे, ऐसे सामर्थ्यवालेको ही गुरु बनाना चाहिये। आपसे तो मेरा यह कहना है कि किसीको गुरु मत बनाओ। भगवान्‌को गुरु मान लो — **‘कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्’**। मनुष्यको ही अपना गुरु बनाये, ऐसा विधान नहीं है। सन्त चरणदासजीके गुरु शुकदेवजी बन गये। भगवान्‌ने अपनी प्राप्तिके लिये मानवशरीर दिया है तो गुरु भी साथमें दिया है। वह गुरु है—विवेक।

**गुरु-शिष्यका सम्बन्ध न जोड़कर सत्संग करना चाहिये और अच्छी बातोंको ग्रहण करना चाहिये। फिर आप सन्त-महात्मा हो जाओगे।** पहले सुगम बातोंको काममें लाओ, फिर कठिन बातें भी सुगम हो जायँगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मकान बनता है तो बहुत हिंसा, हत्या होती है। अच्छे आदमी मकान नहीं बनाते। ‘सूरसागर’ (जोधपुर) में राजाकी बनायी छतरीके नीचे महाराज रहते थे। लोगोंने उनके रहनेके लिये मकान बना दिया तो महाराज कई वर्षोंतक वहाँ नहीं आये। फिर बहुत प्रार्थना करनेपर आये। मकान बनाना बड़ी हत्याका, हिंसाका काम है। इसलिये इसे सन्त पसन्द नहीं करते कि हमें जरूरत नहीं है मकानकी। मकान बनानेसे बड़ा भारी अनर्थ होता है। जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े, गिलहरी सब खुला फिरते हैं। मकान बनाकर उन बेचारोंके आड़ लगा दी! खुले फिरनेवाले जीवोंके आड़ लगा दी, उनकी स्वतन्त्रतामें बाधा दे दी, यह पाप कम है क्या? बड़ा भारी पाप है।

हिंसा तीन प्रकारकी होती है—कृत (स्वयं हिंसा करना), कारित (किसीसे हिंसा करवाना) और अनुमोदित (हिंसाका अनुमोदन-समर्थन करना)। अतः मकान बहुत बढ़िया बनाया—ऐसा कहनेसे भी (हिंसाका समर्थन होनेसे) पाप लगता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**साधकके लिये साधनसे विरुद्ध बात जितनी घातक है, उतनी साधनकी कमी घातक नहीं**

है। जो साधनके साथ असाधन भी करते रहते हैं, उनको जल्दी सिद्धि नहीं होती। सत्संग, साधन-भजनके साथ-साथ झूठ-कपट आदि भी करते रहनेसे वर्ष बीत जाते हैं, पर जीवन बदलता नहीं। अतः जिन बातोंको आप खराब समझते हैं, उन-उनका त्याग करते जाओ। बुरी बातोंको छोड़े बिना अच्छी बातें प्रकट नहीं होतीं। आपके भीतर यह बात बैठी हुई है कि अच्छी बातोंसे, अच्छे आचरणोंसे जल्दी कल्याण होगा, पर **अच्छी बातें तब ठहरेंगी, जब बुरी बातें छोड़ दोगे।** खेती करनेवाले पहले खेत साफ करते हैं, तब धान बोते हैं। जिनको आप छोड़ सकते हो, उन अवगुणोंको छोड़नेसे शेष अवगुण साफ दीखने लगते हैं; और जिन अवगुणोंको छोड़नेमें कठिनता दीखती है, उनको छोड़ना सुगम हो जाता है।

**जो जानते हुए भी अपने अवगुणोंको नहीं छोड़ते, वे उन्नतिके अधिकारी नहीं हैं।** आसुरी सम्पत्तिसे रहित होनेपर मनुष्य उन्नतिका अधिकारी हो जाता है, उसकी स्वाभाविक उन्नति होती है, दैवी सम्पत्ति उसके भीतरसे स्वतः प्रकट होती है। दैवी सम्पत्ति भगवान्की होनेसे उसकी जड़, नींव पक्की है। परन्तु आसुरी सम्पत्ति असुरोंकी होनेसे उसकी जड़, नींव कच्ची है।

लोग कहते हैं कि सत्संग, साधन-भजन करते हुए भी अवगुण नहीं छूटे तो क्या फायदा हुआ? वे ठीक कहते हैं, पर इसमें एक मार्मिक बात और है कि जो सत्संग, साधन-भजन करते हैं, उनके तो अवगुण छूटना सम्भव है, पर जो केवल सद्गुण-सदाचारमें ही लगे हैं, उनके सद्गुण-सदाचार ठहरेंगे नहीं। कारण कि सब सद्गुणोंके मूल भगवान्का आश्रय लिये बिना अच्छे गुण टिकेंगे नहीं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**सुखकी इच्छाको लेकर जो भजन किया जाता है, वह वास्तवमें भजन नहीं होता।** सुखकी इच्छा पापोंकी जड़ है। अपने सुखके लिये साधन करना राक्षसी स्वभाव है। हिरण्यकशिपुने अपने सुखके लिये ही तप किया था। **अपने सुखके लिये जो काम किया जाता है, वह पतन करनेवाली आसुरी सम्पत्ति होती है।** बहुत-से भाई-बहन अच्छे काम करते हैं, फिर भी उनकी जल्दी उन्नति नहीं होती; क्योंकि उनके भीतर व्यक्तिगत स्वार्थ रहता है। व्यक्तिगत स्वार्थ रहनेसे व्यक्तित्व टूटता नहीं, एकदेशीयपना मिटता नहीं, प्रत्युत एकदेशीयपना (देहाभिमान) पुष्ट होता है। **व्यक्तिगत कल्याण ( उद्धार ) चाहना भी देहाभिमानको पुष्ट करनेवाला है।** अपना कल्याण चाहना अच्छी बात है, पर 'मेरा कल्याण हो जाय'—यह भाव जल्दी कल्याण नहीं होने देता। व्यक्तित्व ही वास्तवमें पतन करता है। **'मुझे लाभ हो जाय'—यह भाव आसुरी सम्पत्तिकी जड़ है और 'दूसरेको लाभ हो जाय'—यह दैवी सम्पत्तिकी जड़ है।**

जो सुख किसीको दुःख देकर आता है, वह सुख महान् दुःख देनेवाला होगा, यह याद रख लो। जो दुःख दूसरेके सुखके लिये आता है, वह दुःख आनन्दरूपमें परिणत होगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

प्रेमपूर्वक, भावपूर्वक बनायी हुई रसोई तीन-चार-पाँच दिनतक खराब नहीं होती, सड़ती नहीं, जबकि दूसरी सड़ जाती है। उसमें स्वाद भी विलक्षण होता है। वह नीरोग करनेवाली होती है। प्रेमपूर्वक दी हुई चीज बड़ी शुद्ध, पवित्र होती है, विलक्षण होती है। ऐसी बातें मैंने देखी हैं। ऋषिकेशकी बात है। मुझे खाँसी-जुकाम हो रखा था। एक भाई दही लेकर आया और लेनेके लिये आग्रह करने लगा कि यह तो मैं आपके लिये ही लाया हूँ। मैंने पूछा कि क्या तुमने पूरा विचार कर लिया है ? उसने कहा कि हाँ, पूरा विचार कर लिया है। मैंने दही लेकर खा लिया तो मेरी खाँसी मिट गयी! **प्रेमपूर्वक दी हुई जड़ चीजमें भी चेतनता, विलक्षणता आ जाती है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**मनुष्यशरीरमें आकर अपना कल्याण नहीं करोगे तो फिर कहाँ करोगे ?** मनुष्य ही भगवान्को



अपना मान सकता है, अपना जान सकता है। मनुष्यके सिवाय और कोई ऐसा नहीं दीखता, जो भगवान्को अपना कह सके। पारमार्थिक उन्नति मनुष्यशरीरमें ही हो सकती है। भगवत्प्राप्ति करनेवाला मनुष्य ही है। मनुष्यशरीर मिल गया तो मानो भगवत्प्राप्तिका अधिकार मिल गया। भगवान्की प्राप्तिमें ही मनुष्यशरीरकी सार्थकता है। भगवत्प्राप्ति नहीं की तो मनुष्यजन्म निरर्थक गया! इस शरीरका सदुपयोग करके परमात्माकी प्राप्ति भी कर सकते हैं और दुरुपयोग करके नरकोंकी प्राप्ति भी कर सकते हैं। अतः आपका मुख्य काम भगवान्को प्राप्त करना होना चाहिये। इस विषयमें विशेष सावधान रहना चाहिये।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—संसारमें जो कुछ हो रहा है, भगवान्की मरजीसे हो रहा है; अतः हम जो भी काम करते हैं, भगवान्की मरजीसे ही करते हैं। इसलिये हमें पाप-पुण्य नहीं लगने चाहिये?

**स्वामीजी**—एक ‘करना’ होता है और एक ‘होना’ होता है। ये दो अलग-अलग विभाग हैं। जैसे, आप व्यापार करते हैं, पर नफा-नुकसान आप करते नहीं, प्रत्युत नफा-नुकसान होता है। भगवान् करते हैं अथवा कराते हैं, यह बात है ही नहीं.....है ही नहीं.....है ही नहीं। ‘करना’ मनुष्यके हाथमें है, ‘होना’ भगवान्के हाथमें। यदि ‘करना’ भगवान्के हाथमें होता तो ‘ऐसा करो, ऐसा मत करो’—यह विधान नहीं होता। गुरु, शास्त्र, शिक्षा, उपदेश आदि सब निरर्थक होते। अतः **वास्तवमें भगवान्की मरजीसे ‘होता’ है, भगवान् ‘करते’ नहीं हैं।** हाँ, शरणागत भक्त भगवान्की मरजीसे करते हैं तो वह करना सबके लिये आदर्श (अनुकरणीय) होता है। उनके द्वारा पाप-पुण्य कभी होते ही नहीं।

‘करने’ का पाप-पुण्य लगता है, ‘होने’ का पाप-पुण्य नहीं लगता। हमें बुखार आ जाय तो उसका पाप नहीं लगता। मनुष्य करनेमें स्वतन्त्र है, पर होनेमें (फल भोगनेमें) परतन्त्र है। करनेमें स्वतन्त्र होनेसे ही सत्संगकी बातें काम आती हैं।

भगवान् पाप नहीं कराते, प्रत्युत कामना ही पाप कराती है—‘**काम एष क्रोध एष**’ (३/३७)। भोगोंकी इच्छाके कारण ही मनुष्य पाप, अन्याय करता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

परमात्माको प्राप्त करनेकी लगन जैसी मनुष्यमें होती है, वैसी लगन देवताओंमें नहीं होती। ऐसी लगन केवल मनुष्यमें ही हो सकती है। मनुष्योंमें भी सच्ची लगन बहुत थोड़ेमें होती है।

जन्म-मरणसे रहित होनेका अवसर मनुष्यशरीरमें ही है। **देवताओंका शरीर तथा स्थान (स्वर्गलोक) बड़ा ही उत्तम है, पर वहाँ आराम मिलता है, भगवान् नहीं।**

सब-के-सब मनुष्य थोड़े-से-थोड़े समयमें भगवान्की प्राप्ति कर सकते हैं। जो भगवान्की तरफ न चले, उसका जन्म निरर्थक है। मनुष्यशरीरमें आकर भगवान्को प्राप्त नहीं किया—यह बड़ा भारी नुकसान है! विषयोंका सेवन, सुखभोग करनेके लिये अन्य शरीर बहुत हैं।

**कलियुगके कारण लोगोंमें फर्क पड़ा है, भगवान्में कोई फर्क नहीं पड़ा है।** अतः तत्परतासे भगवान्में लग जाओ। भगवान्में लगनेवालेकी सहायता सब करते हैं।

- सती स्त्रीमें इतना बल होता है कि वह अकेली अपनी रक्षा कर सकती है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भक्तियोगमें थोड़ी लालसासे काम चल सकता है; परन्तु ज्ञानयोगमें तेजीका वैराग्य होना चाहिये। ज्ञानयोगमें पहले अहंकारका त्याग करना आवश्यक है, इसलिये ज्ञानयोग कठिन पड़ता है। ज्ञानयोगकी अपेक्षा कर्मयोग सुगम



है। परन्तु भक्तियोग सबके लिये बड़ा सुगम पड़ता है; क्योंकि काम-क्रोधादिके रहते हुए भी भक्तियोग शुरू हो सकता है। भक्तियोगमें भगवान्का सहारा रहता है, इसलिये भक्त आरम्भसे ही निर्भय-निश्चिन्त रहता है। भगवान् भक्तपर विशेष कृपा करते हैं। भक्तिसे कर्मयोग, ज्ञानयोग सब समझमें आ जाते हैं, यह भक्तिकी विशेषता है। कारण कि भक्तको भगवान् कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनों दे देते हैं (गीता १०/१०-११)। इसलिये **भक्तियोगसे सिद्ध हुआ महापुरुष ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग—तीनों योगोंकी ठीक बात बता सकता है।** ऐसा दूसरे नहीं कर सकते।

आज संसारमें मुक्ति होना बहुत कठिन हो रहा है। ऐसे समय सच्चे हृदयसे भगवान्का आश्रय लेकर, 'मैं भगवान्का हूँ, भगवान् हमारे हैं'—ऐसा मानकर 'हे नाथ! हे नाथ!!' करते हुए भगवान्को पुकारें तो सुगमतासे सिद्धि हो जाती है।

हर समय भगवान्का भजन करते हुए जो भी परिस्थिति आ जाय, उसमें भगवान्की कृपाको देखें। कृपाको देखनेसे दुःखदायी परिस्थिति भी सुखदायी हो जाती है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

नामजपकी बड़ी महिमा है, पर वह महिमा नामजप करनेसे ही समझमें आती है। नामजप करनेमात्रसे कई मनुष्य सन्त हो गये हैं। कलियुगमें नामजपमें विशेष शक्ति है। भगवान्ने नाममें अपनी सम्पूर्ण शक्ति रख दी है—'**नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिस्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः**' (शिक्षाष्टक २)। रात्रिमें साढ़े ग्यारह-बारह बजे नामजप करनेका बड़ा माहात्म्य है। ऐसा करनेवालेको अन्त समयमें बेहोशी नहीं आती और भगवान्की स्मृति बनी रहती है।

● गायकी जितनी महिमा गायी जाय, कम है! उसके दूध, घी, गोमूत्र, गोबर आदिमें जीवनीशक्ति रहती है। गायके घीके दीपकसे शान्ति मिलती है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

लोगोंकी ऐसी धारणा बनी हुई है कि पापोंके कारण हमें भगवान्के साथ सम्बन्ध जोड़नेमें बाधा लग रही है। पर वास्तवमें यह बात नहीं है। अनन्त पापोंमें भी ऐसी ताकत नहीं है कि वे भगवान्के साथ हमारे सम्बन्धको तोड़ सकें। वास्तवमें हम ही भगवान्से विमुख हुए हैं।

**ग्रन्थोंमें यह बात आती है कि संसार असत् है, कल्पित है, मिथ्या है, यह बात ठीक है, पर इससे भी बढ़िया बात यह है कि संसारका सम्बन्ध असत् है।** जब संसारसे हमारा सम्बन्ध नहीं है, तो फिर वह अनादि हो या सान्त हो अथवा अनन्त हो, सत् हो या असत् हो, कैसा ही क्यों न हो, हमें उससे क्या मतलब? संसारका सम्बन्ध ही दुःख देनेवाला है। जो सच्चे हृदयसे साधु हो जाते हैं, संसारके सम्बन्धका त्याग कर देते हैं, उनका कुटुम्ब एक साथ मर जाय तो भी उनके भीतर कोई फर्क नहीं पड़ता। परन्तु जो सच्चे हृदयसे साधु नहीं होता, वह नया सम्बन्ध और जोड़ लेता है कि यह मेरा गुरुभाई है, यह भतीजा चेला है, यह बड़ा चेला है, आदि।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जो सगुणके उपासक हैं, वे यह कभी न मानें कि निर्गुणको माननेवाले भूलमें हैं। ऐसे ही जो निर्गुणके उपासक हैं, वे यह कभी न मानें कि सगुणको माननेवाले भूलमें हैं। जो सगुण अथवा निर्गुणके उपासकको भूलमें मानते हैं, यह उनकी खुदकी बड़ी भारी भूल है, जिसके कारण वे असली तत्त्वको नहीं पा रहे हैं। सगुण भी ठीक है, निर्गुण भी ठीक है। अन्तमें दोनोंका तत्त्व एक ही निकलेगा। मैंने दोनों पक्षकी बातें सुनीं और समझी हैं। दोनोंमें समाधि होती है। छह तरहकी समाधि होती है। वह समाधि भी मैंने करके देखी है।

सगुणको माननेवाले दूसरेपर दोषदृष्टि कम करते हैं, पर निर्गुणको माननेवाले दूसरेपर दोषदृष्टि ज्यादा करते हैं। इसलिये उनका अपराध ज्यादा होता है। दूसरेको खराब माननेवालेका खुदका नुकसान ज्यादा होगा। जिन ग्रन्थोंमें सगुण अथवा निर्गुणका खण्डन है, तिरस्कार है, उन ग्रन्थोंसे बड़ी भारी हानि है। विचारसागर, विचारचन्द्रोदय, तत्त्वानुसन्धान आदि पढ़ते रहो, ज्ञान नहीं होगा। मैंने निर्गुण मानकर भी देखा है, सगुण मानकर भी देखा है। दोनों अन्तमें एक होते हैं। जबतक दोनोंमें एकता नहीं होगी, तबतक शान्ति नहीं मिलेगी। इसलिये **आप चाहे सगुण मानो, चाहे निर्गुण मानो, पर दूसरेका तिरस्कार मत करो।**

सगुण और निर्गुण दोनोंको ठीक तरहसे जाननेवाले बहुत कम हैं। दोनोंसे ऊपर जानेवाले बहुत कम महात्मा हुए हैं। शरणानन्दजी महाराज ऐसे महात्मा थे। परन्तु उनकी बातको हरेक ठीक तरहसे पकड़ नहीं पाता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**आज भारतमें दिन अस्त हो रहा है, रात आ रही है!** सत्संगसे समाजका बहुत सुधार हो सकता है। परन्तु आज सत्संग सुननेवाले कम हैं। उनमें भी सत्संगकी बात माननेवाले और कम हैं। वर्ण, आश्रम आदि जो चीजें समाजकी रक्षा करनेवाली हैं, उनको मिटानेकी चेष्टा की जा रही है। पतन करनेवाली बातोंको आदर्श माना जा रहा है। दहेज प्रथासे बड़ा भारी अन्याय हो रहा है। दहेज प्रथाको मिटानेका उपाय है—दहेज मत लो। दूसरेको दुःख देकर (दहेजमें) आया हुआ पैसा बहुत खराब होता है और उससे बहुत नुकसान होता है। उस पैसेसे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। दहेजके कारण गर्भपात आदि महापाप हो रहे हैं। यही दशा रही तो इसका बड़ा भयंकर परिणाम होगा। विवाहके लिये कन्याका मिलना मुश्किल हो जायगा। मातृशक्तिके बिना आपका निर्वाह कैसे होगा? ऐसी प्रतिज्ञा करो कि हम मातृशक्तिका नाश नहीं करेंगे।

- जिससे आचरण ठीक न हों, वह शिक्षा शिक्षा नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

शरीर और शरीरी—इन दोनोंका भेद समझना आवश्यक है। शरीर संसारका है और शरीरी परमात्माका है। शरीरी रहनेवाला है, शरीर नहीं रहनेवाला है। शरीर और संसार दोनों ही असत् हैं, दोनोंकी ही सत्ता नहीं है, दोनों ही रहनेवाले नहीं हैं—यह बात हृदयमें बैठ जानी चाहिये। जो कुछ देखनेमें आता है, कुछ भी स्थिर रहनेवाला नहीं है।

**रज्जब रोवे कौन को, हँसे सु कौन विचार।**

**गये सु आवन के नहीं, रहे सु जावनहार॥**

किसको देखकर रोयें? और किसको देखकर हँसें? रोओ चाहे हँसो, जानेवाला जायगा ही और रहनेवाला रहेगा ही। **चिन्ता करो अथवा मत करो, कोई फर्क नहीं पड़ेगा; है जैसा ही रहेगा।** इसलिये भगवान् गीताके आरम्भमें ही बार-बार कहते हैं कि तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये—‘नानुशोचितुमर्हसि’ (२/२५), ‘नैवं शोचितुमर्हसि’ (२/२६), ‘न त्वं शोचितुमर्हसि’ (२/२७, ३०)। रहनेवाला तो रहेगा ही और मरनेवाला मरेगा ही। जो होना है, हो जायगा और जो नहीं होना है, वह नहीं होगा, फिर चिन्ता करके क्यों दुःख पाओ! चिन्ता करोगे तो दुःखका कभी अन्त आयेगा नहीं। **कभी दुःखी न होना, चिन्ता न करना, हरदम मौजमें रहना—यह सत्संगका प्रभाव है।**

कोई बालक जन्मता है तो वह ‘बड़ा होगा कि नहीं होगा, पढ़ेगा कि नहीं पढ़ेगा, धन कमायेगा कि नहीं कमायेगा, क्या करेगा, क्या नहीं करेगा’—इन सब कामोंमें सन्देह है, पर ‘मरेगा कि नहीं मरेगा’—इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतः निःसन्देहवाली बात ही याद रखो, सन्देहवाली बात क्यों याद रखो !

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

परमात्मतत्त्व प्रत्यक्ष है। उसकी प्राप्ति कठिन नहीं है, केवल जाननेवालोंकी और बतानेवालोंकी कमी है। परमात्माको प्राप्त करें या न करें, जानें या न जानें, वह तो वैसा ही है। वह स्वतन्त्र है, किसीके अधीन नहीं है। कोई कैसा ही क्यों न हो, जो सच्चे हृदयसे परमात्माको चाहता है, परमात्मा उसको चाहते हैं—‘ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्’ (४/११)।

ममता, कामना और तादात्म्यके कारण हमने अपनेको शरीरके भीतर मान लिया कि मेरे चारों तरफ शरीर है, बीचमें मैं स्वयं हूँ। वास्तवमें ऐसा नहीं है। स्वयं सदा ही शरीरसे अलग है। स्वयं सर्वव्यापी है, शरीर सर्वव्यापी नहीं है। पंचमहाभूत शरीरपर असर करते हैं, स्वयंपर असर नहीं करते। अगर ममता, कामना और तादात्म्य न करें तो इसी क्षण मुक्ति है। मुक्ति जितनी सुगम है, उतना सुगम कोई काम नहीं है। कारण कि मुक्ति स्वतःसिद्ध है, करनी नहीं है।

आपने अनगिनत शरीर बदले हैं, पर आप वही हो। अनन्त युगोंतक आप वही रहते हो। आप यहाँके निवासी नहीं हो। इन बातोंको केवल सुनकर ही सन्तोष नहीं करना है, प्रत्युत सुनकर अनुभव करना है। आप सब अनुभव कर सकते हो, सब योग्य हो—ऐसा मैं मानता हूँ।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

असली सत्संग भगवान्की कृपासे मिलता है और उस सत्संगसे बहुत अधिक लाभ होता है। असली सन्तोंके संगसे जीवन सुधर जाता है, घरोंमें लड़ाई मिट जाती है, अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, वास्तविक तत्त्वका ज्ञान हो जाता है। **सुननेवालेकी जिज्ञासा हो तो सुनानेवालेके भीतर विशेष बातें जाग्रत् हो जाती हैं।** केवल पुस्तकें पढ़नेसे उतना लाभ नहीं होता, जबकि सत्संग करनेसे पुस्तकोंकी बातें स्पष्ट समझमें आ जाती हैं। भागवतमें ऐसे कई श्लोक आते हैं, जिनका भाव सत्संगके द्वारा खुलता है। परन्तु अभिमानी पुरुष सत्संगमें नहीं आ सकते।

सन्त अपनी मस्तीमें रहते हैं। पर जब उनके सामने कोई श्रद्दालु आ जाता है, तब उनकी जबान खुलती है। उनके मुखसे अचानक अपने-आप विशेष बात निकल जाती है! बिना प्रसंगके भी उनके मुखसे विलक्षण बात निकल जाती है। **सत्संगमें न चाहते हुए भी गूढ़, गहरी बातें जिज्ञासुके सामने निकल जाती हैं।** श्रोताकी विशेष जिज्ञासा हो तो साधारण आदमीके मुखसे भी अपने-आप विशेष बात निकल जाती है। जहाँ सुननेवाले अच्छे हों, वहाँ कहनेवालेका भाव विचित्र हो जाता है, उसमें विशेषता आ जाती है। सुननेवालेकी जिज्ञासाके कारण सुनानेवालेके भीतर अच्छी बात पैदा होती है, जिससे उन्हें खुदको आश्चर्य आता है कि ऐसी बात हमारे भीतर नहीं थी, फिर ऐसी बात हमारे भीतर कहाँसे आयी! परन्तु जहाँ सुननेवालोंका भाव न हो, वहाँ अच्छी बातें कहनेकी मनमें आनेपर भी कह नहीं सकते।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

किसीको बुरा न समझे, किसीका बुरा न चाहे और किसीका बुरा न करे—इन तीन बातोंसे मनुष्य स्वतः-स्वाभाविक भला हो जाता है। भले मनुष्यका कल्याण स्वतः-स्वाभाविक हो जाता है। **आप बुराई छोड़नेसे ही भले बन सकते हो, भलाई करके भले नहीं बन सकते।** इसलिये पहले भले बनोगे, फिर भलाई करोगे।

युधिष्ठिरने बुराई नहीं की, बुराईका उत्तर भी भलाईसे दिया तो उनकी भलाई स्थायी रही। भलाई करनेसे, भगवान्का भजन करनेसे कोई बाधा आ जाय तो वह बाधा भी कल्याण करनेवाली होती है।

यह बात सबको निश्चित समझ लेनी चाहिये कि दूसरा हमारा बुरा करनेकी चेष्टा करे तो हमारा वही बुरा होगा, जो होनेवाला है। दुर्योधनने पाण्डवोंको मारनेका बहुत प्रयास किया, पर मार नहीं सका; अन्तमें खुद ही मरा। जिसकी मौत नहीं आयी, उसको कोई कैसे मार सकता है? वह मरनेवालेको ही मार सकता है।

सर्पाणां न खलानां च परद्रव्यापहारिणाम्।  
अभिप्राया न सिध्यन्ति तेनेदं वर्तते जगत्॥

(पंचतंत्र, मित्रभेद १६९)

‘सर्पोंके, दुष्टलोगोंके और दूसरेका धन अपहरण करनेवालों (चोर-डाकुओं) के मनोरथ सिद्ध नहीं होते, तभी यह संसार चल रहा है।’

तात्पर्य है कि हमारा बुरा होनेवाला नहीं हो तो कोई हमारा बुरा कर सकता ही नहीं। किसीकी ताकत नहीं कि हमारा बुरा कर दे। इसलिये निर्भय और निश्चिन्त रहना चाहिये और अपनी तरफसे किसीका बुरा नहीं करना चाहिये। अपनी तरफसे सजग, सावधान तो रहना चाहिये, पर भयभीत नहीं होना चाहिये।

मनुष्य सर्वथा भला तो बन सकता है, पर सर्वथा बुरा कोई बन सकता ही नहीं; क्योंकि जीवमात्र ईश्वरका अंश है। अतः अपनेमें या दूसरेमें बुराईकी स्थापना न करें। सर्वथा बुरा होकर कोई जी भी नहीं सकता। मनुष्य सबके लिये भला हो सकता है, पर सबके लिये बुरा होना सम्भव ही नहीं है। अपने माता-पिता, पत्नी-पुत्र आदिके साथ वह बुराई कैसे करेगा?

सब-के-सब मनुष्य भले हो सकते हैं, अपनी मुक्ति कर सकते हैं, भगवान्के भक्त हो सकते हैं, भगवान्को प्राप्त कर सकते हैं। यह गीताका सिद्धान्त है।

कन्याएँ प्रतिदिन सुबह और शामको सात-सात बार ‘माता कुन्ती’ और ‘माता सीता’ का नाम लें तो वे भली हो जायँगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान्ने सब जीवोंको अपनेमेंसे ही पैदा किया है—‘सब मम प्रिय सब मम उपजाए’ (मानस, उत्तर. ८६/२)। जीवमें अवगुण आये हैं, स्वाभाविक नहीं हैं। आगन्तुक (आये हुए) अवगुणको अवगुण नहीं मानना चाहिये। जो भगवान्के भजनमें लग गया, उसको पापी नहीं मानना चाहिये; वह तो साधु ही माननेयोग्य है—‘साधुरेव स मन्तव्यः’ (गीता ९/३०)। अतः आपको अधिकार नहीं है दूसरेको बुरा माननेका। आप सबको भगवत्स्वरूप मानो।

भगवान्का यह स्वभाव है कि उनको भक्तके पहले किये हुए दुराचारकी बात याद नहीं रहती—‘रहति न प्रभु चित चूक किए की’ (मानस, बाल. २९/३); क्योंकि भगवान्का अन्तःकरण शुद्ध है। वे अन्तःकरण-शुद्धिकी आखिरी सीमा हैं। अतः भगवान्में लग जानेके बाद अवगुणोंका आरोप न अपनेमें करे, न दूसरेमें। भगवान्में लगनेके बाद दुराचार कैसे रहेगा? जिसके हृदयमें भगवान् रहते हैं, उसमें दुर्गुण-दुराचार टिकते नहीं। भगवद्भाव और दुर्भाव दोनों साथमें रहते हैं तो भगवद्भाव जीत जाते हैं और दुर्भाव हार जाते हैं। कारण कि भक्तकी तो जड़ है, पर अवगुणोंकी जड़ नहीं है। अवगुण तो बीचमें आये हैं।

भगवान् आचरण नहीं देखते, भीतरका भाव देखते हैं। जैसे लोभी आदमी केवल पैसोंकी तरफ ही देखता है, ऐसे ही भगवान् भक्तिके लोभी हैं, वे भक्तिकी तरफ ही देखते हैं—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का  
का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।  
कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनं-  
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः ॥

(पद्यावली ८)

‘व्याधका कौन-सा श्रेष्ठ आचरण था? ध्रुवकी कौन-सी बड़ी उम्र थी? गजेन्द्रके पास कौन-सी विद्या थी?

विदुरकी कौन-सी ऊँची जाति थी? यदुपति उग्रसेनका कौन-सा पराक्रम था? कुब्जाका कौन-सा सुन्दर रूप था? सुदामाके पास कौन-सा धन था? फिर भी उन लोगोंको भगवान्की प्राप्ति हो गयी! कारण कि भगवान्को केवल भक्ति ही प्रिय है। वे केवल भक्तिसे ही सन्तुष्ट होते हैं, गुणों (आचरण, विद्या आदि) से नहीं।'

**भगवान्के हृदयमें भक्तिका जितना आदर है, उतना सद्गुणोंका आदर नहीं है।**

भगवान्को याद करनेसे मनुष्य महान् पवित्र हो जाता है। कलियुगमें अपवित्रता, मलिनता ज्यादा रहती है; परन्तु भगवान्के नाम, कीर्तन, चिन्तन, लीला-स्मरण आदिसे मनुष्य बहुत जल्दी पवित्र हो जाता है।

जैसे भक्ति उद्धार करनेवाली है, ऐसे ही जाति आदिका अभिमान पतन करनेवाला है—

**नीच नीच सब तर गये, राम भजन लवलीन।**

**जाति के अभिमान से, डूबे सभी कुलीन॥**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

ज्ञान एक धन है। जैसे लोभके बिना धनका मूल्य नहीं है, ऐसे ही प्रेमके बिना ज्ञानका मूल्य नहीं है। लोभीके भीतर धनका जितना आदर होता है, उतना दूसरेमें नहीं होता। प्रेमके आगे ज्ञान फीका हो जाता है। वह प्रेम गोस्वामीजीकी वाणीमें है।

भगवान् और उनके भक्तूये दो ही सबका हित करनेवाले हैं। रामायण भगवान्का चरित्र है और भक्त (गोस्वामीजी) की वाणी है। **जैसे भगवान्का अवतार हुआ है, ऐसे ही रामायणका भी अवतार हुआ है।** रामायणके पाठसे शान्ति मिलती है। अनपढ़ लोग भी अर्थ समझे बिना रामायणकी ध्वनिमें ही मस्त हो जाते हैं। गीता और रामायण दोनों ही आशीर्वादात्मक, अलौकिक तथा चमत्कारी ग्रन्थ हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजकी वाणी स्मृतिसे कम नहीं है। उनकी वाणी सबको जरूर पढ़नी चाहिये। उनकी वाणी कविकी वाणी नहीं है, प्रत्युत महात्माकी, ऋषिकी वाणी है।

भगवान्की लीलाको देखनेसे मोह होता है और सुननेसे मोह दूर होता है। भगवान्की लीलाको देखनेसे सतीजी और गरुड़जीको भी मोह हो गया, पर कथा सुननेसे उनका मोह नष्ट हो गया। इसलिये **भगवान्के चरित्रको देखनेकी अपेक्षा उनकी कथा सुननेका माहात्म्य ज्यादा है!** हमलोग भगवान्की कथा सुन सकते हैं, यह हमलोगोंका अहोभाग्य है! यदि भगवान्की कथा सुननेको मिले तो बड़ी भगवत्कृपा माननी चाहिये। हनुमान्जी रामजीकी कथा बड़े प्रेमसे सुनते हैं—**'प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया'**। हनुमान्जीको प्रसन्न करना हो तो उन्हें रामायण सुनानी चाहिये। रामायण सुननेसे वे बड़े राजी होते हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

यदि माता-पिता, पति, गुरु आदि पापकर्मकी आज्ञा दें तो उस आज्ञाको नहीं मानना चाहिये; क्योंकि उस आज्ञाको माननेसे उसका पाप माता-पिता आदिको लगेगा, जिससे उनको दण्ड भोगना पड़ेगा। अतः उन्हें पापके दण्डसे बचानेके लिये उनकी वह आज्ञा न माने। **माता-पिता आदिको दण्ड हो, ऐसा काम पुत्र आदिको नहीं करना चाहिये।**

पत्नी ही पतिको नमस्कार क्यों करे, पति भी पत्नीको नमस्कार करे—यह आजकलकी रीति है, शास्त्रकी रीति नहीं है। नमस्कार करनेसे कोई छोटा नहीं हो जाता। नमस्कार करनेवाला लाभमें रहता है। बड़ा होनेमें आफत है। जो छोटा होता है, वह लाभका भागीदार होता है और जो बड़ा होता है, वह नुकसानका भागीदार होता है। अभिमानके कारण कोई छोटा नहीं बनना चाहता, बड़ा बनना चाहता है; परन्तु जो बड़ा बनना चाहता है, उसको आगे चलकर छोटा बनना ही पड़ेगा। अभिमान करनेवालेका पतन ही होगा, उसको दण्ड भोगना ही पड़ेगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**भगवत्स्मरण समस्त साधनोंका सार है।** भगवान्को याद करते ही सम्पूर्ण अमंगल नष्ट हो जाते हैं। इसमें लाभ-ही-लाभ है, हानि है ही नहीं। **सत्संगकी बातोंमें भगवान्को याद करना सबसे मार्मिक बात है, सबकी सार बात है।** अतः चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय भीतरसे भगवान्को याद रखो, फिर शरीर चाहे जब छूटे।

मनुष्यशरीर बड़ा दुर्लभ है, पर जब दुर्लभ चीज प्राप्त हो जाती है, उस समय आदमी उसकी कीमत समझता नहीं। सच्चे सन्तका मिलना भी बहुत दुर्लभ है। **सच्चा सन्त मिल जाय तो जल्दी अपना कल्याण कर लो, दूसरी बातोंपर विचार मत करो। ऐसे ही अच्छा ब्राह्मण मिल जाय तो कोई भी जगह हो, कोई भी समय ( तिथि-वार ) हो, श्राद्ध-तर्पण कर दो।**

● मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ—यह भाव भगवत्प्राप्तिमें बाधक होता है। अतः यह भाव उठा दें और 'मैं भगवान्का हूँ, भगवान् मेरे हैं'—यह भाव ले आये।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

नाशवान् वस्तुका ज्ञान होनेपर अविनाशी वस्तुका ज्ञान स्वतः-स्वाभाविक हो जाता है। कारण कि नाशवान् (जानेवाली वस्तु) को देखनेवाला अविनाशी (रहनेवाला) होता है। एक परमात्माके सिवाय और कोई चीज रहनेवाली नहीं है। **जो दीख रहा है, यह सब सौ वर्षके भीतर-भीतर समाप्त होनेवाला है।** फिर दूसरे आ जायेंगे। ऐसे सब आते-जाते रहते हैं, पर स्थायी रहनेवाला कोई नहीं है।

वास्तवमें सब कुछ परमात्मा ही हैं, पर संसारकी तरफ दृष्टि रहनेसे परमात्मा नहीं दीखते। जैसे अनजान आदमीको बाजरीके खेतमें केवल घास-ही-घास दीखती है, बाजरी नहीं दीखती, पर जानकार आदमीको उस खेतमें बाजरी ही दीखती है, भले ही खेतमें बाजरीका एक दाना भी न हो। ऐसे ही संसारमें अनजान आदमीको केवल जड़ वस्तुएँ ही दीखती हैं, पर जानकार आदमीको संसारमें भगवान् ही दीखते हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**'। अनजान आदमी कहता है कि भगवान् कहाँ हैं? पर जानकार कहता है कि भगवान्-ही-भगवान् हैं, और कुछ है ही नहीं! जैसे पैसोंके लोभीको पैसे ही दीखते हैं, वस्तु नहीं दीखती, कोयलेके व्यापारीको कोयलेमें भी पैसे ही दीखते हैं, ऐसे ही भगवान्के लोभीको सब जगह भगवान् ही दीखते हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

परमात्माकी प्राप्ति करना मनुष्यका खास काम है, शेष सब काम गौण हैं। कारण कि मनुष्यशरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मिला है। मनुष्यशरीरके सिवाय दूसरा कोई शरीर नहीं है, जिससे परमात्माकी प्राप्ति की जा सके। मनुष्यशरीरमें परमात्मप्राप्ति करनेका अधिकार है, योग्यता है, अवसर है। अन्य शरीर सुख-दुःख भोगनेके लिये हैं।

एक शरीर है और एक शरीरी (शरीरवाला) है। **शरीरीको चाहिये कि वह शरीरमें आसक्ति न करके उसको परमात्मप्राप्तिका साधन बनाये और स्वयं साधक बनकर उसमें रहे।**

जीव परमात्माका अंश है, उसको परमात्मामें लगाये। शरीर संसारका अंश है, उसको संसारमें लगाये अर्थात् उससे संसारका काम करे।

**शरीर संसारकी सम्पत्ति है और आप खुद परमात्माकी सम्पत्ति हैं। शरीरका काम संसारकी सेवा करना है और आपका काम भगवान्का भजन करना है।** अपना शरीर भी संसारके अन्तर्गत है। अतः अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरका पालन करना भी संसारकी सेवा है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*



मनुष्यमात्रके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करना बहुत आवश्यक है। आज जो परिवार-नियोजनकी रीति चली है, यह ब्रह्मचर्यका नाश करनेकी खास चीज है। यह महान् निषिद्ध चीज है, मनुष्योंका महान् पतन करनेकी चीज है। भोगोंमें लगा हुआ मनुष्य परमात्माकी प्राप्ति कर ही नहीं सकता। उसके मनमें परमात्माको प्राप्त करनेकी बात आती ही नहीं। प्रजा बढ़ जायगी तो कहाँ रहेगी और क्या खायेगी—ये दोनों बातें बिल्कुल निरर्थक हैं। यह सब काम भगवान्का है, आपके ऊपर इसका ठेका है ही नहीं। आपके ऊपर केवल परमात्मप्राप्ति करनेका ठेका है।

गृहस्थाश्रमकी तैयारीके लिये ब्रह्मचर्याश्रम है, और संन्यासकी तैयारीके लिये वानप्रस्थ-आश्रम है। गृहस्थाश्रम भोग भोगनेके लिये नहीं है, प्रत्युत भोगोंकी परीक्षा करके उनसे निवृत्त होनेके लिये है। भोग भोगना पशुता है, मनुष्यता नहीं है। **वृत्ति स्वतः-स्वाभाविक परमात्माकी तरफ लगनी चाहिये—यह सिद्धान्त है। परन्तु वृत्ति भोगोंकी तरफ जाती है तो संयम करनेके लिये, भोगको सीमित करनेके लिये गृहस्थाश्रममें जाना चाहिये।**

ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालेको पहले कुसंगका त्याग करना चाहिये और अच्छा (संयमी पुरुषोंका) संग करना चाहिये। बुरा संग करनेसे वृत्तियाँ खराब होती हैं, जिनसे ब्रह्मचर्यका नाश होता है। उसको निर्वाहमात्रके लिये ही भोजन और वस्त्र लेना चाहिये, स्वाद-शौकीनीके लिये नहीं। वह खान-पानमें संयम रखे। ब्रह्मचर्यके लिये उपयोगी व्यायाम करे। वह विवाह करे तो संयमके लिये करे, भोग भोगनेके लिये नहीं। अपने ही वर्णकी एक स्त्रीसे विवाह करे। अपनी स्त्रीके सिवाय सबको माता-बहन माने। अपनी स्त्रीसे भी संयम रखे।

आज ब्रह्मचर्यका पालन न करनेसे बालकपनके बाद ही शरीर बूढ़ा (कमजोर) हो जाता है, जवानी आती ही नहीं। वह न संसारका काम ठीक तरहसे कर सकता है, न साधन-भजन कर सकता है। युवा लड़के-लड़कियोंको एक साथ पढ़ाना ब्रह्मचर्य-नाशका खास उपाय है। इसलिये सबसे जरूरी है—युवा लड़के-लड़कियोंको अलग-अलग पढ़ाओ, साथ-साथ मत पढ़ाओ। सहशिक्षा बहुत ही घातक है। धनी व्यक्तियोंको ऐसे विद्यालय खोलने चाहिये, जिनमें जवान लड़के-लड़कियाँ अलग-अलग पढ़ें और अच्छी शिक्षा प्राप्त करें। यह काम बहुत जरूरी है। **मेरा धनी व्यक्तियोंसे कहना है कि केवल पैसा कमाना ही आपका काम नहीं है, पैसेका सदुपयोग करना भी आपका काम है, आपकी जिम्मेवारी है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

गीताके आरम्भमें ही भगवान्ने शरीर और शरीरी (आत्मा) के विभागका वर्णन किया है। शरीर जड़ तथा प्रकाश्य है। शरीरी चेतन तथा प्रकाशक है। जैसे शरीर प्रकाश्य है, ऐसे अनन्त ब्रह्माण्ड भी प्रकाश्य हैं। सबके प्रकाशक, संचालक, प्रवर्तक परमात्मा हैं। शरीर मैं नहीं, मेरा नहीं, मेरे लिये नहीं—यह बात मान लो तो आप निहाल हो जाओगे। शरीरी सर्वथा निर्लेप है, उसमें कोई क्रिया-पदार्थ नहीं है। जैसे आप इस पण्डालमें आये हैं तो आप इससे अलग हैं। आप पण्डालमें आते हो और चले जाते हो। यह आपके रहनेके लिये नहीं है। आपका अस्तित्व स्वतन्त्र है, पण्डालके अधीन नहीं हैं। ऐसे ही आप शरीरके अधीन नहीं हैं, पर आप अपनेको शरीरमें मान लेते हैं। यह मान्यता ही दुःख देनेवाली है। जैसे कपड़े शरीरकी रक्षाके लिये हैं, ऐसे शरीर आपकी रक्षाके लिये नहीं है। **शरीरके बिना भी आप शान्तिसे, आनन्दसे रह सकते हैं।**

अगर हम कोई काम न करें तो शरीरकी क्या जरूरत है? वास्तवमें शरीरके द्वारा होनेवाले सब काम जगत्के हैं, आपके नहीं। खाना-पीना, सोना-जगना, शौच-स्नान करना आदि अपने काम दीखते हैं, पर वास्तवमें ये सब शरीरके काम हैं। आपका अपना कोई काम है ही नहीं! परन्तु शरीरमें अहंता-ममता करके आप शरीरसे होनेवाले कर्मोंके कर्ता-भोक्ता बन जाते हैं।

सभी विकार, सभी परिश्रम शरीरमें होते हैं। बालक, जवान और बूढ़ा शरीर होता है, आप नहीं होते। बुखार



शरीरमें आता है, पर उसके साथ सम्बन्ध माननेके कारण शरीरी घबरा जाता है। बीमार शरीर होता है, पर शरीरसे मिलकर मानते हैं कि 'मैं बीमार हो गया'। **शरीरका सम्बन्ध छूटते ही कोई रोग, शोक, चिन्ता, भय, उद्वेग आदि नहीं रहता।** जैसे शरीरका हाथ कट जाय तो फिर उस कटे हुए हाथको जलाओ, उसके टुकड़े करो, कुछ भी करो, अपनेपर कुछ असर नहीं होता, ऐसे ही यह सब शरीर है। इसलिये आप शरीरमें रहते हुए ही शरीरसे अलगावका अनुभव कर लें। फिर आप जन्म-मरणसे रहित हो जायँगे। **जैसे कोई चलती हुई मोटरको पकड़ ले तो वह उसके साथ ही घसीटता चला जाता है, ऐसे ही शरीरके साथ एकता माननेसे आप जन्म-मरणमें घसीटते रहते हैं, मुक्तमें ही दुःख पाते रहते हैं।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

हमारी वास्तविक अवस्था स्वाभाविक, स्वतःसिद्ध है। अन्तमें सभी साधकोंकी एक स्थिति होगी। इसमें सम्प्रदायके भेदसे अनेक तरहके भेद (सालोक्य, सामीप्य आदि) बताये गये हैं। परन्तु **परमात्मामें जो असली स्थिति है, वह सबकी एक ही होती है।** साधक अपने-अपने सम्प्रदाय, पद्धति, ज्ञानके अनुसार मुक्त हो जाते हैं, फिर परमात्माकी तरफसे मुक्त होते हैं तो वहाँ सब-के-सब एक हो जाते हैं। वहाँ सम्प्रदायका भेद नहीं रहता। वह स्थिति हमारी स्वाभाविक है। केवल बनावटी स्थितिको छोड़ना है। इसलिये साधक इस लोकमें रहते हुए साधन करते हुए अपनी अवस्था बनाते हैं। जबतक अवस्था बनाते हैं, तबतक वे साधक ही रहते हैं। जबतक साधक रहते हैं, तबतक उनकी अलग-अलग धारणाएँ होती हैं। परन्तु सिद्ध होनेपर अलग-अलग धारणाएँ नहीं रहतीं। अन्तमें सब एक ही तत्त्वको प्राप्त हो जाते हैं। गीतामें यही बात बतायी है—

**यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।**

**यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥**

(गीता ६/२२)

‘जिस लाभकी प्राप्ति होनेपर उससे अधिक कोई दूसरा लाभ उसके माननेमें भी नहीं आता और जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता।’

**पहले सबको अपनी अलग-अलग स्थिति दीखती है, पर वह बनावटी होती है। असली स्थिति सबकी एक होती है। परन्तु परमात्माके प्राप्त होनेपर ही यह भेद खुलता है।**

लोगोंके मनमें यह बात बैठी हुई है कि परमात्माकी प्राप्ति बड़ी कठिन है। पर ऐसी बात नहीं है। जो सन्त-महापुरुष परमात्माको प्राप्त हो गये हैं, उन सबकी वाणीमें यह बात आयेगी कि परमात्मप्राप्ति बड़ी सीधी-सरल है और सबको हो सकती है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यशरीरकी विशेषता और तरहकी है, पर हमने इसे और तरहकी विशेषता दे दी। ‘मैं शरीर हूँ, शरीर मेरा है’—ऐसा माननेमें शरीरकी महिमा नहीं है। **शरीरकी महिमा इस विवेकको लेकर है कि इस शरीरके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।** यहाँसे लोकालोक पर्वतको दूर-से-दूर बताया गया है। यह शरीर भी हमारेसे उतना ही दूर है! शरीरसे आप काम न लें तो यह आपके कुछ काम नहीं आता। इसलिये शरीरके रहते हुए आप इससे अलगावका अनुभव कर लें, इसीमें शरीरकी महिमा है। अनुकूलता-प्रतिकूलता आनेपर आप राजी-नाराज हो गये तो इस शरीरकी क्या महिमा हुई? अनुकूलता-प्रतिकूलतामें राजी-नाराज तो पशु-पक्षी भी होते हैं।

● एक भाईने बताया कि मेरे तीस-चालीस लाख रुपये किसीने रख लिये हैं, उसकी देनेकी नीयत नहीं है। मैंने कहा कि अगर रुपया तुम्हारा है तो कभी जायगा नहीं और तुम्हारा रुपया नहीं है तो कभी मिलेगा नहीं। खरी

चीजको दूसरा पचा नहीं सकता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

लोगोंको परमात्मप्राप्तिमें कठिनता इसलिये मालूम देती है कि भीतरमें असली लगन नहीं है। लगन हो तो परमात्मप्राप्ति बहुत सुगम है। लगन न हो तो परमात्मप्राप्ति बहुत कठिन है। परमात्मप्राप्तिमें प्रारब्ध, उद्योग, बुद्धि, विद्या, योग्यता आदिकी जरूरत नहीं है। शास्त्रोंकी पढ़ाई करनेसे चतुराई आ जाती है, बातें बनानी आ जाती हैं, व्याख्यान देना आ जाता है, पर परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। मैंने पढ़ाई करके देखा है। पढ़ाई केवल बाहरी शृंगार है। परमात्मा सब जगह, सब समय, सब वस्तुओंमें, सब परिस्थितियोंमें परिपूर्ण है। वह कहीं भी अपूर्ण नहीं है। एक सूई-जितनी जगहमें भी वह पूर्ण है; वहाँ भगवान्के चरण भी हैं, माथा भी है, हाथ भी हैं, नेत्र भी हैं। फिर उसकी प्राप्तिमें बाधा क्या है? भीतरकी सच्ची लगन, चाहना नहीं है, यही बाधा है।

**परमात्माकी प्राप्ति के लिये साधु बननेकी जरूरत नहीं है।** सदाचारी आदमीके भीतर भी अगर लगन नहीं है तो उसको परमात्मा नहीं मिलते। परन्तु दुराचारी आदमीके भीतर भी लगन लग जाय तो वह परमात्माकी प्राप्ति कर सकता है। बड़े-बड़े चोर, डाकू, कसाईके भीतर भी जब परमात्माकी लगन लग गयी तो वे परमात्माको प्राप्त हो गये। लगन हो तो परमात्मा हरेकको प्राप्त हो सकते हैं। **वे तो मिलनेके लिये तैयार बैठे हैं!** लगन नहीं है—इसके सिवाय परमात्मप्राप्तिमें कोई कठिनता नहीं है। **लगन हो तो सन्त-महात्मा भी मिल जायेंगे, पर लगनके बिना वे मिलते हुए भी काम नहीं आयेंगे।** इसलिये आप सच्ची लगन लगाओ। भगवान्से माँगो तो एक लगन ही माँगो। सच्चे हृदयसे भगवान्से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! वह लगन दो, जिससे आप प्रकट हो जाते हो'। भगवान्के दरबारमें किसी चीजकी कमी नहीं है। उनके दरबारसे कोई खाली हाथ नहीं लौटता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**मैंने गुरु नहीं बनाया है, पर मेरे साथवाले कहते हैं कि गुरु न बनानेसे तुम्हारे सब कर्म निष्फल होते हैं। मुझे क्या करना चाहिये?

**स्वामीजी—**जिनमें गुरु बननेका शौक है, उन लोगोंने विशेषतासे ऐसी प्रसिद्धि कर रखी है। गुरु बनानेसे ज्ञान हो जाय, यह बात मेरेको जँचती नहीं है। जो मेरी दृष्टिसे अच्छे महात्मा हैं, जिनको मैं श्रद्धा-भक्तिसे देखता हूँ, वे (श्रीशरणानन्दजी महाराज) कहते हैं कि 'मैंने चेला बनाना शुरू किया; परन्तु चेलोंकी यह आदत है कि गुरुजीको कसकर पकड़ लेते हैं, भगवान्को नहीं पकड़ते। तो मैंने चेला बनाना छोड़ दिया'। उन्होंने अपने गुरुजीकी बात बतायी कि जब उनका शरीर शान्त होने लगा, तो मैंने कहा कि महाराज, आपका शरीर कुछ दिन और रहता तो अच्छा था; मेरेको कोई बात पूछनी होती तो पूछ लेता। उनके गुरुजीने कहा कि 'मैं एक शरीरमें नहीं हूँ। मेरे अनेकों शरीर हैं। जब तुम्हें जरूरत पड़ेगी तो मैं मिल जाऊँगा और उसीसे तुम्हारा समाधान हो जायगा।' उन्होंने कहा कि 'गुरुजीने जैसा कहा, वैसा ही मेरे साथ बीता। जब भी कोई प्रश्न भीतर उठा, किसी-न-किसी सन्तके द्वारा उसका समाधान हो गया।' मेरी दृष्टिमें वे (श्रीशरणानन्दजी महाराजसे) सबसे श्रेष्ठ महात्मा हैं। उनसे बढ़कर महात्मा मेरेको कोई दीखता नहीं। पहले जो तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महापुरुष हो गये, उनमें भी कोई ऐसा दीखता नहीं। उन्होंने फिर चेला नहीं बनाया; क्योंकि उन्होंने चेला बनानेका नतीजा देख लिया कि चेला मेरेको पकड़ लेता है, भगवान्को भूल जाता है। इससे बड़ा अनर्थ होता है। ऐसी बात मैंने भी देखी है। हमारे सत्संगी कहते हैं कि हम तो आपको ही मानते (जानते) हैं, भगवान्को नहीं मानते। यह नास्तिकता है, बड़ी भारी हानिकी बात है! मैं चेला नहीं बनाता हूँ, पर नहीं बनानेपर भी हमारी यह दशा है! जब गुरु न बननेपर भी यह दशा है, तब गुरु बननेपर क्या दशा होगी?

**अगर कोई अपना कल्याण चाहे तो उसे किसीसे भी कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।** जहाँतक

हो सके, गुरु नहीं बनाना चाहिये। भगवान् ने पहलेसे ही सबको विवेकरूपी गुरु दे रखा है। विवेक ही असली गुरु है, जो अपने भीतर है। आपको जो साधन ठीक समझमें आये, वह साधन करो, पर गुरु-शिष्यका सम्बन्ध मत जोड़ो। जिसके भीतर लगन है, उसके गुरु परमात्मा हैं, उसको परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। भगवान् श्रीकृष्णको गुरु मान लो—‘कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्’ और गीताको उनका मन्त्र मान लो। गुरु अनजाया ( जो जन्मा हुआ न हो, जन्म-मरणसे रहित ) होना चाहिये।

जो हृदयके अन्धकारको दूर कर दे, ऐसा ठीक तत्त्वको जाननेवाला गुरु आजकल देखनेमें नहीं आता। पहलेके सन्तोंकी पुस्तकें पढ़नेपर भी पूरा सन्तोष नहीं होता। असली गुरु अथवा जानकार पुरुष वही होते हैं, जिनमें द्वैत-अद्वैत आदिका कोई मतभेद नहीं होता। परन्तु ऐसे गुरु देखने-सुननेमें बहुत कम आते हैं।

सच्चे चेलेकी जितनी आवश्यकता है, उतनी गुरुकी आवश्यकता नहीं है। सच्ची लालसा होगी तो उद्धारके लिये गुरु भी मिल जायगा, उद्धारका रास्ता भी मिल जायगा। जो सच्चे हृदयसे परमात्माकी प्राप्ति चाहता है, उसकी सहायता करनेके लिये सब-के-सब तैयार बैठे हैं। आप विचार करें, कोई व्यक्ति सच्चा भूखा हो तो उसको भोजन देनेकी किसके मनमें नहीं आती? उद्धारके लिये किसी योग्यता, विद्वत्ता आदिकी कोई जरूरत नहीं है। केवल अपनी लगन चाहिये। इसलिये आप गुरुकी खोज न करके अपनी लगन बढ़ाओ, फिर गुरु, महात्मा, ग्रन्थ सब मिल जायँगे। सन्त-महात्मा भगवान् के नित्य अवतार हैं। वे लोगोंके उद्धारके लिये हरदम तैयार रहते हैं। उनका कभी अभाव नहीं होता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

दो बातें हैं—‘लेना’ और ‘देना’। ‘लेना’ हमारे हाथकी बात नहीं है, पर ‘देना’ हमारे हाथकी बात है। आप अपनी मरजीसे रुपया दे सकते हैं, पर आपसे रुपया लेना हाथकी बात नहीं है। हमारा मान, आदर, सत्कार हो जाय, यह हाथकी बात नहीं है। दूसरोंको मान-आदर देना चाहिये, खुद अमानी रहना चाहिये—‘सबहि मानप्रद आपु अमानी’ (मानस, उत्तर. ३८/२)। लेनेमें तो सब परतन्त्र हैं, पर देनेमें सब स्वतन्त्र हैं। विशेषता देनेवालेकी होती है, लेनेवालेकी नहीं। परन्तु आज उल्टी बात चल रही है! विवाहमें लड़केवाले अपनी विशेषता मानते हैं, जबकि विशेषता लड़की देनेवालेकी है। लेनेकी इच्छासे अशान्ति होती है, पतन होता है। त्यागसे तत्काल शान्ति मिलती है—‘त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्’ (गीता १२/१२)। लेनेमें बन्धन है, देनेमें मुक्ति है। लेनेकी इच्छावालेका पतन होगा, उद्धार नहीं होगा। त्याग करनेवालेको किसी वस्तुकी कमी नहीं आती। उसके पास वस्तुएँ अपने-आप आती हैं। परन्तु धनी-से-धनी आदमीको भी आवश्यक वस्तु समयपर नहीं मिलती। धनी आदमीको लाखों रुपयोंका घाटा पड़ता है, पर गरीब आदमीको घाटा पीढ़ियोंतक नहीं पड़ा!

दत्तात्रेयजीने चौबीस गुरु बनाये। उन चौबीस गुरुओंमें सार चीज थी—त्याग। धनी आदमियोंमें सन्त-महात्मा बहुत कम हुए हैं; क्योंकि ज्यादा चीज हो तो त्यागमें कठिनता होती है। थोड़ी चीजके त्यागमें सुगमता होती है। दस रुपयेवाला एक रुपया दे सकता है, पर करोड़ रुपयेवाला दस लाख रुपये नहीं दे सकता। अगर दे भी दे तो उसको तंगी नहीं आयेगी, जबकि दस रुपयेवाला एक रुपया दे तो उसको तंगी आयेगी। गरीब जितनी पारमार्थिक उन्नति कर सकता है, उतनी धनी नहीं कर सकता।

दीखता तो ऐसा है कि धन ज्यादा बढ़नेसे शान्ति बढ़ेगी, पर वास्तवमें अशान्ति ज्यादा बढ़ेगी। धन जितना कम होगा, उतनी शान्ति बढ़ेगी; पर कब? लोभ नहीं हो तब। भीतरमें लोभ होगा तो न धनीको शान्ति मिलेगी, न निर्धनको शान्ति मिलेगी। जितना धन बढ़ता है, उतना ही लोभ बढ़ता है। लोभके कारण रुपये पासमें होते हुए भी आदमी (रुपये खर्च न कर पानेके कारण) दुःख पाता है। अगर भीतरमें लोभ नहीं होगा, त्यागका भाव होगा तो शान्ति मिलेगी। इसलिये धन भले ही अधिक हो, पर लोभ न हो।

इसका यह मतलब नहीं है कि धन मत कमाओ, संग्रह मत करो। गृहस्थाश्रममें संग्रह करना उचित है; क्योंकि चार आश्रमोंमें धन कमानेका यही एक आश्रम है। अगर वह संग्रह नहीं करेगा तो ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासीका पालन कैसे होगा? इसलिये मैं धनका निषेध नहीं करता हूँ, प्रत्युत लोभका निषेध करता हूँ। दुःख देनेवाला लोभ है, धन नहीं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जहाँ धर्म है, वहीं भगवान् हैं, वहीं विजय है, वहीं सब महात्मा हैं। अतः अपने धर्मका पालन करें। पापका फल बुरा होता ही है। उससे कोई बच नहीं सकता। मनुष्य पाप करता है स्वतन्त्रता (अपनी मरजी) से, पर दण्ड भोगता है परतन्त्रता (दूसरेकी मरजी) से। वह दुःख भोगना नहीं चाहता, पर भोगना पड़ता है। पाप करते हुए समझमें नहीं आता, पर जब उसका फल दुःख मिलता है, तब समझमें आता है।

जहाँ ब्राह्मण, साधुलोग भोजन करते हैं, वहाँ कोई स्त्री अशुद्ध अवस्थामें जाकर भोजन करती है तो उसको बड़ा भारी पाप लगता है। रजस्वला होनेपर शास्त्रीय मर्यादाका पालन करना चाहिये। रजस्वला स्त्रीके रोम-रोमसे जहर निकलता है। रजस्वलाकी छाया पड़ जाय तो साँप अन्धा हो जाता है। छोटे बच्चेपर छाया पड़ जाय तो उसका शरीर खराब हो जाता है। पानीका स्पर्श करनेसे उसमें जन्तु पैदा हो जाते हैं। यह मेरा देखा हुआ है। परन्तु विदेशी शिक्षाके प्रभावसे आजकलके लड़के-लड़कियाँ शुद्धि-अशुद्धिको जानते ही नहीं! वे सफाई जानते हैं, पर शुद्धि, पवित्रता जानते ही नहीं। हड्डीको साबुनसे धोनेपर वह साफ तो होती है, पर पवित्र नहीं होती। विदेशी शिक्षामें इन बातोंका ज्ञान है ही नहीं। विदेशी शिक्षा नाश करनेवाली है। इसलिये सब भाई-बहनोंको इस बातका ज्ञान होना चाहिये कि शुद्धि-अशुद्धि क्या होती है? पाप-पुण्य क्या होता है? शास्त्रोंका ज्ञान न हो तो सन्तोंसे, जानकार पुरुषोंसे पूछ लेना चाहिये।

● संस्कृत-भाषामें जितना ऊँचा साहित्य है, उतना ऊँचा साहित्य किसी भी भाषामें नहीं है। संस्कृत-जैसा व्याकरण दूसरी किसी भाषामें है ही नहीं—यह बात मैं बड़े जोरसे कहता हूँ!! संस्कृत-व्याकरण भी एक दर्शन है, जिससे ब्रह्मकी प्राप्ति हो सकती है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—पूर्ण ज्ञानीकी क्या पहचान है?

**स्वामीजी**—अज्ञानीकी पहचान तो हो सकती है, पर ज्ञानीकी पहचान होनी कठिन है। कारण कि ज्ञानीकी स्थिति स्वसंवेद्य होती है। वह आप ही अपनेको जानता है, दूसरा उसको नहीं जान सकता। दूसरा केवल इतना जान सकता है कि ये अच्छे आदमी हैं।

**श्रोता**—मैंने एक सन्तसे सुना है कि पाँच दिन भोजन न करनेसे भगवान्‌के दर्शन हो जाते हैं।

**स्वामीजी**—ऐसा विधान कहीं आता नहीं। भगवान् ऊपरी क्रियाओंसे नहीं मिलते, प्रत्युत भीतरकी अनन्य चाहनासे मिलते हैं। उनके सिवाय अन्य कोई चाहना न हो, केवल एक ही चाहना हो तो भगवान्‌के दर्शन हो जाते हैं। संसारकी चाहना परमात्माकी प्राप्तिमें बड़ी भारी बाधा है।

**भगवान्‌के दर्शनकी अपेक्षा उनके प्रेमका दर्जा ऊँचा है।** दर्शन होनेपर प्रेम हो जाय, यह नियम नहीं है, पर प्रेम होनेपर दर्शन हो जाते हैं, यह नियम है। प्रेमसे जो दर्शन होते हैं, उससे दर्शन करनेवालेका कल्याण हो जाता है। दर्शन होनेपर भी कमी रह सकती है, पर वह कमी भगवान् दूर करते हैं। दर्शन हर समय नहीं रहते, पर प्रेम हर समय रहता है। दर्शन होनेपर जब भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं, तब वैसी दशा नहीं रहती। परन्तु प्रेम हर समय जाग्रत् रहता है। दर्शन देना भगवान्‌के अधीन है। **प्रेम सुगम है, पर दर्शन कठिन है।** हाँ,

अपनी तीव्र उत्कण्ठा हो जाय तो भगवत्कृपासे दर्शन भी हो जाते हैं, प्रेम भी हो जाता है।

मेरा कल्याण कैसे हो—यह उत्कण्ठा बढ़ायें। भगवान्की उत्कण्ठा अपने उद्योगसे नहीं, प्रत्युत कृपासे ही हो सकती है; रोकर प्रार्थना करे। जिनका कल्याण हो गया है, उन सन्तोंकी कृपा हो जाय तो सुगमतासे कल्याण हो जाता है, अन्यथा कठिनता पड़ती है। सत्संगसे बहुत लाभ होता है, पर असली सत्संग कम मिलता है। असली सत्संग मिल जाय तो जरूर लाभ होता है, यह नियम है। पर लाभ होगा अपनी वृत्ति, उत्कण्ठाके अनुसार।

**श्रोता—**असली सत्संगकी क्या पहचान है?

**स्वामीजी—**असली सत्संगकी पहचान यह है कि हमारे बिना पूछे हमारी शंकाओंका समाधान हो जाय। जो हमसे कभी कुछ नहीं चाहते, चाहे वर्षोंतक रात-दिन उनका सत्संग करें। जो कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, हठयोग, लययोग आदिकी तात्त्विक बात बता देते हैं। जिस सत्संगसे अपना सन्देह दूर हो जाता है। ज्यों-ज्यों सत्संग करेंगे, त्यों-त्यों अपने सन्देह दूर होते जायेंगे। ऐसा सत्संग मिलनेसे लाभ जरूर होता है। **असली उत्कण्ठा हो तो पाखण्डी आदमीसे भी लाभ हो जाता है, फिर असली सन्त मिल जायँ तो कहना ही क्या है!**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

परमात्मप्राप्ति कठिन नहीं है। जो सब देश, काल आदिमें ज्यों-का-त्यों परिपूर्ण हो, उसकी प्राप्ति कठिन कैसे हो सकती है? कठिनता हमने मान रखी है, संसारमें आसक्ति करके। **वास्तवमें खराब चीज कठिन होती है, बढ़िया चीज कठिन होती नहीं, कठिन दीखती है।** मैंने श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका कई वर्षोंतक संग किया है। उन्होंने कहा था कि 'परमात्मप्राप्ति कठिन है—यह बात मेरी समझमें आती ही नहीं थी, पर जब दूसरे लोगोंपर परीक्षा की, तब कठिनता मालूम दी'। परमात्मप्राप्तिमें केवल वर्तमानकी लालसा चाहिये। पाप-तापसे भगवान् अटकते नहीं।

शास्त्रोंको देखें तो बहुत ज्यादा जाल है। गीतामें दो प्रकारके मोह आये हैं—'मोहकलिलं' (२/५२) अर्थात् सांसारिक मोह और 'श्रुतिविप्रतिपन्ना' (२/५३) अर्थात् शास्त्रीय मोह। इन दोनों प्रकारके मोहसे तरना बड़ा कठिन है। इसलिये पढ़े-लिखोंको परमात्मप्राप्तिमें कठिनता होती है, बिना पढ़े-लिखोंको सुगमता होती है; वे जल्दी मान लेते हैं। पढ़े-लिखोंमें जानकारीका एक नया अभिमान पैदा हो जाता है। पढ़ाई खराब नहीं है, पर पढ़ाईका अभिमान खराब है। अभिमानसे बाधा लगती है।

परमात्मा हैं और हमारेको मिल सकते हैं—ऐसे हिम्मत रखो। हिम्मत मत हारो।

**जो सबका कल्याण चाहता है, उसका कल्याण सुगमतासे होता है।**

● भगवान्की शोभायात्रा निकले तो इसमें सबको बड़े उत्साहसे सम्मिलित होना चाहिये। कारण कि यह भगवान्का काम (उत्सव) है, किसी व्यक्तिका नहीं। शोभायात्रामें बड़ी मस्तीसे चलना चाहिये। भगवान्के कीर्तनमें मस्त रहे। यह पता ही न लगे कि हम कौन हैं, कहाँ जा रहे हैं? ऐसा मौका भगवान्की बड़ी कृपासे मिलता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

एक बात ध्यान देनेकी है कि अपना जीवन इतना ही नहीं है। हम पहले भी कहीं थे और आगे भी कहीं रहेंगे। इसलिये केवल इस जीवनके लिये ही प्रयास नहीं करना है, प्रत्युत आगेके जीवनके लिये भी सोचना है। यह सोचनेका मौका भी इस समय ही है। परमात्माको प्राप्त करनेका, सदाके लिये शान्ति प्राप्त करनेका मौका इस मनुष्यशरीरमें ही है। **अभी हम जिस अवस्थामें हैं, उसी अवस्थामें हम भगवान्को अपना कह सकते हैं।** भगवान्को अपना कहनेमें जो दर्जा पढ़े-लिखे पण्डितका है, वही दर्जा सर्वथा अनपढ़ 'काला अक्षर भैंस बराबर'



का है! भगवान्को अपना कहनेका मौका मनुष्यशरीरमें ही है। वह मौका अभी हमें मिला हुआ है। हम ब्राह्मण हैं, हम साधु हैं, हम त्यागी हैं—यह अभिमान बड़ा बाधक होता है। भगवान्के यहाँ तो सीधा-सरलपना चाहिये —‘सरल सुभाव न मन कुटिलाई’ (मानस, उत्तर. ४६/१)।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान्की प्राप्ति जितनी सरल है, उतना सरल कोई काम है ही नहीं! मनुष्यमात्र भगवत्प्राप्तिका अधिकारी है। इसलिये इसको सुगमतासे और बहुत जल्दी भगवत्प्राप्ति हो सकती है। काम केवल इतना है कि भगवान्को अपना मानना है। हमें यह जन्म भगवान्ने दिया है। कोई यह नहीं कह सकता कि मैंने अपनी मरजीसे जन्म लिया है और मैं इतने वर्ष जीऊँगा। हम भगवान्की मरजीसे आये हैं, भगवान्की मरजीसे जी रहे हैं और भगवान्की मरजीसे जायँगे। इसलिये हम भगवान्के हैं। भगवान्के भरोसे निश्चिन्त हो जाओ। हम भगवान्की मरजीसे बैठे हैं। आज मर जायँ तो कोई दुःख नहीं, सन्ताप नहीं! भगवान्की जैसी मरजी हो, वैसा करें। तीन बातें मान लें—कोई शुद्ध-सात्त्विक खिलाना चाहे तो खा लें, सुनना चाहे तो सुना दें, मिलना चाहे तो मिल लें। अपना कोई काम नहीं! केवल इसी बातसे आप निहाल हो जाओगे! कुछ बाकी नहीं रहेगा! इसमें क्या परिश्रम है, क्या कठिनता है? हमें न खानेकी इच्छा है, न सुनानेकी इच्छा है, न मिलनेकी इच्छा है। अपनी कोई इच्छा नहीं, किसी चीजकी जरूरत नहीं। केवल इतनी बातसे भगवान्की प्राप्ति हो जायगी!

श्रीशरणानन्दजी महाराजने कहा कि हमारी आँखें चली गयीं तो पहले दुःख हुआ, फिर विचार आया कि हमारे बिना आँखें रह सकती हैं तो हम भी आँखोंके बिना आनन्दसे रह सकते हैं। जब आँखोंको हमारी जरूरत नहीं, तो फिर हमारेको भी आँखोंकी जरूरत नहीं। अब मनमें ही नहीं आती कि आँखोंसे देखें। जो हमारे बिना रह सकता है, उसके बिना हम भी मौजसे रह सकते हैं। कितनी ऊँची और कितनी सीधी-सरल बात है!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

संसारकी आसक्तिके कारण परमात्मप्राप्तिको कठिन मानते हैं, वास्तवमें कठिन है नहीं। परमात्मप्राप्ति हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। हम परमात्माके अंश हैं। नाशवान्को सत्ता और महत्ता देकर उसके साथ सम्बन्ध जोड़ लिया, इसीसे बाधा लग रही है। संसारकी जितनी विघ्न-बाधाएँ हैं, वे सब-की-सब नाशवान् हैं; परन्तु हम अविनाशी हैं, परमात्माके अंश हैं। फिर ये विघ्न-बाधाएँ हमारा क्या बिगाड़ सकती हैं? काम-क्रोधादि जितनी बाधाएँ हैं, सब नाशवान् है, अविनाशी नहीं, फिर उनसे क्या डरना? अविनाशी बाधा कोई है ही नहीं। कोई बाधा ठहरनेवाली है ही नहीं, हो सकती ही नहीं। बाधाएँ आती-जाती हैं, पर हम हरदम रहते हैं—यह सबके अनुभवकी बात है। अविनाशीके सामने विनाशीकी क्या इज्जत है! विनाशीसे डरना, उसको ज्यादा महत्त्व देना ही गलती है। उसको महत्त्व न देकर परमात्माको महत्त्व दें और उन्हें पुकारें तो वे मदद करनेको हरदम तैयार हैं।

सांसारिक वस्तुएँ सबके लिये समान नहीं हैं, पर परमात्मा सबके लिये समान हैं। सांसारिक प्रभाव केवल भभका है, जो बिना उद्योग किये अपने-आप शान्त हो जायगा। संसार कभी साथ नहीं रहता, पर भगवान् हरदम हमारे साथ रहते हैं। हरदम साथ रहनेवालेसे प्रेम करो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

सबसे श्रेष्ठ है—भगवान्की शरणागति। गीतामें भी यही आता है। भगवान्ने अपनी शरणागतिको ‘सर्वगुह्यतम’ अर्थात् ‘सबसे अत्यन्त गोपनीय’ कहा है (गीता १८/६४)। पहले भगवान्ने निराकार परमात्माकी शरणागति कही—‘तमेव शरणं गच्छ’ (१८/६२), जिससे परमशान्ति मिल जाती है। यह ‘ज्ञान’ है—‘इति ते ज्ञानमाख्यातम्’

(१८/६३)। अन्तमें साकारकी (अपनी) शरणागति कही—‘मामेकं शरणं ब्रज’ (१८/६६), जो सर्वगुह्यतम है।

खास बात है—भगवान्‌के चरणोंके शरण होना। सब कर्तव्यकर्म करते हुए भी आश्रय एक भगवान्‌का ही रखे। राजा हो, गृहस्थ हो या विरक्त हो, सबके लिये एक ही बात है—‘मामेकं शरणं ब्रज’, भगवान्‌के शरण होना। गीतामें भी यही बात है, रामायणमें भी। आप जैसे हैं, वैसे ही सीधे-सरल भावसे भगवान्‌के शरण हो जायँ। इसमें किसी योग्यता आदिकी जरूरत नहीं। अपनी कुटिलता, चतुराई ही बाधक होती है—‘सरल सुभाव न मन कुटिलाई’ (मानस, उत्तर. ४६/१)। अपनी चतुराईसे, सावधानीसे, भजनसे, सद्गुणोंसे वह काम नहीं होता, जो भगवान्‌की शरणागतिसे होता है। अपने साधनोंके द्वारा पापोंका नाश कठिनतासे होता है, पर भगवान्‌के शरण होनेसे सुगमतासे सब पाप नष्ट हो जाते हैं—‘अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः’ (गीता १८/६६) ‘मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर’। ऐसा आश्वासन एक भगवान्‌के सिवाय और कौन दे सकता है।

ज्ञानी तो आरम्भमें ही बड़ा हो जाता है—‘अहं ब्रह्मास्मि’, पर भक्त बूढ़ा हो जाय तो भी बालक ही रहता है! जैसे ज्यादा मैले कपड़ोंको धोनेमें धोबीको आनन्द आता है और बछड़ेको चाटकर साफ करनेमें गायको आनन्द आता है, ऐसे ही भक्तोंका मैल (पाप) दूर करनेमें भगवान्‌को आनन्द आता है!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यशरीरको मामूली नहीं समझना चाहिये। उसपर बहुत ज्यादा जिम्मेवारी है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी जिम्मेवारी मनुष्यशरीरपर है। यदि आप अपना जीवन शुद्ध बना लें तो केवल आपको ही नहीं, प्रत्युत दुनियामात्रको लाभ होता है। इसलिये जो सच्चे हृदयसे परमात्मामें लग जाता है, उसको संसार सब तरहकी सहायता देता है। उसको किसी वस्तुकी कमी नहीं रहती। परन्तु भोगोंमें लगनेके कारण मनुष्य सब जगह दुःख ही पाता रहता है।

जो मनुष्य संयम रखनेवाला साधारण (वेशमात्रसे) साधु भी हो जाता है तो उसे मुफ्तमें रोटी-कपड़ा मिलता है, पढ़नेके लिये पुस्तकें मिलती हैं, रहनेके लिये जगह मिलती है, यात्राके लिये टिकट मिलता है। साधुका वेशमात्र देखकर लोग उसपर श्रद्धा-विश्वास करते हैं। हम जितने अच्छे नहीं होते, उससे ज्यादा अच्छा लोग हमें समझते हैं।

आप साधु हो गये तो अब भजनके सिवाय आपका और क्या काम रहा? आपको पैसोंकी, चीजोंकी क्या जरूरत रही? यदि साधु सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाय तो वह साधुओंमें भी साधु हो जाता है। उसमें बड़ी विलक्षणता आ जाती है। लोगोंपर उसका अच्छा असर पड़ता है। उसका अपने-आप, बिना किये प्रचार हो जाता है। मान-सम्मान होने लगता है। उसको किसी मनुष्यकी गरज, गुलामी नहीं करनी पड़ती। आवश्यक वस्तुएँ अपने-आप आने लगती हैं। लखपति-करोड़पति-अरबपतिको भी आवश्यक वस्तुओंकी कमी रहती है, पर भगवान्‌में लगे हुएँको आवश्यकतासे पहले ही वस्तु प्राप्त हो जाती है। यह मेरी देखी हुई बात है।

गीताप्रेसके द्वारा दुनियाका बड़ा भारी उपकार हुआ है। उस गीताप्रेसके संस्थापक श्रीजयदयालजी गोयन्दका कहते थे कि आजकलके जमानेमें धन और स्त्री—इन दोकी तरफ जिसकी वृत्ति बिल्कुल नहीं है, ऐसे (कनक-कामिनीके त्यागी) साधुको महात्मा मानना चाहिये। उसको तत्त्वज्ञान नहीं हुआ, तो भी उसका जीवन्मुक्त महात्माके समान आदर करना चाहिये।

आप धनके द्वारा, विद्याके द्वारा, पदार्थोंके द्वारा दुनियाका इतना उपकार नहीं कर सकते, जितना उपकार भगवान्‌के भजनमें लगकर कर सकते हैं। इसलिये यदि अपना और दुनियाका उपकार करना हो तो भगवान्‌के



भजनमें लग जाओ। भजनमें लगनेसे आपकी दृष्टि बदल जायगी, संसार और तरहसे दीखने लगेगा। दृष्टि बदलते-बदलते 'वासुदेवः सर्वम्' में चली जायगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

विद्यार्थियोंके लिये सबसे पहली बात है कि वे सुबह-शाम माता-पिताको नमस्कार करें। जिनसे पढ़ते हैं, उन अध्यापकोंको नमस्कार करें। नमस्कारका बड़ा भारी माहात्म्य है—

**नमस्कार तैं रामदास, करम सबैं कट जाय।**

**जाय मिलै परब्रह्म मैं, आवागवण मिटाय॥**

माता, पिता और गुरुकी आज्ञाके अनुसार चलें। सबसे अधिक दर्जा माँका है। माँकी प्रसन्नतासे लोक और परलोक दोनों सुधरते हैं। जो माता-पिताकी आज्ञाका पालन करता है, उससे भगवान् बड़े प्रसन्न होते हैं और विश्वास करते हैं कि यह मेरी भी आज्ञाका पालन करेगा। परन्तु जो माता-पिताको नहीं मानता, उसपर भगवान् विश्वास नहीं करते कि जो अपने माता-पिताको नहीं मानता, वह मेरेको मानेगा, इसका क्या भरोसा?

पढ़ाईको तोतेकी तरह याद न करें। केवल सर्टिफिकेट पानेके लिये न पढ़ें। अच्छी शिक्षा मिले, उसको केवल सीखना ही नहीं है, प्रत्युत उसको अपने काममें लाना है, उसके अनुसार अपना जीवन बनाना है। केवल इस लोकका ही नहीं, परलोकका भी सुधार करना है। ऐसी योग्यताका सम्पादन करना चाहिये कि दूसरोंको भी पढ़ा सकें। मनमें यह भाव रहे कि कक्षामें मैं एक नम्बर आऊँ, पर दूसरे सहपाठियोंके प्रति ईर्ष्याका भाव न हो। हरेक काम सुचारु रूपसे करें। अपना काम खुद करें। खुद अपना काम करनेमें स्वतन्त्रता है। स्वतन्त्रता उन्नति करनेवाली होती है। एक क्षण भी निरर्थक न जाने दें। अपनी संस्कृतिकी रक्षा करें। व्यवसाय, भाषा, वेश-भूषा, भोजन और विवाह—इनकी रक्षासे अपनी संस्कृतिकी रक्षा होती है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**खेती करनेमें जो जाने-अनजाने हिंसा होती है, उसके पापसे छुटकारा कैसे होगा?

**स्वामीजी—**गीतामें दो बातें आयी हैं—

**शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥**

(४/२१)

‘केवल शरीर-सम्बन्धी कर्म करता हुआ भी पापको प्राप्त नहीं होता।’

**स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥**

(१८/४७)

‘स्वभावसे नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्मको करता हुआ मनुष्य पापको प्राप्त नहीं होता।’

खेती करना वैश्यका स्वधर्म है (गीता १८/४४)। तात्पर्य यह हुआ कि शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार स्वधर्मका पालन अथवा शरीर-निर्वाहमात्रके लिये आवश्यक कर्म करते हुए पाप नहीं लगता। ‘कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्’—ऐसा कहनेका तात्पर्य है कि पाप होता तो है, पर लगता नहीं। लापरवाहीका पाप लगता है, इसलिये सावधानी रखें। सावधानी रखते हुए भी कोई पाप हो जाय तो वह लगता नहीं। अतः अपनी जानकारीमें ठीक तरहसे काम करें, फिर पाप नहीं लगेगा।

सच्चे हृदयसे अपना कल्याण चाहनेवालेकी सहायता भगवान्, धर्म, शास्त्र, सन्त आदि सब करते हैं। उसकी सेवामें लगकर वस्तुएँ भी राजी हो जाती हैं। उसके निर्वाहके लिये वस्तुएँ अपने-आप आती हैं, जबर्दस्ती आती हैं। यदि वस्तु नहीं मिले तो समझे कि उसकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता हो तो वस्तु जरूर मिलती है।

सच्चे हृदयसे परमात्मामें लग जाओ तो निर्वाहकी आवश्यक वस्तु जरूर मिलती है—इसमें विकल्प अथवा सन्देह नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अभी जो परिवार-नियोजन, गर्भपात किये जा रहे हैं, उनका परिणाम बड़ा भयंकर होगा। उस परिणाम (दण्ड) से बच नहीं सकते, उसे निःसन्देह यहीं जीवित-अवस्थामें भोगना पड़ेगा। हिन्दू बढ़ जायें तो मुसलमानोंको खतरा नहीं है, पर मुसलमान बढ़ जायें तो हिन्दुओंको खतरा है! होगा क्या, भगवान् जानें; पर आपकी जो चाल है, वह सत्यानाश करनेवाली है। विवाह, परिवार-नियोजन आदि करवानेका अधिकार राजाको नहीं है, यह प्रजाका काम है।

**श्रोता**—हमारे बहुत मना करनेपर भी हमारे पुत्र-पुत्रवधूने हमारी बात मानी नहीं और उन्होंने गर्भपात करवा ही लिया! अब हमें क्या करना चाहिये?

**स्वामीजी**—आपकी कैसी परिस्थिति है, इसका मेरेको पता नहीं है, पर शास्त्रकी दृष्टिसे तो उनके हाथका पानी भी नहीं पीना चाहिये। गर्भपात करानेवाली स्त्रीके हाथका बना भोजन भी नहीं करना चाहिये। वह भोजनको देख भी ले तो वह भोजन नहीं करना चाहिये। उसकी मृत्यु होनेपर उसके लिये नारायणबलि आदि करनेवालेको भी पाप लगता है। इतना भयंकर पाप बताया गया है! अगर आप समर्थ हो तो उनको प्रेमसे, आदरसे अलग कर दो। उनका हिस्सा उनको दे दो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—पहले अनजानपनेमें गर्भपात करवा लिया हो तो उस पापसे छूटनेके लिये क्या प्रायश्चित्त करें?

**स्वामीजी**—गर्भपात इतना घोर पाप है कि इसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। पाराशरस्मृतिमें आया है—

**यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने।**

**प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥**

(पाराशरस्मृति ४/२०)

‘ब्रह्महत्यासे जो पाप लगता है, उससे दुगुना पाप गर्भपात करनेसे लगता है। इस गर्भपातरूपी महापापका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। इसमें तो उस स्त्रीका त्याग कर देनेका ही विधान है।’

परन्तु भगवन्नाममें पापोंके नाशकी विशेष शक्ति है। ऐसा कोई पाप नहीं है, जिसका भगवन्नाम लेनेसे प्रायश्चित्त न हो। अतः आर्तभावसे, रोककर भगवान्से प्रार्थना करे और दो-तीन वर्षोंतक कम-से-कम, कम-से-कम, कम-से-कम एक लाख भगवन्नाम प्रतिदिन ले। अधिक ले तो और बढ़िया है। भगवन्नामसे बढ़कर कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

प्रायश्चित्तके दो भेद बताये गये हैं—सामान्य और विशेष। नामजप, गंगास्नान, एकादशीव्रत आदि करनेसे सामान्य पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है। विशेष पापोंके लिये अलग-अलग विशेष प्रायश्चित्त बताये गये हैं। अनजानपनेमें जो पाप हो जाता है, वह जल्दी नष्ट होता है। खास बात यह है कि भीतरमें पश्चात्ताप होना चाहिये। इस विषयमें तीन बातें होनी चाहिये—पहली बात, यह स्वीकार करे कि मेरे द्वारा गलती हुई है। दूसरी बात, हृदयमें दुःख हो कि मैंने बहुत बड़ी गलती की। तीसरी बात, यह निश्चय करे कि अब आगे पुनः मैं यह गलती नहीं करूँगा। ये तीन बातें होनेपर सब पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है।

मैंने जितने भी प्रायश्चित्त पढ़े-सुने हैं, उन सबमें मेरेको ‘हेमाद्रि प्रायश्चित्त’ बढ़िया लगा। यदि हृदयमें दुःख, जलन, व्याकुलता हो जाय तो सब पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है। परन्तु पुनः पाप करनेपर प्रायश्चित्त नहीं होता।

पाप करके फिर प्रायश्चित्त कर लूँगा—इस प्रकार प्रायश्चित्तके सहारे जो पाप करता है, उसका पाप वज्रलेप हो जाता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जिस साधनसे मन स्वाभाविक भगवान्में लगता हो, वह करे। भक्त-चरित्र पढ़नेमें मन लगे तो उसे पढ़ो। अपना इष्ट उसीको माने, जिसपर श्रद्धा-विश्वास हो और जिसमें स्वतः मन लगे। पहले मन लग जाय, पीछे भजन होगा—ऐसा नहीं होता। भजन करनेसे ही मन लगेगा। अन्य समय तो संसारका चिन्तन करते हो और साधनके समय भगवान्का चिन्तन करना चाहते हो, यह कैसे होगा? हमारा सब समय साधनमें बीतना चाहिये। हमारा पूरा जीवन ही साधनमय हो जाय।

साधक चौबीस घण्टे ही साधन करता है। वह सब काम भगवान्के लिये ही करता है। अतः चाहे घरका काम हो, चाहे बाहरका (नौकरी, व्यापार आदि) काम हो, सब काम भगवान्का ही समझो। संसारकी सेवा होती है और भगवान्की पूजा होती है। अपना काम कोई है ही नहीं। इसके लिये पाँच बातें मान लो—

- १- हम भगवान्के ही हैं।
- २- हम जहाँ भी रहते हैं, भगवान्के ही दरबारमें रहते हैं।
- ३- हम जो भी शुभ काम करते हैं, भगवान्का ही काम करते हैं।
- ४- शुद्ध-सात्त्विक जो भी पाते हैं, भगवान्का ही प्रसाद पाते हैं।
- ५- भगवान्के दिये प्रसादसे भगवान्के ही जनोंकी सेवा करते हैं।

आप भगवान्के हो जाओगे तो आपका सब काम भगवान्का हो जायगा। आप भगवान्के, घर भगवान्का, कुटुम्ब भगवान्का, वस्तुएँ भगवान्की—यह मान लो तो आपका सत्संग करना सफल हो गया! सब कुछ भगवान्का मान लें—इससे सरल उपाय और क्या बताऊँ?

- जबतक अपनी इच्छा रखोगे, तबतक संसार आदर नहीं करेगा। अपनी इच्छा छोड़कर व्यवहार करो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अभी गायोंपर संकट आया हुआ है। आप गायोंकी रक्षा, उनका पालन कर सकें तो आपका धन, बल, जीवन, आयु सब सफल हो जायगा। इनको सफल करनेका अभी बहुत बढ़िया मौका है। गायोंकी रक्षा करनेके समान कोई पुण्य नहीं है। कठिनाता सहकर जो पुण्य कार्य किया जाता है, उसका अधिक माहात्म्य होता है।

- धनियोंका अन्तःकरण कठोर होता है। वे ज्यादा खर्च नहीं कर सकते।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान्की भक्तिके समान कोई लाभ नहीं है—‘लाभु कि किछु हरि भगति समाना’ (मानस, उत्तर.११२/४)। भक्तिके आनन्दके सामने सब आनन्द फीके पड़ जाते हैं। जैसे, बचपनमें खिलौनोंमें बड़ा आनन्द मिलता था, पर आज खिलौनोंमें वैसा आनन्द मिलता है क्या? बड़े होनेपर खिलौनोंका रस फीका पड़ जाता है। ऐसे ही ब्रह्मलोकतक सब संसार एक खिलौना है—‘आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन’ (गीता ८/१६)। भगवत्प्राप्ति होनेपर संसारके बड़े-से-बड़े सुख, ब्रह्मलोकतकके सब सुख फीके पड़ जाते हैं। संसारके सुखको तो सब प्राप्त नहीं कर सकते, पर भगवत्प्राप्तिके आनन्दको आप सब-के-सब प्राप्त कर सकते हैं। इस आनन्दके मनुष्यमात्र अधिकारी हैं। साधारण-से-साधारण आदमी भी परमात्माको प्राप्त कर सकता है—यह विशेषता केवल हिन्दूधर्ममें ही है! केवल अनन्य चाहना होनी चाहिये।

सांसारिक सुख-दुःख हमारे ही किये हुए हैं। सुखका तो वहम है और दुःख प्रत्यक्ष है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

एक कहानी आती है। एक सन्त किसी गृहस्थके घर भिक्षाके लिये गये। उस घरमें एक तोता पिंजरेमें बन्द था। तोतेने सन्तको देखा तो उसने पूछा कि बाबाजी, इस पिंजरे (बन्धन) से मैं कैसे छूटूँ? यह सुनते ही बाबाजी नीचे गिर पड़े। सब लोग घबराकर दौड़े कि बाबाजीको क्या हो गया! वे बाबाजीको उठाने लगे तो बाबाजी तुरन्त उठकर खड़े हो गये! तोता बाबाजीकी भाषा समझ गया कि मर जाओ, तो बन्धन छूट जायगा। बाबाजीके जानेके बाद तोता भी गिर पड़ा। घरवालोंने समझा कि वह मर गया, और उन्होंने पिंजरा खोलकर उसे निकाल दिया। बाहर निकलते ही तोता उड़ गया! इस तरहसे जो संसारसे मर जाता है, वह मुक्त हो जाता है अर्थात् जीते-जी अमर हो जाता है। **अगर आप सदाके लिये जीना चाहते हो तो संसारसे मरना पड़ेगा।** संसारसे मरना क्या है? यह शरीर हमारा है, ये रुपये हमारे हैं, यह जमीन हमारी है, यह कुटुम्ब हमारा है—इसको छोड़ दो, यही जीते-जी मरना है। जो मर जाता है, वह किसी वस्तुको अपनी कहता है क्या? जैसे मरा हुआ आदमी किसीको अपना नहीं कहता, ऐसे ही आप जीते हुए ही किसीको अपना मत मानो।

आप शरीरको अपना कहते हो, पर किसीकी ताकत है कि शरीरको सदाके लिये रख ले, उसे मरने न दे, उसे बीमार न होने दे? शरीरपर आपका वश नहीं चलता, फिर यह अपना कैसे हुआ? **‘पानीमें बताशा है, ऐसे तनका तमाशा है’**। जो मिला है और बिछुड़ जायगा, वह अपना नहीं है। अपने तो केवल भगवान् हैं, जो कभी बिछुड़ते नहीं। अतः संसारसे मर जाओ और भगवान्से सम्बन्ध जोड़ लो। भगवान्के सिवाय कोई अपना नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

ज्ञान स्वाभाविक है, पर हम भूलसे अज्ञानको स्वाभाविक मानते हैं। वास्तवमें कोई नया ज्ञान नहीं होता, प्रत्युत केवल भ्रम मिटता है। जैसे बादलसे सूर्य ढक जाता है, ऐसे ही व्यक्तिगत अज्ञानसे ज्ञान ढक जाता है। अतः ज्ञान होता नहीं, ज्ञान है।

- संसारका सुख पराया है। उसकी लोलुपता ही बाधा है, और कोई बाधा नहीं।
- मरनेपर शरीर अलग होगा—ऐसी बात नहीं है। शरीर पहलेसे ही अलग है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अगर सच्चे हृदयसे कल्याण चाहते हो तो गुरु-शिष्यका सम्बन्ध मत जोड़ो, प्रत्युत सत्संग करो और जो बातें अच्छी लगें, उसके अनुसार अपना जीवन बनाओ। आजकलके जमानेमें गुरु बनानेसे कल्याण हो जाय—यह बात मुझे दीखती नहीं। कल्याण हो जाय तो बड़े आनन्दकी बात है, पर मेरी इसमें सम्मति नहीं है। होगा यह कि टोली बन जायगी, राग-द्वेष होंगे, आपसमें लड़ाई होगी। मेरी बात आपको उल्टी दीखेगी, पर मैं गुरुका निषेध नहीं करता हूँ। मैं तो आजकलके समयके अनुसार कहता हूँ। आजकल बहुत ठगीका जमाना है। इसलिये प्रार्थना करता हूँ कि आप इसमें फँसो मत।

मेरी अज्ञता मानो या अभिमान मानो, पर देखनेपर, विचार करनेपर भी मुझे कोई गुरु भगवत्प्राप्त दीखता नहीं! बिना गुरु बनाये बहुत जल्दी कल्याण हो सकता है, केवल लगनकी कमी है। सच्चे हृदयसे भगवान्की तरफ चलनेवालेकी सब सन्त, भगवान्, धर्म आदि सहायता करते हैं।

बड़ा भयंकर समय आ रहा है! इस देशमें बहुत विप्लव होगा। ‘गीताप्रेस’ और ‘मानव-सेवा-संघ’ (श्रीशरणानन्दजी महाराज) की पुस्तकें दक्षिण भारतमें पचास-सौ जगह सुरक्षित रख देनी चाहिये, जिससे वे बच जायँ।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवत्प्राप्ति बहुत जल्दी हो सकती है। संसारकी आसक्ति छोड़नेमें कठिनता है, भगवत्प्राप्तिमें कठिनता नहीं है। आप कहते हैं कि आसक्ति छूटती नहीं, पर मैं कहता हूँ कि आसक्ति टिकती नहीं! रुपयोंकी, भोगोंकी आसक्ति एक दिन भी पूरे समय नहीं टिकती। भगवान्की लगन तो निरन्तर रह सकती है, पर संसारकी आसक्ति निरन्तर रह सकती ही नहीं। आसक्ति आगन्तुक दोष है। आसक्ति क्यों होती है? भीतरमें कोई कमी है, उस कमीकी पूर्तिके लिये संसारमें आसक्ति हो रही है। परन्तु नाशवान् वस्तुकी प्राप्तिसे उस कमीकी पूर्ति हो सकती ही नहीं।

संसारमें आसक्ति न रहे, प्रत्युत भगवान्में प्रेम हो जाय। इतना प्रेम हो जाय कि अन्य सब इच्छाएँ छूट जायँ। एक ही लालसा रह जाय कि भगवान्में प्रेम कैसे हो? रात-दिन एक ही बात रहे कि भगवान् मीठे कैसे लगें? उसकी आवश्यकताका अनुभव करें।

**एक परमात्माकी ही इच्छा हो, साथमें कोई दूसरी इच्छा न हो तो परमात्मप्राप्ति होते आठ पहर भी नहीं लगेंगे। एक इच्छा रहते ही तत्काल प्राप्ति हो जायगी। गीताका यह श्लोक हरदम याद रखो—**

**अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।**

**तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥**

(गीता ८/१४)

‘हे पृथानन्दन ! अनन्य चित्तवाला जो मनुष्य मेरा नित्य-निरन्तर स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें लगे हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसको सुलभतासे प्राप्त हो जाता हूँ।’

विचार करें कि सब जगह संसार हरदम रहता है कि परमात्मा हरदम रहते हैं। परमात्माके बिना कोई देश, काल, वस्तु आदि नहीं है। फिर उनकी प्राप्तिमें देरीका क्या कारण है? यही कारण है कि आप चाहते नहीं। **परमात्मप्राप्ति न होनेमें पाप कारण नहीं हैं। पापमें परमात्माको रोकनेकी ताकत नहीं है। परमात्माको रोकनेकी ताकत किसीमें भी नहीं है।** पापीको भी परमात्मप्राप्ति हो सकती है—‘अपि चेत्सुदुराचारो भजते’ (गीता ९/३०)। केवल उनकी चाहना हो, और कोई चाहना न हो तो उनकी प्राप्ति हो जायगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मिलनेवाली वस्तु मिलेगी ही, मिले बिना रहेगी नहीं। उसकी चाहना करना निरर्थक है। चाहना करना मुफ्तमें ही दुःख पाना है। चाहना करनेसे सिवाय नुकसानके कोई लाभ नहीं। करोड़पति-अरबपति हो जाय तो भी दरिद्रता वैसी-की-वैसी ही रहेगी। मिलनेवाली वस्तु अपने-आप मिलेगी, और नहीं मिलनेवाली वस्तु नहीं मिलेगी, चाहे कितनी चेष्टा कर लो। करोड़ों रुपये पासमें हों तो भी नहीं मिलेगी। मैं पोथीकी पढ़ी हुई बात नहीं कहता हूँ, अपने अनुभवकी बात कहता हूँ। इच्छा करोगे तो वस्तु कठिनतासे मिलेगी, और इच्छा नहीं करोगे तो वस्तु सुगमतासे मिलेगी, अपने-आप मिलेगी, बढ़िया मिलेगी। उसकी गुलामी नहीं करनी पड़ेगी।

एक गाँवमें साधुओंकी मण्डली भिक्षा लेने गयी। परन्तु उनको भिक्षा नहीं मिली। तब उनमेंसे एक सन्त बोले कि जरूर किसी साधुके पास रुपये हैं, अन्यथा भिक्षा न मिले—ऐसा हो नहीं सकता। वे रुपये ही आड़ लगा रहे हैं। जब देखा तो एक साधुके पाससे रुपये मिल गये। **पैसा पासमें हो तो वस्तुके आनेमें बाधा लगती है, पर पैसा पासमें न हो तो वस्तु सीधी आती है।** यह बात समझमें आती नहीं, पर बात ऐसी है। इसलिये आप चिन्ता न करके भगवान्के भजनमें लगे रहो। अपने-आप प्रबन्ध होगा। क्या होगा, कैसे होगा, इसे भगवान् जानें; हम बता नहीं सकते। यह तरीका भगवान् ही जानते हैं। अगर कोई भूखा मर भी जाय तो नई बात क्या हो गयी? खाते-खाते नहीं मरते क्या? मरना कोई टाल नहीं सकता।

- जो सच्चे हृदयसे भगवान्में लगा है, उसका अहित कोई कर सकता ही नहीं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भोग और संग्रह अच्छा लगता है, फिर परमात्मप्राप्ति कैसे हो? साधकमें यह बात मुख्य रहनी चाहिये कि मुझे संसारका सुख नहीं लेना है। पारमार्थिक उन्नति तभी होगी, जब सांसारिक सुखका त्याग करोगे। भोग-पदार्थोंको सच्चा मानते हुए भगवान्की प्राप्ति कैसे होगी? संसारकी सत्यता मुख्य बाधा है, जो साधकको आगे नहीं बढ़ने देती। साधकको आरम्भसे ही यह मानना चाहिये कि संसार सत्य नहीं है।

शरीरसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। शरीर संसारकी सेवाके लिये है। शरीरकी महिमा सेवासे है। शरीरसे संसारकी सेवा करो तो भगवान् राजी हो जायँगे।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**प्रतिकूलता आनेपर भजन ज्यादा होना चाहिये।** अन्त समयमें प्रतिकूलता (रोग, सन्ताप आदि) ही आयेगी; क्योंकि प्रायः प्रतिकूलतामें ही प्राण जाते हैं। इसलिये प्रतिकूलतामें भजन बढ़ना चाहिये। प्रतिकूलतामें भजन नहीं होगा, तो फिर अनुकूलतामें भी भजन नहीं होगा।

वास्तवमें 'भजन' नाम प्रेमका है। भजन क्रिया नहीं है। गिनती करके नामजप करना भजन नहीं है। नामजप करनेसे भगवान्में प्रेम होगा, उस प्रेमका नाम भजन है।

**पन्नगारि सुनु प्रेम सम भजन न दूसर आन।**

**अस बिचारि मुनि पुनि पुनि करत राम गुन गान॥**

(मानस, अरण्य. १० में पाठभेद)

तात्पर्य है कि गुणगान करनेसे भगवान्में प्रेम होगा, इसलिये मुनिजन भगवान्का गुणगान करते हैं। भगवान्में प्रेम होगा तो फिर भगवान्का नाम भी प्रिय लगेगा, रूप भी प्रिय लगेगा, लीला भी प्रिय लगेगी। भगवान्की हर चीज प्यारी लगेगी।

स्वयंसे भगवान् प्रिय लगें, मीठे लगें। अपने प्राणोंसे भी बढ़कर भगवान् प्रिय लगें। अनुकूलता आये या प्रतिकूलता आये, सब परिस्थितियोंमें भगवान् अच्छे लगें, प्यारे लगें। आपको रुपये प्यारे लगते हैं, तो क्या प्रतिकूलतामें रुपये प्यारे नहीं लगते? प्रेम तो हरेक परिस्थितिमें रहता है। भजनका उद्देश्य होनेसे भजन होगा।

संसारमें कोई चीज प्यारी लगती है तो वह धोखा देनेवाली है। वह सदा साथ रहेगी नहीं।

भगवान्के प्रेमीको भगवान् ही दीखते हैं, संसार नहीं दीखता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आप परमात्माके अंश हैं। अनन्त ब्रह्माण्डोंमें अनन्त वस्तुएँ हैं, पर आपकी कोई वस्तु नहीं है। आप आज, अभी, इसी समय स्वीकार कर लें कि हम परमात्माके अंश हैं और परमात्मामें ही रहते हैं, तो निहाल हो जायँगे। जड़ शरीर प्रकृतिका अंश है और प्रकृतिमें ही रहता है। जड़ तो सपूत ही रहता है, आप ही कपूत हो जाते हैं! आपकी एकता परमात्माके साथ है, शरीर-संसारके साथ नहीं। आप कितने ही पापी हों तो भी आप परमात्माके साथ हैं। पाप-पुण्य आपका स्पर्श ही नहीं करते। आप परमात्माके हैं और परमात्मा आपके हैं—इसको आप भूल जायँ तो भी बात वैसी-की-वैसी ही है। भूलना और न भूलना तो बुद्धिमें है। आपने जड़ (शरीर-संसार) को पकड़ा है, तभी वह आपको अपनी तरफ खींचता है। आप सम्बन्ध मत मानो तो वह नहीं खींचेगा। भगवान्के साथ सम्बन्ध मान लो तो अनन्त जन्मोंके पाप छूट जायँगे।



मैं परमात्माका हूँ—यह चिन्तन करनेकी बात नहीं है, प्रत्युत माननेकी बात है। दो और दो चार ही होते हैं, इसमें चिन्तन करनेकी क्या बात है?

भगवान्के नाते संसारकी सेवा करो तो भगवान्में प्रेम हो जायगा। आत्मज्ञान चाहते हो तो आत्माके नाते संसारकी सेवा करो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनमें कामना, राग-द्वेष न हों, पर भगवान्में अपनापन न हो तो मुक्ति हो जायगी, पर परमात्मा नहीं मिलेंगे। परन्तु मनमें कामना, राग-द्वेष हों, पर भगवान्में अपनापन हो तो परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। तात्पर्य है कि निर्विकारताका सम्बन्ध मुक्तिके साथ है, पर अपनेपनका सम्बन्ध भगवान्के साथ है। सुग्रीव कामी था, पर उसने भगवान्को अपना मान लिया। भगवान्को अपनापन सबसे अधिक प्यारा है—‘रामहि केवल प्रेमु पिआरा’ (मानस, अयोध्या. १३७/१)। जैसे बालकका माँमें प्रेम रहता है कि ‘मेरी माँ है’, ऐसे ही भगवान्में प्रेम होना चाहिये।

भगवान्की प्राप्तिमें भक्तिकी प्रधानता है, ज्ञानकी नहीं। ज्ञानसे मुक्ति (जन्म-मरणसे छुटकारा) हो जाती है, पर प्रेमसे भगवान् भी वशमें हो जाते हैं ! जब ज्ञानमें भी सन्तोष नहीं होता, तब प्रेम प्राप्त होता है। प्रेम अन्तिम तत्त्व है।

**श्रोता**—भगवान्में प्रेम न होनेमें क्या कारण है?

**स्वामीजी**—शरीर-संसारमें मोह है, इसलिये प्रेम नहीं होता। जबतक शरीर-संसारमें, भोगोंमें मोह रहता है, तबतक भगवान्में प्रेम नहीं होता। बालकको माँ तभीतक प्यारी लगती है, जबतक विवाह नहीं होता—

**सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥**

(मानस, उत्तर. १०१/२)

अच्छे-अच्छे कथावाचकोंको आप देख लो, वे प्रेमका तत्त्व नहीं जानते; क्योंकि रुपये-पैसे, मान-बड़ाई आदिमें मोह है। मोहमें आसक्त होनेसे वे ज्ञानकी बात भी नहीं जान सकते। केवल सीखे हुए ज्ञानकी बातें कहते हैं। ज्ञान दो तरहका होता है एक सीखने-सिखानेका ज्ञान होता है, और एक अनुभवका ज्ञान (तत्त्वबोध) होता है। आजकल प्रायः सीखे हुए ज्ञानी ही मिलेंगे, असली ज्ञानी नहीं मिलेगा। कथावाचक लोगोंको बातें तो सुनाते हैं, पर अनुभव न ज्ञानका है, न भक्तिका।

चाहे मोह करो, चाहे प्रेम करो, दोनोंमें एक ही होगा—

**कबीर मनुआँ एक है, भावे जिधर लगाय।**

**भावे हरि की भगति करे, भावे विषय कमाय॥**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

सभी साधनोंमें एक ही बात है—असत्का त्याग और सत्का ग्रहण। एक मार्मिक बात है कि वास्तवमें असत्का सम्बन्ध असत् है। असत्का त्याग नहीं कर सकते, प्रत्युत उसके सम्बन्धका त्याग कर सकते हैं। शरीरका त्याग कैसे करेंगे? उसके सम्बन्धका ही त्याग करना है। असत्का उपयोग तो करना है, पर उसको महत्त्व नहीं देना है। महत्त्व सत्को देना है।

दीखता ऐसा है कि समय थोड़ा है, पर वास्तवमें इतना समय है कि मनुष्य कई बार अपना कल्याण कर सकता है, जबकि कल्याण एक ही बार होता है और सदाके लिये होता है। अतः समय कम नहीं मिला है। बाधा यह है कि हमने संसारकी सत्ता और महत्ता मानकर उसके साथ सम्बन्ध जोड़ रखा है। अभी बड़ा सुन्दर मौका



मिला हुआ है। हम शरीरके रहते हुए शरीरसे अलगावका अनुभव कर लें।

हम जी रहे हैं, और परमात्माकी प्राप्ति करनी है—ये दोनों ही बातें सच्ची नहीं हैं। सच्ची बात यह है कि हम प्रतिक्षण मर रहे हैं, और परमात्मा नित्यप्राप्त हैं। **नित्यप्राप्त परमात्माको प्राप्त करना ही बुद्धिमानोंकी बुद्धिमानी, सज्जनोंकी सज्जनता और श्रेष्ठ पुरुषोंकी श्रेष्ठता है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यजीवनका समय बहुत कीमती है। इस मनुष्यजीवनमें हम संसारका कल्याण कर सकते हैं, अपने कल्याणका तो कहना ही क्या! ऐसा मौका पाकर भी निरर्थक बातोंमें, खेल-कूदमें और पापोंमें समय जाता है तो यह बड़े नुकसानकी बात है! इसलिये जो बचा हुआ समय है, उसे अच्छे-से-अच्छे, उत्तम-से-उत्तम काममें लगायें। जो कृपणता आप पैसोंमें लगाते हैं, वह समयमें लगानी चाहिये।

अपने कल्याणका, आध्यात्मिक उन्नतिका जैसा मौका भारतमें है, वैसा अन्य किसी देशमें नहीं है। कल्याण (मुक्ति)-का आविष्कार इस देशमें विशेषतासे हुआ है। जैसे वैज्ञानिक नित्य नये-नये भौतिक आविष्कार कर रहे हैं, ऐसे ही इस देशमें हम नये-नये आध्यात्मिक आविष्कार कर सकते हैं।

मनुष्यशरीरमें आकर हम पुराने कर्मोंका फल भोगते हुए भी अपनी नयी आध्यात्मिक उन्नति कर सकते हैं। आध्यात्मिक उन्नति पुराने कर्मोंका फल नहीं है।

**अच्छे महापुरुषोंको अवतार कहना उनका तिरस्कार है।** कारण कि जो पहलेसे ही ऊँचे पुरुष हैं, वे इस जन्ममें आकर बड़ा काम करें तो क्या विशेषता हुई? जो साधारण होकर भी उन्नति कर ले, उसकी विशेषता है। जिसके पास पहलेकी पूँजी नहीं है, पहलेकी आध्यात्मिक उन्नति नहीं है, वह अपनी नयी आध्यात्मिक उन्नति कर ले तो यह उसकी विशेषता है।

**विचार करें, जिस चालसे हम चल रहे हैं, उस चालसे हमारा कल्याण कब होगा ?** क्या इसी जन्ममें हो जायगा? अपना कल्याण हमें खुदको ही करना पड़ेगा। सन्त-महात्मा सहायता कर सकते हैं, उपाय बता सकते हैं। सच्चे हृदयसे भगवान्को पुकारो तो भगवान् हर समय सहायता करनेको तैयार हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अभी बड़ा भयंकर कलियुग है। बड़े-बड़े पाप हो रहे हैं। ऐसे समयमें सत्संगका मौका केवल भगवत्कृपासे मिलता है, अपने उद्योगसे नहीं। सदुपयोग करनेसे सब वस्तुएँ उद्धार करनेवाली हो जाती हैं। परन्तु सदुपयोग क्या है, इसे सत्संगसे ही जान सकते हैं। सत्संगके बिना विवेकका उपयोग काम नहीं आता।

**ऐसी कोई लौकिक अथवा पारलौकिक उन्नति नहीं है, जो मनुष्यजन्ममें न हो सके।** अतः हर समय सावधान रहें, जाग्रत् रहें। हर समय भगवान्का स्मरण करें। हमारी वृत्ति हर समय भगवान्में ही रहे। भगवान्का जो रूप आपकी समझमें आया है, उस रूपको नित्य-निरन्तर याद रखें। केवल भगवान्को याद रखनेसे सब काम हो जायगा।

**यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्। विमुच्यते.....**

(महाभारत, अनु. १४९)

‘जिनके स्मरण करनेमात्रसे मनुष्य जन्म-मृत्युरूप संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है.....।’

**हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्।**

(श्रीमद्भागवत ८/१०/५५)

‘भगवान्की स्मृति समस्त विपत्तियोंसे मुक्त कर देती है।’

इसलिये हर समय भगवान्से एक ही प्रार्थना करते रहें कि ‘हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं’।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

सन्त-महात्मा मात्र जीवोंका कल्याण चाहते हैं। **कल्याणकी सर्वश्रेष्ठ बात है—भगवान्की शरणागति।** शरणागति गीताका सार है। इसके सब अधिकारी हैं। इसलिये ‘हे नाथ! हे नाथ!!’ कहते हुए भगवच्चरणोंकी शरण हो जाओ। भगवान्की शरण लेकर ही सब काम करो—‘मामाश्रित्य यतन्ति ये’ (७/२९)। शरण लेनेसे आप सब दुःखोंसे छूट जाओगे। कुछ बाकी नहीं रहेगा।

भगवान्के समान कृपा करनेवाला, क्षमा करनेवाला दूसरा कोई है नहीं, हो सकता नहीं।

काम संसारका करें, पर भाव भगवान्का रखें। सब काम भगवान्के लिये ही करें, अपने लिये नहीं। मेरापन छोड़ते ही आपकी सब क्रियाएँ भजन हो जायँगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**जितनी उम्र हम मानते हैं, उतनी हमारी उम्र नहीं है। हम अनादिकालसे हैं और अनन्तकालतक रहनेवाले हैं।** अनन्त जन्म बीतनेपर भी हमारा नाश नहीं हुआ और न कभी नाश होगा। हम (स्वयं) साक्षात् परमात्माके अंश हैं। अतः थोड़े-से समयके लिये मिलनेवाली धन-सम्पत्तिमें राजी होना गलती है। इस मनुष्यजन्ममें ही हम सब दुःखोंसे छूटकर महान् आनन्दको प्राप्त कर सकते हैं। मनुष्यशरीरमें हम ही सोच सकते हैं कि हमें क्या करना चाहिये; क्योंकि हमें बहुत विलक्षण विवेक मिला हुआ है। ऐसा दुर्लभ अवसर चूक गये तो बहुत पछताना पड़ेगा। शरीर छोड़कर कब यहाँसे जाना पड़े, इसका कुछ पता नहीं है। साथ देनेवाला कोई नहीं है। अकेलेको मरना पड़ेगा। आपको जलानेवाले कई मिलेंगे, पर आपके साथ जलनेवाला कोई नहीं मिलेगा—

आराम के हैं सब संग साथी, जब वक्त पड़ा तो कोई नहीं,  
यहाँ मतलब के हैं लोग सभी, दुनिया में किसी का कोई नहीं।  
जब टिकट मिला है जाने का, तब डेरा दिया है मसाणों में,  
वहाँ जलानेवाले लाखों थे, पर जलनेवाला कोई नहीं॥

● संसारमें सब स्वार्थ भरा हुआ है। न्यायकी बात कहनेवाले बहुत कम हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**सुगमतासे कल्याण हो जाय, इसके लिये शरणागति श्रेष्ठ साधन है।** संसारका आश्रय लेनेसे बहुत दुःख मिलता है, धोखा मिलता है, विश्वासघात होता है। कभी किसीका और कभी किसीका आश्रय लेनेसे काम बिगड़ता है। परन्तु एक भगवान्का आश्रय लेनेसे सब काम ठीक हो जाता है। संसारमें वहम होता है सुखका, पर मिलता है दुःख। इसलिये ‘सुख होगा’—यह वहम तो रहता है, पर ‘सुख मिल गया’—यह अनुभव नहीं होता। परन्तु एक भगवान्का आश्रय लेनेसे बहुत आनन्द मिलता है और कल्याण भी हो जाता है। चिन्ता भगवान्को दे दो, आनन्द आप ले लो ! **भगवान् जैसे अपने हैं, ऐसा अपना संसारमें कोई नहीं है।**

शरणागति-साधनमें अभिमान पैदा नहीं होता। साधक यही मानता है कि जो कुछ होगा, भगवान्की कृपासे होगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**जो सम्पूर्ण सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले हैं, उन्हीं परमात्माके हम अंश हैं। हम भले ही भगवान्को भूल गये हों, पर वे हमें नहीं भूले हैं। हम कैसे ही क्यों न हों, भगवान् हमारा**

पूरा ख्याल रखते हैं। जो भगवान्‌को यादतक नहीं करते, उनका भी भगवान्‌ प्रेमपूर्वक पालन करते हैं, सब तरहका प्रबन्ध करते हैं।

एक बार रुक्मिणीजीने विचार किया कि मैं देखूँ, भगवान्‌ इतने जीवोंका कैसे पालन करते हैं? उन्होंने एक डिब्बी लेकर उसमें एक कीड़ीको बन्द करके रख दिया। दूसरे दिन उन्होंने भगवान्‌से पूछा कि महाराज, आपने सबको भोजन पहुँचा दिया, सबके भोजनका ठीक-ठीक प्रबन्ध कर दिया? भगवान्‌ बोले कि हाँ, सबको भोजन पहुँचा दिया। रुक्मिणीजीने जाकर डिब्बीको खोला तो देखा कि कीड़ीके मुखमें चावल है। रुक्मिणीजीको बड़ा आश्चर्य हुआ! बात यह हुई कि डिब्बीको बन्द करते समय रुक्मिणीजीके तिलकपर लगा एक चावल डिब्बीमें गिर गया। इसका रुक्मिणीजी को पता ही नहीं लगा। रुक्मिणीजीने डिब्बीको पीछे बन्द किया, पर भगवान्‌ने प्रबन्ध पहले ही कर दिया ! इस प्रकार भगवान्‌ किसका कैसे प्रबन्ध करते हैं, कैसे रक्षा करते हैं, इस बातको हम जान नहीं सकते। यह हमारी बुद्धिसे बाहरकी बात है।

हमारे एक मित्र थे। उन्होंने विचार किया कि देखें, भगवान्‌ कैसे पालन करते हैं! उन्होंने निश्चय किया कि मैं एक जगह रहूँगा नहीं, भिक्षा लेने जाऊँगा नहीं, किसीसे मिलूँगा नहीं, कोई पूछे तो बोलूँगा नहीं, किसीसे कुछ माँगूँगा नहीं। फिर देखूँ, भगवान्‌ कैसे देते हैं, किस तरहसे देते हैं? उन्होंने एक कमण्डलु और पानी निकालनेके लिये एक रस्सी ले ली और वहाँसे चल दिये। चलते-चलते कोई गाँव दिखायी देता तो रास्ता बदलकर दूसरी तरफ, जंगलकी ओर चल देते। ऐसा करते हुए दो-तीन दिन हो गये। एक दिन शामके समय उन्हें एक गाँवके पास कोई भेड़ चरानेवाला मिल गया। उसने प्रणाम किया और बातें पूछने लगा, पर महाराज कुछ बोले नहीं और दूसरे रास्ते चल दिये। वह रास्ता खेतकी तरफ जाता था। रात हो चुकी थी। उन्होंने खेतके कुँएसे जल निकालकर हाथ-मुँह धोया, जल पिया और वहीं सो गये। अचानक 'महाराज! महाराज!' आवाज सुनकर उनकी नींद खुल गयी। देखा तो वह भेड़ चरानेवाला हाथमें लोटा लिये खड़ा था। वह बोला कि 'महाराज, मैं आपके लिये दूध गरम करके लेकर आया हूँ, और गायका दूध लाया हूँ, बकरीका नहीं'।

इस तरह भगवान्‌ सबका पालन करते हैं। कोई भजन करता है कि नहीं करता है, भगवान्‌को याद करता है कि नहीं करता है, इसकी भगवान्‌को कोई परवाह नहीं। एक सज्जन एकादशीका व्रत किया करते थे। व्रतके दूसरे दिन वे किसी साधुको, ब्राह्मणको भोजन कराकर फिर खुद भोजन किया करते। एक दिन उन्होंने एकादशी-व्रत रखा तो व्रतके दूसरे दिन वर्षा होनेके कारण भोजन करने कोई आया नहीं। वे ढूँढ़नेके लिये बाहर गये तो उनको एक वृद्ध, सफेद दाढ़ीवाला साधु मिला। उससे पूछा कि भोजन करोगे, तो वह बोला कि हाँ, करूँगा। वे उस साधुको घर ले आये। उनको बैठाकर भोजन परोसा तो वे पाने लग गये। वे सज्जन बोले कि 'महाराज, सन्तलोग तो पहले भगवान्‌को भोग लगाते हैं, फिर प्रसाद पाया करते हैं'। वह साधु बोला कि 'भगवान्‌ क्या होते हैं? यह सब पाखण्डियोंका, ठगोंका काम है, आदि-आदि'। इस प्रकार जब वह भगवान्‌की निन्दा करने लगा तो उस सज्जनने भोजनकी पत्तल खींच ली और बोले कि 'यदि भगवान्‌ कुछ नहीं, सब पाखण्ड है, तो मैं किसके नाते आपको भोजन करा रहा हूँ? भगवान्‌के नाते ही तो मैं आपको भोजन करा रहा हूँ।' इतनेमें आकाशवाणी हुई कि 'यह तो बचपनसे ही ऐसा था और इस तरह मेरी निन्दा करता आया है, मेरा भजन कभी किया ही नहीं, फिर भी मैंने इतने दिन इसका पालन किया, पालन करते इसकी सफेद दाढ़ी हो गयी, तू इसको एक समय भी भोजन नहीं दे सका! अगर तेरी तरह मैं विचार करता तो क्या यह इतने दिन जीता?' इस तरह **कोई भजन करे या निन्दा, भगवान्‌ सबका पालन करते हैं**। जैसे सृष्टि-रचना करना ब्रह्माजीका और संहार करना शंकरका काम है, ऐसे पालन करना विष्णुका काम है। ये अपना काम पूरी तत्परतासे करते हैं। अब कोई कैसा है, भजन करता है कि नहीं करता है, आस्तिक है कि नास्तिक है, इसकी तरफ ख्याल ही नहीं करते और सबका पालन-पोषण करते हैं। उनकी कृपासे ही सब जी रहे हैं। हम अपनी ताकतसे अपना पालन, अपनी रक्षा कर नहीं सकते। **ऐसे भगवान्‌का**

स्मरणमात्र करनेसे वे राजी हो जाते हैं। इससे सुगम और क्या साधन होगा!

● सत्संग करनेवाले और सत्संग न करनेवाले—दोनोंमें बड़ा फर्क होता है, पर इस फर्कको सत्संग करनेवाले ही जानते हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

सब शास्त्रोंका सार है—भगवान्का स्मरण। हरेक काममें भगवान्को याद करें तो मंगल—ही—मंगल है। एक भगवान्को याद करनेसे सब काम ठीक हो जाते हैं—‘एकै साथै सब सधै’।

इस भयंकर कलियुगमें भगवान्का स्मरण और नामजप मुख्य है। कलियुगमें भगवन्नामकी ऋतु है। ऋतुमें खेती बढ़िया होती है। इसलिये भगवन्नामका विशेषतासे जप करें। नामजपके साथ-साथ प्रार्थना भी करें कि ‘हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं’।

सत्संग सम्पूर्ण साधनोंकी जननी है। जो सत्संग करता है, वह नामजप करेगा ही। वह नामजप न करे, यह उसके हाथकी बात नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान् अपनी कृपासे प्रकट होते हैं, हमारे बल, बुद्धि, विद्या, योग्यता आदिसे नहीं। उनका वर्णन करनेमें भी हमारी इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिमें ताकत नहीं है। कारण कि वर्णन करनेमें माया साथमें रहेगी, जबकि भगवान् मायासे अतीत हैं।

हमारे एक तरफ भगवान् हैं, एक तरफ जगत् है। जो जगत्में रचे-पचे हैं, वे भगवान्को नहीं जान सकते। भगवान्को जाननेका उपाय है—भगवान्के हो जायँ। भगवान्की परा प्रकृति होनेसे जीव स्वतः महान् है। संसारकी वस्तुको लेकर वह महान् नहीं बनता, प्रत्युत तुच्छ बनता है। हम चेतन व अविनाशी हैं, जगत् जड़ व नाशवान् है। हम इस जगत्के वासी नहीं हैं। हम भगवान्के हैं। यहाँ तो सब बदलनेवाला है, पर हम सदा एकरस रहनेवाले हैं। जगत्के साथ सम्बन्ध जोड़कर हम भी जड़ बन जाते हैं। परन्तु भगवान्को अपना मान लेनेसे हम जड़ नहीं रहते, चेतन हो जाते हैं।

आप भगवान्को अपना मान लें तो मना करनेवाला कौन है? अगर आप अपनेको भगवान्का नहीं मानोगे तो क्या मानोगे? अन्तमें भगवान्का मानना ही पड़ेगा। आप सदासे ही भगवान्के थे और भगवान्के ही रहोगे। आप अपनेको भगवान्का नहीं मानो तो भी आप भगवान्के हैं, और मानो तो भी भगवान्के हैं। नहीं मानोगे तो दुःख पाओगे, और मानोगे तो निहाल हो जाओगे। बेटा कपूत या सपूत हो सकता है, पर पूत नहीं हो—ऐसा कैसे हो सकता है? आप कितने ही पापी, दुराचारी हों, पर हैं तो भगवान्के ही! आप कितना ही पाप करें, आप स्वयं पापी नहीं हो सकते, नहीं हो सकते, नहीं हो सकते। पाप ऊपर चिपका रहेगा। भीतरसे आप भगवान्के ही रहेंगे। इसलिये भगवान् कहते हैं—

**सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥**

(मानस, सुन्दर.४४/१)

भगवान्के दरबारमें जगह कम नहीं है। सब-के-सब चले जायँ तो भी जगह खाली है। जैसे, कितनी ही विद्याएँ सीख लें तो भी बुद्धि वैसी-की-वैसी खाली रहती है। ऐसा नहीं होता कि अब बुद्धि भर गयी, और विद्याएँ नहीं सीख सकते। जब बुद्धि ही नहीं भरती, तो फिर भगवान्का दरबार कैसे भर जायगा?

आप यह पक्का विचार कर लें कि हम तो भगवान्के हैं, अब हम पाप, अन्याय, दुराचार नहीं करेंगे, भगवान्के विरुद्ध नहीं चलेंगे, तो इतनी बातसे आप सन्त हो जायँगे!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

सन्तोंकी महिमा अपार है, असीम है, अनन्त है। संसारमें जितने तीर्थ बने हैं, जितने सत्कर्म होते हैं, जितना अच्छे भावोंका प्रचार है, जितनी अच्छी बातें मिलती हैं, उन सबमें सन्त-महात्माओंका हाथ है। संसारमें जो अच्छापन है, वह सब सन्त-महात्माओंसे ही है। लोगोंमें कल्याणकी तरफ जो रुचि है, उसके मूलमें सन्त-महात्मा ही हैं। भगवान्का अवतार भी सन्त-महात्माओंके कारण होता है—‘परित्राणाय साधूनाम्’ (गीता ४/८)। सन्तोंके मनमें भगवान्के साथ खेलनेकी आती है, उस भावकी रक्षा करनेके लिये भगवान् अवतार लेते हैं और तरह-तरहकी लीला करते हैं। सन्तोंके द्वारा ही भगवान्की लीला, महिमा, महत्ता आदिका प्रचार हुआ है। सन्तोंकी महिमा भी भगवान् ही जानते हैं। भगवान्के समान सन्तोंको जाननेवाला और कोई नहीं है।

सन्त भगवान्का प्रचार करते हैं, अपना नहीं; क्योंकि सन्तोंमें जो विशेषता आयी है, वह भगवान्से ही आयी है। सबके मूलमें भगवान् हैं—‘राम सिंधु घन सज्जन धीरा’ (मानस, उत्तर.१२०/९)। समुद्र न हो तो बादल जल कहाँसे लायें? दूसरी दृष्टिसे देखें तो समुद्रमें जल बहुत है, पर हमारा जीवन तो वर्षासे ही चलता है।

संसारमें जितना सद्गुण है, सदाचार है, वह सब महात्माओंकी कृपा है। मैंने तो प्रत्यक्ष देखा है। मैं गाँवोंमें और शहरोंमें बहुत घूमा हूँ। मैंने देखा है कि जिन गाँवोंमें सौ-दो सौ वर्षोंमें कोई सन्त नहीं गये, वे गाँव बिल्कुल भूतोंके निवास जैसे दीखते हैं। गाँवभरमें भगवान्का कोई मन्दिर नहीं। वे जानते ही नहीं कि क्या भगवान् होता है, क्या भक्त होता है? परन्तु जिन गाँवोंमें सन्त गये हैं, वहाँ विलक्षणता दीखती है, शान्ति मिलती है।

प्रेमी सन्तों, भक्तोंके मुखसे कथा सुननेसे जो लाभ होता है, वह दूसरोंसे कथा सुननेसे नहीं होता। सन्तोंकी कही कथासे स्थायी लाभ होता है।

**आप सन्त बन जाओ—यह सन्तोंकी असली सेवा है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

साधकोंके लिये जरूरी बात है—दोषदृष्टिका त्याग। वह न अपनेमें दोष देखे, न दूसरोंमें। दोष देखना बहुत बड़ी भूल है। सबका वर्तमान निर्दोष है। दोष स्वयंमें नहीं हैं—यह बात स्वीकार कर लें तो कल्याणप्राप्ति बड़ी सुगम हो जायगी। स्वयं भगवान्का अंश है। अतः जैसे भगवान् शुद्ध, पवित्र, निर्मल हैं, ऐसे आप भी हैं। दोष आगन्तुक हैं। यदि स्वयंमें दोष होता तो कभी मिटता नहीं, कभी मुक्ति नहीं होती। मूलमें निर्दोषता है, तभी सत्संगकी बातें अच्छी लगती हैं।

अपनेको दोषी माननेसे दोष दूर नहीं होगा। मूलमें सब-के-सब परमात्माके अंश हैं—इस तरफ ध्यान दें तो दोष टिकेगा नहीं।

कृपानाथ! इतनी कृपा करो कि हम भगवान्के हैं। पूत सपूत और कपूत दोनों होते हैं। कपूत होनेसे पूतपना मिट जाता है क्या? कपूत भी पूत तो है ही। स्त्री खराब होती है, पतिको छोड़ देती है, विरोध करती है, तो भी पत्नी उसीकी कहलाती है। इसी तरहसे आप भगवान्के हैं और परम शुद्ध हैं, इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जब अन्तःकरण अशुद्ध हो जाता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, तब मनुष्यको बुरे आचरण भी अच्छे लगने लगते हैं। सगाई होनेके बाद (विवाहसे पहले) लड़का-लड़कीका साथ-साथ रहना, घूमना-फिरना बहुत ही खराब चीज है। यह व्यभिचार है, अनाचार है। बम्बईमें ठाकुरजीका विवाह हुआ। विवाहसे पहले ठाकुरजीको वहाँ ले गये, जहाँ राधाजी थीं। मैंने कहा कि मैं इसमें सहमत नहीं हूँ, ठाकुरजी और राधाजीके बीचमें परदा रखो। जबतक

विवाह न हो, तबतक ठाकुरजी और राधाजी बिल्कुल न मिलें। उन्होंने वैसा ही किया। वे ठाकुरजीको ले तो गये, पर उनके और राधाजीके बीचमें परदा रखा गया।

सगाईके बाद लड़कीको छोड़ देना अथवा विवाह होनेके बाद तलाक दे देना भी बड़े पापकी, अत्याचारकी, अन्यायकी बात है। शास्त्रोंने और सन्तोंने इसका निषेध किया है। परन्तु जैसे सन्निपातके रोगीको वैद्य बुरा लगता है, ऐसे ही भ्रष्ट बुद्धिवाले व्यक्तिको शास्त्रोंकी, सन्तोंकी बातें बुरी लगती हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आपने मान रखा है कि हम संसारके हैं, पर मूलमें आप सब-के-सब परमात्माके हैं। आप परमात्माके घरके हैं। संसार पराया घर है। यदि संसार आपका होता तो सदा आपके साथ रहता। परन्तु संसारकी कोई भी चीज आपके साथ नहीं रहती, कोई भी सुख आपके साथ नहीं रहता। इसलिये आप संसारके नहीं हैं—इस सच्ची बातको आप मान लें। आप चाहे नरकोंमें जाओ, चाहे चौरासी लाख योनियोंमें जाओ, भगवान्का साथ कभी छूटेगा नहीं।

माँकी तरह भगवान्की प्राप्ति सबके लिये सुगम है। जैसे बालक माँकी गोदमें निःशंक होकर चला जाता है, ऐसे ही आप सब-के-सब भगवान्के धाममें निःशंक होकर जा सकते हैं। वहाँ जानेके लिये किसीको भी मना नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

विज्ञानने बहुत उन्नति की है, पर अभीतक पृथ्वी-तत्त्वकी भी खोज पूरी नहीं हुई है। पृथ्वीमें इतने प्रवाह चल रहे हैं, जिनको अभी वैज्ञानिक खोज नहीं पाये हैं। जल-तत्त्व, तेज-तत्त्व, वायु-तत्त्व और आकाशतत्त्व अभी बाकी पड़े हैं! केवल पृथ्वी, जल और तेजमें अनन्त शक्तियाँ पड़ी हुई हैं। एक तेज-तत्त्वसे विद्युत्-शक्ति प्रकट की, जिससे कितने कार्य किये जा रहे हैं। **वैज्ञानिक असंख्य आविष्कार कर सकते हैं, पर मूल तत्त्व नहीं बना सकते।** मूल (परमाणु) रूपसे जो पृथ्वी, जल, तेज आदि है, उसको नहीं बना सकते। वे गेहूँसे कई चीजें बना सकते हैं, पर गेहूँका एक दाना भी नहीं बना सकते। मन, बुद्धि, अहम्को नहीं बना सकते। मनुष्य, गाय, भेड़ आदि बना सकते हैं, पर जिन मूल तत्त्वोंसे वे बने हैं, वे तत्त्व नहीं बना सकते। उनमें जो जीव है, वह जीव नहीं बना सकते। मूल तत्त्व परमात्माका बनाया हुआ है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

गीताके ज्ञानका अन्त नहीं आता। विचार करनेपर नये-नये भाव प्रकट होते हैं। जब भगवान्का सब कुछ अनन्त है, तो फिर उनके भावोंका अन्त कैसे आ सकता है? गीताके विषयमें कोई कुछ बोलता या लिखता है तो वह केवल अपनी बुद्धिका परिचय देता है कि हम इतना जानते हैं।

जड़ता अज्ञानसे दीखती है। वास्तवमें सब चिन्मय ही है। दीखनेमें सब अलग-अलग दीखते हैं, पर तत्त्वसे सब एक ही हैं। **जैसे स्वप्नमें हम अनेक रूपोंसे प्रकट होते हैं, ऐसे ही भगवान् अनेक रूपोंसे प्रकट हुए हैं—‘वासुदेवः सर्वम्’।** जैसे स्वप्नमें दीखनेवाला सब कुछ मैं ही बना है, ऐसे ही दीखनेवाला सब कुछ भगवान् ही बने हैं।

सभी क्रियाएँ प्रकृतिमें ही होती हैं। चेतन-तत्त्वमें कोई क्रिया नहीं होती। यदि स्वयंमें क्रिया होगी तो वह विकारी हो जायगा, और विकारी होनेसे नाशवान् हो जायगा। परन्तु अज्ञानके कारण मनुष्य अपनेको कर्ता मान लेता है—**‘अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते’** (३/२७)। अपनेको अहंकारके साथ एक मान लेना ‘अज्ञान’ है और अहंकारसे अलग मानना ‘ज्ञान’ है।

कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनोंका फल ‘मुक्ति’ है, पर ‘प्रेम’ भगवान्के सम्बन्ध (भक्ति) से ही होता है। वह



प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान है। कर्मयोग और ज्ञानयोग साधन हैं, पर भक्ति साध्य है। वह भक्ति आप आज ही प्राप्त कर सकते हैं। भगवान्का अंश होनेसे उनके साथ हमारा सम्बन्ध सदासे है।

भक्त भगवन्निष्ठ होता है। उसका साधन और साध्य दोनों भगवान् होते हैं। भक्तिमें त्रिपुटी नहीं रहती, अन्तमें एक भगवान् ही रह जाते हैं। **गीताका ज्ञान भक्तिमें ही पूर्ण होता है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

हम जी नहीं रहे हैं, प्रत्युत मर रहे हैं। जीवनका समय बड़ी तेजीसे जा रहा है। इसलिये गीता कहती है—**‘तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर’** (८/७) ‘तू सब समयमें मेरा स्मरण कर’। पाण्डव हर समय भगवान्को याद करते थे तो उनमेंसे एक भी नहीं मरा, पर कौरव सौ-के-सौ मर गये। भगवान्की स्मृति सब विपत्तियोंका नाश करनेवाली है—**‘हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्’** (श्रीमद्भागवत ८/१०/५५)। **आप भगवान्को याद करो तो बुद्धि शुद्ध होगी, और बुद्धि शुद्ध होनेसे पाप नहीं होंगे।**

जिसकी नीयत दूसरोंको दुःख देनेकी है, उसको बड़ा भारी दण्ड मिलता है। गर्भपात करनेवालेके घरका अन्न खराब हो जाता है। उसके घरका अन्न-जल लेनेलायक नहीं रहता। गर्भपात करनेवालेकी अगले जन्ममें सन्तान नहीं होती।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**भगवान्के दरबारमें भक्तकी महिमा है।** वहाँ बड़े-बड़े धनियों, ऊँचे पदवालोंकी महिमा नहीं है। संसारमें भगवान्के भजनके समान सार चीज कोई नहीं है। जैसे अनन्त ब्रह्माण्डोंमें भगवान्के समान श्रेष्ठ कोई नहीं है, ऐसे ही भगवान्के भजनके समान श्रेष्ठ कोई नहीं है।

जिसको भगवान् अच्छे लगते हैं, प्यारे लगते हैं, वह आज भले ही कैसा हो, वह श्रेष्ठ हो ही जायगा—**‘क्षिप्रं भवति धर्मात्मा’** (गीता ९/३१)। गीतामें भगवान्के भक्तको ही ‘महात्मा’ कहा गया है। भगवान्के जो प्रेमी भक्त हैं, वे ही महात्मा हैं, वे ही सन्त हैं, वे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं। **जिसका भगवान्में प्रेम है, उससे श्रेष्ठ त्रिलोकीमें भी कोई नहीं है।** भगवान्का भक्त यदि कुसंगमें भी पड़ जायगा तो उससे छूट जायगा।

**सब शास्त्रोंकी सार बात है—भगवान्को याद करना।** भगवान्के चिन्तनके समान पवित्र कोई चीज नहीं है।

मनुष्यको वास्तवमें जो चाहिये, वह उसे संसार नहीं दे सकता। अनन्त ब्रह्माण्डोंमें अनन्त वस्तुएँ हैं, पर कोई भी वस्तु मनुष्यको शाश्वत शान्ति नहीं दे सकती। जो मनुष्यको चाहिये, उसकी पूर्ति भगवान्से ही हो सकती है। इसलिये आपसे प्रार्थना है कि भगवान्में लग जाओ, भगवान्के ही चरणोंमें प्रेम करो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

गर्भपात करना, सन्तानको पैदा ही नहीं होने देना भ्रष्ट बुद्धिका लक्षण है। जिनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, वे उत्तम, श्रेष्ठ बातोंको समझ सकते ही नहीं। **बुद्धि अशुद्ध होनेसे अच्छी चीज भी बुरी लगती है।** उसे गायके घीसे भी दुर्गन्ध आती है! वह व्यवहारकी मामूली बातें भी नहीं समझ सकते, फिर पारमार्थिक बातें कैसे समझेंगे? जब बुद्धि शुद्ध होगी, तब पापमें रुचि नहीं होगी, प्रत्युत भगवान्में रुचि होगी। बुद्धि शुद्ध करनेके लिये ही सत्संग किया जाता है। बुद्धि शुद्ध होनेपर अपने-आप अच्छी बातें पैदा होती हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जो कृत्रिम उपायोंसे सन्तति-निरोध करते हैं, वे बड़ा भारी पाप करते हैं, अन्याय करते हैं। आप कृत्रिम उपायोंसे सन्तति-निरोध न करके संयम करो तो बड़ी अच्छी बात है, पर पाप क्यों करते हो? शास्त्र-निषिद्ध काम करना



नरकोंमें जानेका रास्ता है। मनुष्यजन्मको बड़ा दुर्लभ बताया गया है। उस मनुष्यजन्ममें आनेसे जीवको रोक देना पाप है। सन्तति-निरोध नहीं करेंगे तो पाप लगेगा—यह बात है ही नहीं, हमने कहीं पढ़ी-सुनी ही नहीं। सन्तति-निरोध करनेसे कल्याण होता है—ऐसा कोई बता दे। सन्तति-निरोध वे ही करते हैं, जिनका ईश्वरपर, प्रारब्धपर अथवा पुरुषार्थपर विश्वास नहीं है, प्रत्युत पापपर विश्वास है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जो रात-दिन भगवान्‌के भजनमें लगा हुआ है, उसे किसी वस्तुकी कमी नहीं रहती। ऐसे साधु मैंने देखे हैं, जो पासमें पैसे नहीं रखते, फिर भी उनका जीवन-निर्वाह होता है। पैसोंका त्याग करनेसे कोई साधु मर गया हो—ऐसी एक भी बात सुननेमें नहीं आयी। पर पैसे रखनेवाले बिना अन्नके मर गये—ऐसी बात सुननेमें आयी है। कोई हृदयसे पैसोंका त्याग कर दे तो उसको किसी चीजकी कमी नहीं रहेगी। धनियोंको जो चीज नहीं मिलती, वह चीज भी मिल जायगी। फिर पैसोंके लिये पाप, अन्याय क्यों करते हो? अधिक पैसे इकट्ठे करके करोगे क्या?

प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा सरीर।

तुलसी चिंता क्यों करे, भज ले श्रीरघुबीर॥

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

स्वार्थी आदमीके द्वारा दुनियाका हित नहीं होता। उसके द्वारा तो अहित-ही-अहित होता है। निःस्वार्थभावसे मात्र दुनियाका हित करनेवाले दो ही हैं—भगवान् और उनके भक्त—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

(मानस, उत्तर.४७/३)

स्वार्थसे न अपना हित होता है, न दूसरोंका हित होता है और न भगवान्‌की सेवा होती है। अतः अपने स्वार्थभावका त्याग करें और सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जायँ। हर समय भगवान्‌को याद रखें। इसके लिये बार-बार भगवान्‌से प्रार्थना करें कि 'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌को याद करके, उनका नाम लेकर हरेक काम करें। प्रत्येक कार्यके आरम्भमें भगवान्‌को याद करनेका स्वभाव बना लें, जिससे अन्तकालमें भी भगवान्‌की याद बनी रहे। किसी भी कामके लिये बाहर जायँ तो भगवान्‌का नाम लेकर जायँ। भगवान्‌को सदा याद रखना—यह सब शास्त्रोंका सार है—

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।

इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥

(महाभारत, अनु.१२४)

‘समस्त शास्त्रोंका आलोड़न करके बारंबार विचार करनेपर एकमात्र यही सिद्धान्त स्थिर हुआ है कि सदा भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये।’

सत्संग, कथाका प्रभाव पशु, पक्षी तथा वृक्ष आदि जड़ वस्तुओंपर भी पड़ जाता है, पर दुष्ट हृदयवाले मनुष्यपर उसका असर नहीं पड़ता; क्योंकि उसके भीतर अभिमान, कपट आदि दोष रहते हैं। जैसे, चन्दनके संगसे अन्य वृक्ष भी चन्दन हो जाते हैं, पर बाँसका वृक्ष चन्दन नहीं होता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यजन्म केवल कल्याणके लिये है—इस तरफ लोगोंकी दृष्टि कम है। यह शरीर भोग भोगनेके लिये नहीं

है—‘एहि तन कर फल बिषय न भाई’ (मानस, उत्तर.४४/१)। दुःख भोगनेके लिये चौरासी लाख योनियाँ हैं, सुख भोगनेके लिये स्वर्गादि लोकोंकी योनियाँ हैं और कल्याण करने (सदाके लिये सुखी होने)–के लिये मनुष्ययोनि है। गृहस्थाश्रम भी भोगोंको भोगनेके लिये नहीं है, प्रत्युत भोगोंकी परीक्षा करके विरक्त होनेके लिये है। जब भोगोंकी परीक्षा हो जाय, भोगोंका तत्त्व समझमें आ जाय, भोगोंसे वैराग्य हो जाय, उसी क्षण परमात्मप्राप्तिमें लग जाना चाहिये।

संसारमें तो उतना ही मिलेगा, जितना हमारे प्रारब्धमें है। जैसे, सेरभरका लोटा हो तो उसे चाहे तालाबमें डुबोओ, चाहे समुद्रमें, जल सेरभर ही मिलेगा। एक मजदूर कोयला ढोता है और एक मजदूर टकसालमें सोना ढोता है, पर दोनोंको पैसे बराबर ही मिलते हैं। परन्तु परमात्माकी प्राप्ति प्रारब्धके अधीन नहीं है। वे केवल सच्ची लगनसे मिल जाते हैं। इसलिये गुणोंवाले ब्राह्मणसे भी भक्तियुक्त श्वपच श्रेष्ठ है। कारण कि गुण सीमित होते हैं, इसलिये उनसे सीमित तत्त्व ही मिलता है। परन्तु लगन असीम होती है, इसलिये उससे असीम तत्त्व मिलता है।

विष्णुपुराणमें एक कथा आती है। एक बार ऋषि-मुनियोंने इकट्ठे होकर आपसमें विचार किया कि सब जीवोंका कल्याण कैसे हो? जब वे किसी निर्णयपर नहीं पहुँचे, तब उन्होंने विचार किया कि वेदव्यासजी महाराजके पास चलते हैं, वे ठीक निर्णय बतायेंगे। वे वेदव्यासजीके पास पहुँचे। वेदव्यासजी उस समय गंगाजीमें स्नान कर रहे थे। ऋषिलोग वहीं गंगातटपर बैठकर उनकी प्रतीक्षा करने लगे। वेदव्यासजीने गंगाजीमें डुबकी लगाते हुए कहा कि ‘कलियुग, तुम धन्य हो, धन्य हो, धन्य हो’। फिर कहा कि ‘स्त्रियो, तुम धन्य हो, धन्य हो, धन्य हो’। फिर कहा कि ‘शूद्रो, तुम धन्य हो, धन्य हो, धन्य हो’। जब वेदव्यासजी गंगाजीमें स्नान करके बाहर आये, तब उन्होंने ऋषियोंसे पूछा कि आपलोग किस कार्यसे यहाँ आये हैं? ऋषियोंने कहा कि पहले आप हमें बतायें कि आपने स्नान करते समय कलियुगको, स्त्रियोंको और शूद्रोंको धन्यवाद दिया, इसका क्या तात्पर्य था? वेदव्यासजीने कहा कि कलियुगमें जितना जल्दी कल्याण होता है, उतना अन्य युगोंमें नहीं होता, इसलिये मैंने कलियुगको धन्य कहा। स्त्रियों और शूद्रोंको अपने धर्मका पालन करनेसे जल्दी कल्याणप्राप्ति हो जाती है, इसलिये मैंने इनको धन्य कहा। यह सुनकर ऋषियोंने कहा कि हम जो बात पूछने आये थे, उसका समाधान हो गया! (विष्णुपुराण ६/२)

तात्पर्य है कि कलियुगमें स्त्रियों और शूद्रोंको जल्दी परमात्मप्राप्ति हो सकती है; क्योंकि इनमें अपनी जाति आदिका अभिमान नहीं होता। परन्तु आजकलकी स्त्रियोंको परमात्मप्राप्ति होनी कठिन है; क्योंकि उनके भीतर अभिमान ज्यादा है! वे पतिको भी इसलिये नमस्कार नहीं करतीं कि क्या हमारा दर्जा पुरुषोंसे कम है? जिसके भीतर अभिमान भरा पड़ा है, उसे परमात्मा कैसे मिलेंगे, उसका तो पतन ही होगा। देखिये, स्वयं भगवान् चलकर जिसके पास आते हैं, वह शबरी क्या कहती है—

**अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महुँ मैं मतिमंद अघारी॥**

(मानस, अरण्य.३५/२)

परन्तु भगवान् कहते हैं कि एक भक्तिके सिवाय मैं और कोई सम्बन्ध नहीं मानता—‘मानउँ एक भगति कर नाता’ (वही)। भगवान् प्रेमपूर्वक उसके हाथसे कन्द-मूल (बेर) खाते हैं! भगवान् भावको देखते हैं, जाति, आचरण आदिको नहीं। आप कैसे ही क्यों न हों, यदि आपमें सच्ची लगन है तो भगवान् उससे अटकेंगे नहीं। जो भगवान् आपके पापोंसे अटक जायँ, वे मिलकर भी क्या निहाल करेंगे? क्योंकि वे तो पापोंसे भी कमजोर हुए! भगवान् केवल लगनको देखते हैं। इसलिये किसीको भी परमात्मप्राप्तिसे निराश होनेकी जरूरत नहीं है। पर आपकी लगन नहीं हो तो भगवान् क्या करें?

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

संसारका जो दुःख होता है, वह मूर्खतासे होता है। विचार करें, कोई भी नुकसान हुआ है तो पहले वह वस्तु थी क्या? वस्तु पहले भी नहीं थी, पीछे भी नहीं रहेगी, बीचमें मिलकर बिछुड़ गयी तो अपना क्या गया? पहले जैसे थे, वैसे ही रह गये! मान-बड़ाई पहले थी नहीं, आकर चली गयी तो नयी बात क्या हुई? हमें बाधा क्या लगी? मुफ्तमें ही दुःख पा रहे हैं! सभी शहर जंगलमें बसे हुए हैं, पीछे फिर जंगल हो जायँगे।

विचार करें, संसारमें आने और जानेके सिवाय और क्या है? हम संसारमें अकेले आये थे। नाम भी अपना नहीं था, पीछे रखा गया। जायँगे तो अकेले ही जायँगे। जो मरता है, मरनेवाला ही मरता है। नहीं मरनेवाला भी कोई मरता है क्या? फिर चिन्ताकी क्या बात है? कोई रहे या जाय, अपनेमें क्या फर्क पड़ा? इसलिये हरदम मस्त रहो। दूसरा चला जाय तो मौज, हम चले जायँ तो मौज! **‘सदा दीवाली संत की, आठों पहर आनन्द!’** आज ही इस सत्यको स्वीकार कर लें कि संसारमें वियोग ही मुख्य है। सत्यको स्वीकार कर लो तो आनन्द-ही-आनन्द रहेगा। दुःख नजदीक नहीं आयेगा।

विचार करें, सदा आपके साथ रहनेवाली चीज क्या है? परमात्मा सदा हमारे साथ रहनेवाले हैं। संसार सदा हमारे साथ रहनेवाला नहीं है। जो चीज सदा साथ रहनेवाली नहीं है, उससे सम्बन्ध जोड़ लिया—यह दुःख पानेका बढ़िया तरीका है। सेवा करो, पर सम्बन्ध मत जोड़ो। सम्बन्ध जोड़नेसे दुःखके सिवाय और कुछ नहीं मिलेगा। वास्तवमें दुःखका नामोनिशान नहीं है, केवल आपका ही बनाया हुआ है। **दुःख बड़ा दुर्लभ है, सुख-शान्ति सहज है।** दुःख पानेके लिये मेहनत करनी पड़ती है।

वास्तवमें जड़ता है—जड़के साथ माना हुआ सम्बन्ध। यह सम्बन्ध ही बाधक है। धन बाधक नहीं है, ‘मेरा धन’ बाधक है। इसलिये किसीसे सम्बन्ध मत जोड़ो, किसीको अपना मत मानो। भगवान्‌के मुनीम बन जाओ। मुनीम सब काम करता है, पर मानता है सेठका। दूकान सेठकी है। नफा हो तो सेठका, नुकसान हो तो सेठका। ऐसे ही सब कुछ भगवान्‌का मान लो अथवा संसारका मान लो, पर अपना मत मानो।

● कुँआरी लड़कियोंको चाहिये कि वे प्रतिदिन प्रातः सात बार ‘सीता माता’ तथा सात बार ‘कुन्ती माता’ का नाम उच्चारण करें। ऐसा करनेसे वे पतिव्रता बन जायँगी, श्रेष्ठ बन जायँगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

परमात्माका अंश होते हुए भी जीवका ख्याल संसारकी तरफ चला गया, इतना चला गया कि परमात्माको भूल ही गया और संसारको ही सच्चा मानने लग गया। परमात्मा हैं कि नहीं, इसका भी उसे पता नहीं। उसने अपनेको संसारका ही मान लिया। यह भूल इतनी बड़ी हो गयी कि ‘मैं परमात्माका अंश हूँ’—यह बात सुननेपर भी भीतरसे उसको जँचती नहीं, अनुभवमें नहीं आती। वह यह मानता है कि मैं तो संसारी हूँ, जन्मने-मरनेवाला हूँ, संसारमें रहनेवाला हूँ और परमात्मा को प्राप्त करना है। मानो परमात्माकी प्राप्ति कोई नयी चीज है, नया काम है।

‘जीव परमात्माका अंश है’—यह आपने सुन लिया है, पर ‘मैं परमात्माका हूँ’—ऐसा आप मानते हो क्या?

● व्यापारमें अगर आप केवल दूसरोंका हित ही सोचो तो आपकी दूकान बढ़िया चलेगी। यह मेरी देखी हुई बात है। पूरी ईमानदारीसे काम करनेपर शुरूमें एक-दो बार घाटा लग सकता है, पर पीछे व्यापार बढ़िया चलेगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अगर आप क्रोध दूर करना चाहते हो तो अपनी कामनाको दूर करो। जो मिलनेवाला है, वह मिलेगा ही और नहीं मिलनेवाला मिलेगा ही नहीं। अगर यह निश्चय हो जाय तो कामना नहीं होगी, और क्रोध भी नहीं आयेगा।

पारमार्थिक बातोंमें ज्यों-ज्यों गहरा उतरोगे, त्यों-त्यों वे समझमें आयेंगी। सांसारिक बातोंको ज्यों-ज्यों छोड़ोगे, त्यों-त्यों वे समझमें आयेंगी। भलाई करनेसे समझमें आयेगी, बुराई छोड़नेसे समझमें आयेगी।

अपने लाभके लिये करना 'आसुरी सम्पत्ति' है। दूसरोंके हितके लिये करना 'दैवी सम्पत्ति' है। संसारके लिये करना 'सेवा' है। भगवान्के लिये करना 'पूजा' है। अपने लिये करना 'बन्धन' है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जो न आत्माको मानते हैं, न परमात्माको, उनके लिये राग-द्वेषको मिटाना कठिन है। उनका भला हो सकता है, पर वह सीमित ही होगा। आत्माको माननेवालेका भी सीमित भला होगा। असीम भला तो परमात्माको माननेवालेका ही होगा।

मनके ऊपर पदार्थोंका रंग चढ़ जाना 'राग' है। रागमें बाधा लगनेपर द्वेष पैदा होता है। परन्तु भगवान्का रंग चढ़ जायगा तो फिर उसके ऊपर कोई रंग नहीं चढ़ेगा। भगवान् श्यामसुन्दर हैं। श्याम (काले) रंगपर कोई रंग नहीं चढ़ता। ज्ञानमार्गमें भी सूक्ष्म रंग रहता है, झीनी माया रहती है, जो मुक्तिमें तो बाधा नहीं देती, पर परमप्रेमकी प्राप्ति नहीं होती—

**प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥**

(मानस, उत्तर. ४९/३)

'मैं हूँ'—इसमें 'मैं' जड़ प्रकृति है और 'हूँ' आत्मा है। 'मैं' न रहनेपर 'हूँ' नहीं रहता, प्रत्युत 'है' हो जाता है। यह 'है' परमात्मा है। आत्मा और परमात्मा एक भी हैं और दो भी हैं। जैसे मनुष्य और सिपाहीमें फर्क है, ऐसे ही परमात्मा और आत्मामें फर्क है। प्रेममें आत्मा और परमात्मा एक होते हुए भी दो होते हैं। परमात्माकी तरफ दृष्टि होती है तो एक होते हैं। अपनी तरफ दृष्टि होती है तो दो होते हैं। यह एक और दो होते रहते हैं, जिससे प्रेम प्रतिक्रिया वर्धमान होता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—मन स्थिर कैसे करें?**

**स्वामीजी—**वास्तवमें मन चंचल नहीं है, आप चंचल हो; क्योंकि आपका उद्देश्य एक नहीं बना है। एक उद्देश्य बननेपर मनकी चंचलता नहीं रहती। मन तो एक कलमकी तरह एक करण है। कलम वही लिखती है, जो आप लिखते हो। अतः दोष आपका है, मनका नहीं। आप लग जाओ तो मन भी लग जायगा। आप जब रुपये गिनते हो, तब उसमें भूल नहीं होती; क्योंकि उस समय मन लग जाता है। मन तभी लगता है, जब आप लगते हो।

**मन कोई चीज नहीं है। संसारका आपपर असर पड़ा है, इसका नाम 'मन' है। परमात्माका असर पड़ जाय, इसका नाम 'साधन' है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जो सब जगह मौजूद है, उस परमात्माकी प्राप्ति कठिन है तो फिर सुगम क्या होगा? आप परमात्माकी प्राप्ति चाहते नहीं—यही कठिनता है, और कोई कठिनता नहीं। आप उसको चाहते हो, जो आपको नहीं चाहता। आप रुपयोंको चाहते हो, पर रुपये आपको चाहते ही नहीं। परन्तु परमात्मा आपको चाहते हैं।

आपको कल्याणकी बड़ी सुगम बात बतायी जाती है। एक बात हर समय याद रखो कि मैं जो भी काम करता हूँ, भगवान्का काम करता हूँ। मैं सब काम भगवान्का ही करता हूँ—यह बात पक्की कर लो,

फिर भगवान् आपसे छिपेंगे नहीं। शौच-स्नान करूँ तो भगवान् का काम, कपड़ा धोऊँ तो भगवान् का काम, झाड़ू दूँ तो भगवान् का काम, सोता हूँ तो भगवान् का काम, भोजन करूँ तो भगवान् का काम; आठों पहर कोई भी काम करूँ तो भगवान् ही काम करता हूँ। बहनें-माताएँ मान लें कि रसोई बनाती हूँ तो भगवान् के लिये बना रही हूँ, बालकों का पालन करती हूँ तो भगवान् का काम करती हूँ, पतिकी तथा सास-ससुरकी सेवा करती हूँ तो भगवान् का काम करती हूँ, आदि। इतनी बात पकड़ लो तो सुगमतासे भगवान् की प्राप्ति हो जायगी। कोई मेहनत करनेकी जरूरत नहीं। इसमें आपको कौड़ीभर भी नुकसान नहीं होगा। कोरा लाभ-ही-लाभ होगा। मेरा काम किया तो पतन हुआ, और मेरा काम छोड़ा तो निहाल हुए!

राग-द्वेष, हर्ष-शोक होते हैं तो वह भी भगवान् का काम है। फिर ये राग-द्वेष आदि सब मिट जायँगे। भगवान् ऐसी चीज है कि राग-द्वेष आदि सब नष्ट हो जाते हैं—

**नरेष्वभीक्षणं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात्।**

**स्पर्धासूयातिरस्काराः साहङ्कारा वियन्ति हि॥**

(श्रीमद्भागवत ११/२९/१५)

‘जब भक्तका सम्पूर्ण स्त्री-पुरुषोंमें निरन्तर मेरा ही भाव हो जाता है अर्थात् उनमें मुझे ही देखता है, तब शीघ्र ही उसके चित्तसे ईर्ष्या, दोषदृष्टि, तिरस्कार आदि दोष अहंकारसहित सर्वथा दूर हो जाते हैं।’

सब काम भगवान् का समझकर करते-करते राग-द्वेष सुहायेंगे नहीं, मिट जायँगे। **सबमें परमात्माको देखते रहो, फिर सब विकार सूखी मिट्टीकी तरह झड़ जायँगे।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**पाँच चीजें आपकी संस्कृतिकी रक्षा करनेवाली हैं—विवाह, भोजन, वेशभूषा, भाषा और व्यवसाय।** इनका त्याग करनेसे बड़ी भारी हानि होगी; आपका हिन्दूपना नहीं रहेगा। लोग कह देते हैं कि समयके अनुसार चलना चाहिये; हम तो समयके अनुसार काम करते हैं। ऐसा सब कहते तो हैं, पर करते नहीं हैं। गरमीके दिनोंमें आप ठण्डा पानी पीते हो, पतले कपड़े पहनते हो, पंखा चलाते हो तो यह आपका समयसे विरुद्ध चलना है। ऐसे ही शीतकालमें गरम पानी पीना, गरम कपड़े पहनना समयके विरुद्ध है। समयके अनुसार चलना तो तब माना जाय, जब आप गरमीके दिनोंमें गरम पानी पीओ, ठण्डीके दिनोंमें ठण्डा पानी पीओ। इसलिये **समयके अनुसार काम करो समयसे बचनेके लिये।** अगर आप कलियुगके अनुसार चलने लग जाओ तो बहुत पतन हो जायगा। इसलिये अभीसे ही सावधान हो जाना चाहिये।

- चित्तौड़के महाराणा प्रतापने हिन्दूपनेकी विशेष रक्षा की थी। वे हिन्दुओंके सूर्य थे।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जैसे कोई रुपये जमा करना चाहे तो वह उनकी रक्षाके लिये सरकारसे सहायता ले सकता है, पर चोरी करनेके लिये उसे सरकारसे सहायता नहीं मिलेगी, प्रत्युत दण्ड मिलेगा। ऐसे ही स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके सेवा करना चाहते हो तो आपको भगवान् की सहायता मिलेगी, पर पाप, अन्याय करनेके लिये भगवान् की सहायता नहीं मिलेगी, प्रत्युत दण्ड मिलेगा।

कामना न हो तो सब कर्म मुक्ति देनेवाले हो जाते हैं।

भगवान् का भजन करना नया कर्म है, प्रारब्ध नहीं। यदि कोई रात-दिन भजनमें लग जाय तो (नया कर्म होनेसे) उसे खाने, पहनने, रहने आदि किसी प्रकारकी कमी नहीं रहेगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान्से पैदा होनेके कारण स्थावर-जंगम संसारमात्र परमात्माका ही स्वरूप है। परमात्मा एक होकर भी अनेक हैं और अनेक होकर भी एक हैं। तात्पर्य है कि व्यवहारमें अलग-अलग भेद हैं, पर तत्त्वमें भेद नहीं है। **व्यवहारमें एकता पशुता है, मनुष्यता नहीं।** तत्त्वमें भेद होता ही नहीं, हो सकता ही नहीं। परन्तु व्यवहारमें एकता होती ही नहीं, हो सकती ही नहीं। एक ही हाथकी पाँच अंगुलियोंमें भी भेद है। किसीको तर्जनी दिखायें और किसीको अँगूठा दिखायें तो दोनोंमें भेद है। पर भेद होनेपर भी हाथ एक है। इसलिये व्यवहारमें भेद रखते हुए भी भीतरमें भेद न हो, प्रत्युत सबके हितका भाव हो। हृदयमें किसीके भी प्रति द्वेषका, अहितका भाव न हो।

- **अभावग्रस्त व्यक्तिको देनेकी जो महिमा है, वह साधु और ब्राह्मणको देनेकी नहीं है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

हमें दो काम करने हैं—संसारकी निवृत्ति और परमात्माकी प्राप्ति। ये दोनों ही काम स्वतः हो रहे हैं। संसारकी स्वतः निवृत्ति है और परमात्माकी स्वतः प्राप्ति है। जो स्वतः प्राप्त है, उसीको प्राप्त करना है और जो स्वतः निवृत्त है, उसीकी निवृत्ति करनी है।

**परमात्मा तो ज्यों-के-त्यों ही हैं, व्यवहार ही बिगड़ा है। व्यवहार बिगड़ता है स्वार्थ और अभिमानसे।** स्वार्थ और अभिमान नहीं रहेंगे तो व्यवहार शुद्ध हो जायगा। व्यवहार शुद्ध होनेपर परमात्मा स्वतःप्राप्त हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**मेरा एक ही विषय है कि जीवका कल्याण कैसे हो।** इसीसे सम्बन्धित बात ही मैं कहता हूँ। कल्याणमें सबसे अधिक बाधा देनेवाली चीज है—परिवार-नियोजन और गर्भपात। इसलिये मैं इसका विरोध करता हूँ। कोई भी धर्म इसका समर्थन नहीं करता। पाप तो और भी बहुत हो रहे हैं, पर दूसरे पापोंकी अपेक्षा गर्भपात बहुत बड़ा पाप है। इस विषयमें मेरे हृदयमें दुःख बहुत है, पर कहता कम हूँ।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

गरीबोंकी और गायोंकी सेवा करो। जिन घरोंमें अन्न, वस्त्र आदिकी कमी है, वहाँ अन्न, वस्त्र आदि पहुँचाओ। यह असली पूँजी है, जो मरनेपर आपके साथ चलेगी। इसके सिवाय संग्रह किया हुआ धन कौड़ी भी साथ नहीं चलेगा।

किसीको अन्न, वस्त्र आदि दो तो अपना मानकर नहीं, प्रत्युत उसीका मानकर दो। **अपनी मानकर वस्तु देनेसे 'दान' होता है और उसीकी मानकर वस्तु देनेसे 'त्याग' होता है।** त्यागसे शान्ति मिलती है। दानसे सहस्रगुना पुण्य होगा तो वह सहस्रगुना भी छोड़ना पड़ेगा, पर त्याग साथमें चलेगा। सकामभावसे किया हुआ त्याग 'त्याग' नहीं होता। वह तो लेनेके लिये त्याग है, जो बन्धनकारक है।

अन्तमें कहोगे कि 'राम-नाम सत्य है' तो सत्य वस्तुको अभी क्यों नहीं लेते? अगर राम-नाम सत्य है तो अभी ले लो। जिसके पास राम-नामकी पूँजी है, वही असली पूँजीपति है। **राम-नाम लेनेमें है सस्ता और बिकता है महँगा!** राम-नाम लेनेमें जितना समय सत्ययुगमें लगता था, उतना ही समय अब भी लगता है, पर बिकता है कलियुगकी कीमतपर! अन्य युगोंकी अपेक्षा कलियुगमें नामजपकी कीमत अधिक है। वस्तु सस्ती मिले और महँगी बिके तो कोई बनिया उसे छोड़ेगा? वस्तु सस्ती मिले और महँगी बिके, तभी तो धनी बनते हो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**हम नामजप आदि साधन भी करते हैं, अपनी तरफसे अच्छा काम भी करते हैं, इतनेपर भी सांसारिक भोगोंकी इच्छा मिटती नहीं है। इससे कैसे छूटें?



**स्वामीजी**—एक क्रिया होती है, एक भाव होता है। **भावकी प्रधानतासे बहुत जल्दी लाभ होता है।** क्रियासे भी तभी लाभ होता है, जब साथमें भाव हो। क्रिया तो मशीनसे भी हो सकती है, पर भाव मशीनसे नहीं होता। भावरहित क्रिया मशीनकी तरह होती है। क्रिया स्थूल तथा सीमित होती है। भाव सूक्ष्म तथा व्यापक होता है। रेडियोसे शब्दोंका प्रसार होता है, पर भाव शब्दसे भी सूक्ष्म होता है।

आप साधनकी क्रिया तो करते हैं, पर भगवान्में जैसा भाव होना चाहिये, वैसा भाव होनेमें कमी रहती है। जीवन भावसे बदलता है। **अगर आप भगवान्में लगना चाहते हो तो अपना भाव बदलो।** संसारके साथ अपनेपनका जो भाव रहता है, वह भाव भगवान्के साथ हो जाय तो बहुत जल्दी लाभ होगा। भीतरसे हम भगवान्के न होकर संसारके बने रहते हैं, इसलिये लाभ नहीं दीखता। अतः भीतरसे यह मान लें कि मैं तो भगवान्का हूँ, संसारका नहीं हूँ। **असली भजन वही है, जो भगवान्का होकर किया जाय।**

**कितना ही भजन करनेपर भी परिवर्तन नहीं हुआ, भोगासक्ति नहीं मिटी—इसका कारण यह है कि आपने क्रिया तो की है, पर भाव नहीं बदला है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

असली बात जल्दी मिलती नहीं। कथा, सत्संग, व्याख्यान तो बहुत मिलते हैं, पर जिससे जीवका कल्याण हो जायूयह बात बहुत कम मिलती है। कल्याणकी बात कहनेवाले और सुननेवाले बहुत कम हैं। बिना लगनके कल्याणकी बात कौन कहेगा और कौन सुनेगा? कल्याणकी चिन्ता कितने लोगोंमें है?

अभी आप जो मौज कर रहे हो, वह मौज कबतक रहेगी, खुद सोचो। आपने करोड़ों रुपये कमा लिये, पर लाभ क्या होगा? वह दिन आनेवाला है, जब सब कुछ छोड़कर जाना पड़ेगा। हमारे काम कुछ नहीं आयेगा। शरीर भी यहीं पड़ा रहेगा। विचार करें, क्या हम सदा बोल सकेंगे? सदा चल सकेंगे? सदा काम कर सकेंगे? क्या हमारी शक्ति सदा ऐसे ही रहेगी? इसलिये समय रहते-रहते सावधान हो जायँ।

भूख लगती है तो भोजन खुदको करना पड़ता है, रोग होता है तो दवाई खुदको लेनी पड़ती है, ऐसे ही कल्याण खुदको करना पड़ेगा। **आप सोचो कि मेरा कल्याण कोई सन्त करेंगे, महात्मा करेंगे, गुरु करेंगे, तो इसमें धोखा होगा धोखा! सन्त-महात्मा, गुरु भी तब कृपा करेंगे, जब आपमें लगन होगी। कितने बड़े-बड़े महात्मा हो गये, भगवान्के अवतार हो गये, फिर भी हमारा उद्धार क्यों नहीं हुआ? हमारी लगनके बिना दूसरा हमारा उद्धार कर सकता ही नहीं।**

अपनेको भगवान्का मुनीम समझकर काम करो, मालिक मत बनो।

आप ईमानदारीसे कमाया पैसा तो व्यापारमें लगाते हो और बेईमानीसे कमाया पैसा खाने-पीनेमें लगाते हो, इससे बुद्धि भ्रष्ट ही होगी। आपको अपने खाने-पीने, कपड़े आदिमें ईमानदारीसे कमाये हुए पैसे ही लगाने चाहिये, जिससे बुद्धि शुद्ध रहे।

**जिस काममें अपने स्वार्थका त्याग और दूसरेका हित हो, वह काम आँख मीचकर करो; क्योंकि वही सबसे बढ़िया काम है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अनाथाश्रमसे बच्चा गोद लेना मैं ठीक नहीं मानता। जब अपना पैदा किया हुआ बेटा भी आपकी आज्ञा नहीं मानता, तो फिर वह कैसे मानेगा? जो गरीब बालक काम करनेयोग्य हों, उनको काममें लगाओ और पैसा दो। मुफ्तमें पैसा देना मैं ठीक नहीं मानता।

विवाह दो बार नहीं होता। विधवा-विवाहको 'विवाह' कहना बनता ही नहीं; क्योंकि विवाह कन्याका होता

है, कन्यादान होता है। पिताने तो कन्यादान कर दिया और जिसने कन्यादान स्वीकार किया, वह मर गया तो अब कन्यादान कौन करे? जब कन्या रही ही नहीं, फिर उसका (विधवाका) विवाह कैसे? उसकी 'विवाह' संज्ञा होती ही नहीं। अतः विधवा-विवाह 'विवाह' नहीं है, प्रत्युत एक नाता है। यह नाता 'वेन' नामक एक अधर्मी राजाका चलाया हुआ है। उसकी बात ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों नहीं मानी। परन्तु आज अधर्मका (कलियुगका) राज्य है, इसलिये अधर्मीकी बात ही सब मानते हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**सत्संग करो, पर किसी साधु या ब्राह्मणसे सम्बन्ध मत जोड़ो।** सम्बन्ध पहलेसे ही बहुत हैं, फिर नया सम्बन्ध जोड़नेसे क्या फायदा? सत्संग करनेसे और उसके अनुसार चलनेसे तो फर्क पड़ता है, पर गुरु बनानेसे रत्तीभर भी फर्क नहीं पड़ता। एक दोहा आता है—

**गुरु गोबिन्द दोउ खड़े, किनके लागूँ पाय।**

**बलिहारी गुरुदेव की, गोबिन्द दियो बताय॥**

मैंने अनेक बार सभामें पूछा है कि आपलोगोंमें कई स्त्री-पुरुषोंने गुरु बनाये होंगे, किसी एक भी व्यक्तिने गोविन्दको खड़ा देखा हो तो बताओ। एक भी व्यक्तिने नहीं कहा कि मैंने देखा है। इस दोहेसे सिद्ध होता है कि जो गोविन्दके दर्शन न करा सके, वह गुरु नहीं।

अगर आप यह बात मानते हो कि गुरु बिना कल्याण नहीं होता तो छोटा गुरु क्यों बनाओ, बड़ा गुरु बनाओ—**'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'**। आप जगत्के भीतर हो और जगत्के गुरु भगवान् श्रीकृष्ण हैं। अतः भगवान्को गुरु मानो और उनका उपदेश गीता पढ़ो। ऐसा गुरु आपको और कौन मिलेगा? और गीताके समान कौन उपदेश देगा? वास्तवमें भगवान् सदासे सबके गुरु हैं ही, चाहे आप मानो या न मानो। पर आप भूल गये, इसकी याद दिलाता हूँ।

श्रीशरणानन्दजी महाराजकी पुस्तकमें मैंने पढ़ा है कि अगर गुरु मिल जाय तो बड़ी आफत हो जायगी! कल्याण होना मुश्किल हो जायगा! मैंने शरणानन्दजी महाराजके मुखसे सुना है कि 'मेरेको भी चेला बनाना आता है और मैंने चेले बनाये हैं। पर अब वह पेशा छोड़ दिया है; क्योंकि चेला बननेवाले मेरेको पकड़ लेते हैं और भगवान्को भूल जाते हैं।'

गुरु बननेमें भी बड़ा भारी दोष है। जो कहता है कि मैं तुम्हारा कल्याण कर दूँगा, वह ठग, कपटी होता है। अगर आपने गुरु बना लिया है तो छोड़ दो और भगवान्में लग जाओ। इसमें लाभ हो तो आपका, नुकसान हो तो मेरा! अगर गुरुको छोड़नेसे पाप लगता है तो वह पाप मेरेको दे दो। पर वास्तवमें आपको पाप लगेगा नहीं।

स्त्रियोंके लिये शास्त्रोंमें पतिको ही गुरु बताया गया है—**'पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्'**। स्त्रीको अपने पतिके सिवाय दूसरे पुरुषसे किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये।

**श्रोता**—आप कहते हैं कि स्त्रीके लिये उसका पति ही गुरु है। यदि पति कोई अनुचित काम करनेके लिये कहे तो उसकी आज्ञा माननी चाहिये या नहीं ?

**स्वामीजी**—पति कोई अनुचित आज्ञा दे तो उसे मत मानो। कारण कि अनुचित आज्ञा माननेसे उसका दण्ड पतिको भोगना पड़ेगा। अगर आप पतिके कहनेसे पाप करेंगी तो पापका भागी पति होगा, आप नहीं। अतः पति पापका भागी न बने, नरकमें न जाय—इस दृष्टिसे पतिकी अनुचित आज्ञा मत मानो। इस प्रकार पतिके भलेके लिये उसकी बात न माननेसे आपको पाप नहीं लगेगा। मन्दोदरी नामी पतिव्रता थी, पर रावणकी बातमें उसने कभी सम्मति नहीं दी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जीव अनन्त हैं। एक-एक शरीरमें देखा जाय तो रक्तमें कितने जीव हैं, इसकी गणना नहीं हो सकती। वे सब-के-सब परमात्माके अंश हैं। परन्तु इस बातका ज्ञान केवल मनुष्यको ही होता है। देवताओंको ज्ञान होता है, पर देवताओंमें वह चेत नहीं है, जो मनुष्यमें है। मनुष्यको परमात्मप्राप्तिका जो अधिकार है, वह अन्य किसीको नहीं है। केवल मनुष्य ही भगवान्को अपना कह सकता है। मनुष्यके सिवाय अन्य योनियोंमें यह ताकत नहीं है। अन्य योनियाँ 'भोगयोनि' हैं। संसारकी दृष्टिसे मनुष्य 'कर्मयोनि' है और सन्त-महात्माओंकी दृष्टिसे यह 'साधनयोनि' है। जैसे किसान सुबह होते ही हल चलाना शुरू कर देता है, ऐसे ही मनुष्यको बचपनसे ही साधन शुरू कर देना चाहिये।

**सत्संगकी अन्तिम बात है—हम भगवान्के हैं और भगवान् हमारे हैं।** हम सबका भगवान्के साथ घनिष्ठ, अटूट, नित्य सम्बन्ध है। इसलिये आजसे ही चिन्ता करना, रोना आदि छोड़ दो।

सुखदायी या दुःखदायी जो परिस्थिति आती है, वह हमारे कर्मोंका फल है। पर सन्त और भक्त इसे कर्मोंका फल न मानकर भगवान्की कृपा मानते हैं। सुख आपके पुण्य काटता है और दुःख आपके पाप काटता है। आप पुण्य काटना चाहते हैं या पाप? **ज्यादा सुख भोगनेसे अन्तःकरण मैला होता है।**

● भगवान्की भारत देशमें विशेष प्रियता है। यहाँ भगवान्को ज्यादा याद किया जाता है। इसलिये भगवान् यहाँके पापोंको, दुःखोंको सहन नहीं करते। भारतपर भगवान्की विशेष कृपा है, इसलिये वे यहाँ अवतार लेते हैं।

● माताएँ-बहनें अशुद्ध अवस्थामें भी राम-नाम लिख सकती हैं, पर पाठ बिना पुस्तकके करना चाहिये। जरूरत हो तो इन दिनोंके लिये पाठकी पुस्तक अलग रखनी चाहिये।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**आप पैसा कमा सकते हो, पर समय नहीं कमा सकते।** जो समय बाकी बचा है, वह भी निरन्तर खर्च हो रहा है और मौत नजदीक आ रही है। आप पैसोंके विषयमें तो विचार करते हैं, पर समयके विषयमें विचार करते ही नहीं। जिस समयके सदुपयोगसे भगवान् मिल सकते हैं, उसे आप निरर्थक कामोंमें, बुरे कामोंमें क्यों खर्च कर रहे हो?

बुराई करनेपर भी मरना तो पड़ेगा ही, यदि बुराई न करके मर जाओ तो हानि क्या होगी? उल्टे गति अच्छी होगी, नरकोंमें नहीं जाओगे। आप रत्तीभर भी बुराई न करो तो भी बड़े आरामसे जी सकते हो। बुराईसे सर्वथा रहित होनेके लिये तीन बातोंको मानना जरूरी है—किसीको बुरा न समझो, किसीका बुरा न चाहो और किसीका बुरा न करो। इससे भी नीचा उतरकर कहूँ तो जो बात आपको बुरी लगे, वह दूसरेके प्रति मत करो। यह मोक्षशास्त्रकी बात है।

दूसरा बुरा करे, अन्याय करे तो उसे सहो मत; मर भले ही जाओ, पर झुको मत—यह भी श्रेष्ठ बात है, पर यह नीतिशास्त्रकी बात है। **'शठे शाठ्यं समाचरेत्'**—यह नीतिशास्त्र है। नीतिशास्त्रसे कल्याण नहीं होता। नीतिशास्त्रसे धर्मशास्त्र श्रेष्ठ है और धर्मशास्त्रसे मोक्षशास्त्र श्रेष्ठ है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अपना कल्याण न गुरुके अधीन है, न सन्तोंके अधीन है और न ईश्वरके अधीन है, यह तो स्वयंके अधीन है—**'उद्धरेदात्मनात्मानम्'** (गीता ६/५) 'अपने द्वारा अपना उद्धार करे'। आप नहीं करोगे तो कल्याण नहीं होगा, नहीं होगा। लाखों गुरु बना लो तो भी कल्याण नहीं होगा। जब भूख भी खुद रोटी खानेसे ही मिटती है, फिर कल्याण दूसरा कैसे करेगा? आपकी लगनके बिना भगवान् भी आपका कल्याण नहीं कर सकते, फिर गुरु कर देगा, महात्मा कर देगा—इस ठगईमें, इस चक्करमें मत आना। इसमें धोखा है, धोखा है! पहले ही फँसे हुए हो, गुरु मिल जाय तो और फँस जाओगे! जब परमात्माके रहते हुए हमारा कल्याण

नहीं हुआ तो क्या उनसे भी तेज महात्मा आ जायगा! दयालु, सर्वज्ञ और सर्वसमर्थ प्रभुके रहते हुए हमारा कल्याण नहीं हुआ, फिर गुरुसे कैसे होगा? क्या भगवान् मर गये या बीमार हो गये या उनकी शक्ति कम हो गयी? आपको खुदको ही लगना पड़ेगा। आप खुद लग जाओ तो गुरु, सन्त-महात्मा, भगवान् आदि सब-के-सब आपके सहायक हो जायँगे। **बच्चेको भूख न हो तो दयालु माँ भी क्या करेगी?** आपकी लगनके बिना कौन कल्याण करेगा और कैसे करेगा?

अनन्त युग बीत गये, फिर भी हमारा कल्याण क्यों नहीं हुआ? क्या भगवान्की दयालुतामें, सर्वज्ञतामें, सर्वसमर्थतामें कोई कमी है? क्या गुरु भगवान्से ज्यादा दयालु, सर्वज्ञ और सर्वसमर्थ है? जैसे अपना पतन आप खुद कर रहे हो, दूसरा नहीं, ऐसे ही अपना उत्थान भी आपको खुद ही करना पड़ेगा, अन्यथा परमात्माके रहते हुए आप दुःख क्यों पा रहे हो? **आपके तैयार हुए बिना कोई कल्याण नहीं कर सकता और आप तैयार हो जाओ तो कोई बाधा नहीं दे सकता।** आप सच्चे हृदयसे भगवान्में लग जाओ तो गुरुकी जरूरत नहीं है।

एक बार कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा कि युधिष्ठिर जंगलमें दुःख पा रहा है, तेरेको दया नहीं आती? भगवान् बोले कि माँ, मैं क्या करूँ, द्रौपदीका चीर खींचा गया तो उसने मेरेको याद कर लिया, पर युधिष्ठिरने जुएमें अपना सब कुछ दाँवपर लगा दिया, पर मेरेको याद किया ही नहीं ! द्रौपदीने याद किया तो भगवान् आ गये। पर युधिष्ठिरने याद ही नहीं किया तो भगवान् कैसे आयें? क्या भगवान्को पता नहीं था? जब बिना याद किये भगवान्ने युधिष्ठिरका भी उद्धार (कष्ट-निवारण) नहीं किया, तो क्या आपका कर देंगे?

एक आदमी सन्तके पास गया। उसने पूछा कि भगवान् कैसे हैं? सामने खेतमें अरठ चल रहा था। बैल खींच रहे थे। सन्तने बैलोंकी तरफ संकेत करते हुए कहा कि ये बैल अपने पूर्वजन्ममें किये हुए पापका फल भोग रहे हैं। अपने पाप नष्ट करनेके लिये भगवान्ने इनको बैलकी योनि दी, पर साथमें शक्ति भी इनको भगवान्ने ही दी है। भगवान्की दी हुई ताकतसे ही ये अपने पापोंको नष्ट कर रहे हैं। यह भगवान्की कितनी दया है! ऐसे भगवान्को छोड़कर कहीं जानेकी जरूरत नहीं।

**उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥**

(मानस, अरण्य.१२/११)

भगवान् राम और रावणमें युद्ध हो रहा था तो शंकरजी आकाशमें खड़े देख रहे थे— **‘हमहू उमा रहे तेहिं संग। देखत राम चरित रन रंगा॥’** (मानस, लंका. ८१/१)। चेला मर रहा है और गुरुजी खड़े तमाशा देखते हैं। इसलिये भाई, गुरुके भरोसे मत रहना!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

लड़कीवालोंसे दहेज माँगना बहुत ही घातक चीज है। कन्या सबसे बड़ा धन है, फिर उसके साथ रुपये माँगना कितना नीचा काम है! आपको शर्म नहीं आती? पुरुषोंमें रुपयोंकी और स्त्रियोंमें फलों व मिठाईकी भूख रहती है। विचार करो, बेटेके ससुरालसे आये धनसे क्या आप धनी बन जाओगे? लड़कीवालोंको कितना दुःख होता है! दहेज न देनेके कारण कई लड़कियाँ ब्याही नहीं जातीं। लड़कीका बाप बेचारा कितना दुःख पाता है! उधार लेकर, घर-जमीन बेचकर, किसी तरहसे पैसा इकट्ठा करके दहेज देता है। श्रीशरणानन्दजी महाराजका मार्मिक वचन है कि **‘किसीको दुःख देकर जो सुख लेते हैं, वह परिणाममें अनन्त दुःख देता है और किसीको सुख देकर जो दुःख लेते हैं, वह परिणाममें महान् आनन्द देता है’**। आप लड़कीवालोंके धनसे धनी नहीं बन सकते, अगर बनोगे तो उसका परिणाम बड़ा भयंकर होगा और वह आपको भोगना पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं है। आप झूठ-कपट करके धन कमाते हो, वह तो पाप है ही, पर उसकी अपेक्षा भी यह बड़ा पाप है। लड़कीवालोंको

दुःख देकर आया हुआ धन ज्यादा नहीं ठहरेगा—

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति।  
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं तद्विनश्यति॥

(चाणक्यनीति.१५/६)

‘अन्यायसे कमाया हुआ धन दस वर्षतक रहता है। ग्यारहवाँ वर्ष आनेपर वह मूलसहित नष्ट हो जाता है।’

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आजकल लोगोंमें यह उल्टी बुद्धि हो रही है कि पाप, झूठ-कपट करनेसे ही रुपये मिलेंगे। रुपये भाग्यसे ही मिलते हैं, झूठ-कपटसे नहीं। पापके साथ रुपयोंका सम्बन्ध है ही नहीं—

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥

(मानस, अयोण्या. २५१/३)

रुपये उतने ही मिलेंगे, जितने मिलनेवाले हैं। झूठ-कपटसे तत्काल रुपये मिलते दीखते हैं, पर बारह महीनोंके बाद देखो तो हिसाब बराबर निकलेगा। झूठ-कपटसे आये पैसे ज्यादा देर ठहरेंगे नहीं, चोरी, बीमारी आदिमें चले जायेंगे।

● भगवान् रामने प्रजाकी राजीके लिये सीताजीका भी त्याग कर दिया। जो प्रजाके सुखके लिये अपने प्यारे-से-प्यारे अंगका भी त्याग कर दे, वही राजा हो सकता है। जो स्त्रियोंमें, पुत्रोंमें आसक्त हो, वह क्या राजा हो सकता है? नहीं हो सकता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यका जल्दी और सुगमतासे कल्याण हो जायइस विषयमें मैं खोज कर रहा हूँ। अभी कल्याणके लिये एक खास बात बताता हूँ कि ‘शरीरसे आप अलग हैं’—इस बातको आप समझ लें। शरीर अलग चीज है, आप अलग चीज हो। शरीर तो माँके पेटमें बना है, पर आप बने नहीं हो, आप आये हो। शरीर नष्ट होगा, आप नहीं। आप परमात्माके अंश हैं। जब परमात्मा कभी बूढ़े नहीं होते, कभी मरते नहीं, तो फिर उनका अंश बूढ़ा कैसे होगा? कैसे मरेगा? शरीर ही बूढ़ा होता है और मरता है।

परमात्मप्राप्तिके बिना आप ब्रह्मलोक भी चले जायँ तो भी सर्वथा सुखी नहीं हो सकते, साथमें (प्रकृतिका सम्बन्ध रहनेसे) दुःख रहेगा ही। अक्षय सुख परमात्मप्राप्तिसे ही मिलेगा।

मनुष्यशरीरमें अन्तकालतक मुक्तिका दरवाजा खुला है, कभी भी लग जाओ। डॉक्टरलोग अन्तकालतक कोशिश करते हैं कि बीमार आदमी किसी तरह जी जाय, मरे नहीं। इसलिये जितने दिन बाकी बचे हैं, उनका सदुपयोग करो, भगवान्में लग जाओ।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यमात्रको परमात्मप्राप्ति हो सकती है, चाहे वह किसी भी देश, जाति, सम्प्रदाय, धर्म आदिका क्यों न हो। मनुष्योंमें भी हिन्दुओंको कल्याणका जितना अधिकार मिला है, उतना औरोंको नहीं मिला है। यह बात मैं बेहोशीमें, अनजानपनेमें नहीं कहता हूँ। हमारे ऋषियोंने हरेक क्षेत्रमें बड़ी विलक्षण खोज की है। ऐसी विलक्षण खोज किसी देशके किसी मनुष्यने नहीं की है।

हमारी वर्णमालामें जितनी विलक्षणता है, उतनी संसारकी किसी भाषामें नहीं है। अंग्रेजीमें छब्बीस ही वर्ण हैं, पर संस्कृतमें तिरसठ वर्ण हैं। हमारी जैसी लिपि है, ऐसी लिपि कहीं नहीं मिलेगी। जैसे, ‘क’ से ‘म’ तक पचीस अक्षर ‘स्पर्श’ हैं, य, र, ल, व आदि ढीले-ढीले हैं, ‘स्पर्श’ नहीं हैं। ये पचीस अक्षर भी क्रमशः कण्ठसे

लेकर बाहर ओष्ठतक आते हैं। पचीस अक्षरोंमें भी पाँच-पाँच न्यारे-न्यारे हैं। पहले अक्षर 'क, च, ट, त, प'—ये 'अल्पप्राण' हैं, और दूसरे अक्षर 'ख, छ, ठ, थ, फ'—ये 'महाप्राण' हैं। तीसरे अक्षर 'ग, ज, ड, द, ब'—ये 'अल्पप्राण' हैं, और चौथे अक्षर 'घ, झ, ढ, ध, भ'—ये 'महाप्राण' हैं, और पाँचवें अक्षर 'ङ, ञ, ण, न, म'—ये 'अल्पप्राण' हैं। इसप्रकार विषम (पहला, तीसरा और पाँचवाँ) अक्षर अल्पप्राण हैं और सम (दूसरा और चौथा) अक्षर महाप्राण हैं। 'अल्पप्राण'वाले अक्षरोंके उच्चारणमें कम प्राण खर्च होते हैं। 'महाप्राण'वाले अक्षरोंके उच्चारणमें अधिक प्राण खर्च होते हैं। उदाहरणार्थ, हम एक श्वासमें 'क-क-क' का जितनी बार उच्चारण कर सकते हैं, उतनी बार 'ख-ख-ख' का उच्चारण नहीं कर सकते; क्योंकि इसमें प्राण ज्यादा खर्च होते हैं। ऐसी विचित्र वर्णमाला कहीं नहीं है! अभी मैं इसकी पूरी विलक्षणता बता नहीं सका! संस्कृत जाननेवाले ही कुछ समझ सकते हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यजीवनके समयके समान कीमती कोई समय नहीं है। समय देकर मनुष्य परमात्मप्राप्ति कर सकता है, तत्त्वज्ञान प्राप्त कर सकता है, परमप्रेम प्राप्त कर सकता है। समय व्यर्थ चला जाय—इसके समान कोई हानि नहीं है। मनुष्य मर जाय, उससे भी अधिक हानि है! यह समय भगवान्का दिया हुआ है, हमारे हाथमें नहीं है। यदि हाथमें है तो मरते क्यों हो? समय, योग्यता, बल आदि सब भगवान्ने दिये हैं। **भगवान्का देनेका जो तरीका है, वैसा किसीके पास नहीं है। वे जिसे जो वस्तु देते हैं, उसे वह वस्तु अपनी ही दीखती है कि शरीर मेरा ही है, इन्द्रियाँ मेरी ही हैं, मन-बुद्धि मेरे ही हैं।** विचार करें, यदि आँखें आपकी हैं तो चश्मा क्यों लगाते हो? शरीर आपका है तो उसे बीमार क्यों होने देते हो? मरने क्यों देते हो? शरीरपर आपका वश नहीं चलता तो फिर वह आपका कैसे?

**संसारमें धोखा, विश्वासघात करनेवाले तो मिलेंगे, पर कल्याण करनेवाला कहाँ मिलेगा?** आज गुरु बननेके लिये सब तैयार हैं, पर आपका कल्याण करनेवाला गुरु है क्या? कह देंगे कि '**गुरु गोबिन्द दोउ खड़े**', पर गोबिन्दको लाकर खड़ा कर दे—ऐसी है किसीमें ताकत? क्यों ठगाईमें आते हो? जरा ध्यान दो, आप चेला बन गये तो क्या मिला? कितनी उन्नति हुई? जो चेला नहीं बने, उनकी अपेक्षा आपमें फर्क क्या पड़ा? कथा सुनाकर आपको राजी कर दिया, हँसा दिया, रुला दिया। इसके सिवाय क्या मिला आपको?

**यदि दूकानदार सुबह ही हजार रुपये कमा ले तो वह दिनभर दूकान बन्द नहीं करता। पर आप सुबह थोड़ी देर नामजप, पूजा-पाठ कर लेते हो, फिर दिनभर निकम्मे बैठे रहते हो कि बस, हमने नित्यकर्म कर लिया।** ऐसी नीयतसे भगवान् मिल जायेंगे क्या? भगवान्के यहाँ ऐसी चालाकी नहीं चलती। इसलिये सच्चे हृदयसे भगवान्में लगे। मरनेपर कहते हो कि 'राम-नाम सत्य है', पर जीवित अवस्थामें कितना राम-नाम लिया? कितना सत्यका विचार किया?

कलियुग आनेपर भगवान् कमजोर नहीं हुए हैं। **ज्यों-ज्यों समय गिरता है, त्यों-त्यों भगवान् सुगम होते हैं, सरलतासे मिलते हैं।** पर कोई सच्चे हृदयसे उनको पुकारनेवाला तो हो!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

घरमें बैठे हुए, काम करते हुए सुगमतासे शान्तिकी प्राप्ति हो जाय, ऐसी बात बतायी जाती है। एक बात आप मनसे सदाके लिये निकाल दें कि दूसरेको दुःख देकर हम सुखी हो जायेंगे। दूसरेको थोड़ा भी दुःख दिया जायगा तो उसका भयंकर फल भोगना ही पड़ेगा—यह नियम है। मनुष्यके लिये दो बातें खास हैं—भगवान्को याद करना और दूसरेको सुख पहुँचाना, उनकी सेवा करना। हिंसा करना, मांस-मछली-अण्डेका सेवन करना, मदिरा पीनाये महान् घातक और दुःख देनेवाली चीजें हैं, आप मानें चाहे न मानें। अपना जीवन सीधा-सादा और शुद्ध



बनायें तो अवश्य लाभ होगा।

अब शान्तिके लिये चुनी हुई बातें बताता हूँ। रोजाना सुबह उठकर भगवान्‌को याद करें—

**त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।**

**त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥**

—सुबह उठते ही इस श्लोकके भावके अनुसार, गद्गद होकर भगवान्‌को प्रणाम करें। फिर पृथ्वी, गुरुजन, सन्त-महात्मा, गीताजी, गंगाजी, घरके बड़े-बूढ़े आदिको याद करके उनको नमस्कार करें। इससे अन्तःकरण निर्मल होता है और शान्ति मिलती है। इसके बाद माता, पिता, बड़ा भाई, भौजाई, बड़ी बहन आदि बड़ोंको नमस्कार करें। नमस्कारका बड़ा भारी माहात्म्य है। रोजाना सुबह और शाम दोनों समय बड़ोंके चरणोंमें नमस्कार करनेसे बड़ी शान्ति मिलती है, लड़ाई-झगड़ा मिटता है, वैरभाव मिटता है। घरमें परस्पर प्रेम होनेसे लक्ष्मी बढ़ती है और शान्ति भी मिलती है। लोग उस घरमें अपनी कन्या देना चाहते हैं।

**अपनी वस्तु दूसरेके काम आ जाय तो आनन्द मनाओ। पर जहाँतक बने, आप दूसरेकी वस्तु अपने काममें मत लो।** प्रेम जितना कीमती है, उतनी वस्तु कीमती नहीं है।

दो भाई प्रेमपूर्वक साथ-साथ रहते थे। दोनों भाइयोंके एक-एक लड़का था। एक दिन बड़ा भाई बाजारसे दो आम लाया। दोनों लड़के आपसमें खेल रहे थे। उनको देखते ही वे आम लेने दौड़े। बड़े भाईने अपने दोनों हाथ घुमाकर दोनोंको एक-एक आम दे दिया। बच्चे राजी हो गये। उधर छोटा भाई स्नानघरसे यह सब देख रहा था। उसने विचार किया कि बड़े भाईने हाथ घुमाकर आम क्यों दिये, सीधे-सीधे दे देते? उसने अकेलेमें दोनों लड़कोंको बुलाया और दोनोंके आम देखे तो पता चला कि बड़े भाईने उसके लड़केको जो आम दिया, उसमें टक्कर लगी हुई थी, और अपने लड़केको जो आम दिया, वह बढ़िया था। इस बातसे उसके मनमें टक्कर लग गयी। दो-तीन दिन गुजरनेपर उसने बड़े भाईको बुलाया और कहा कि आपको जितना देना हो, दे दो और हम अलग हो जायँ। बड़े भाईने आश्चर्यसे पूछा कि हमारेमें कोई झगड़ा नहीं, स्त्रियोंमें कोई खटपट नहीं, फिर तुमने यह बात कैसे छेड़ी? पहले तो छोटा भाई कुछ बोला नहीं, पर ज्यादा आग्रह किया तो आमवाली बात बताकर कहा कि अभी मेरे जीवित रहते ऐसी बात है, यदि मैं मर गया तो आप मेरी स्त्रीका और बच्चोंका पालन करोगे, इसपर कैसे विश्वास करूँ? लड़ाई होनेपर अलग होनेकी अपेक्षा प्रेम रहते हुए अलग होना अच्छा है। बड़े भाईने कहा कि मेरेसे भूल हो गयी। छोटे भाईने कहा कि जब मेरे रहते भूल हो गयी, फिर मेरे मरनेपर भूल न हो, इसपर कैसे विश्वास करूँ? आखिर दोनों अलग हो गये। तात्पर्य है कि **व्यवहारमें थोड़ी-सी विषमताका भी परिणाम बहुत बुरा होता है।**

बम्बईमें एक सेठ थे। पत्नीका शरीर शान्त हो चुका था। नीचे दूकान थी, ऊपर खुद रहते थे। एक दिन वे ऊपर भोजन करने गये। अपनी बहूसे पूछा कि दही है? उसने इशारेसे ना कह दिया। वे भोजन करके नीचे आ गये। नीचे दूकानमें ग्राहक आ गये। चाबी बेटेके पास थी, जो भोजन करने ऊपर गया था। वे सेठ चाबी लेने पुनः ऊपर गये तो वहाँ उसकी थालीमें दहीका कटोरा रखा हुआ देखा। उनके मनमें खटका हुआ कि मेरेको तो मना कर दिया, पर अपने पतिके लिये दही रखा है। मनमें विचार किया कि अब मैं विवाह करूँगा; क्योंकि भोजन या तो माँ करा सकती है या पत्नी। एक बार किसी कामसे वे मद्रास गये तो वहाँ विवाह कर लिया। जब बम्बई आये तो बेटेने पूछा कि यह कौन है? सेठ बोले कि तेरी माँ है! उसने कहा कि आपका विवाहका विचार तो था नहीं? सेठ बोला 'दहीका कटोरा! दहीका कटोरा!!' उसकी समझमें नहीं आया कि विवाहका दहीके कटोरेसे क्या मतलब? जब पूछा तो सारी बात पता लगी। इस प्रकार थोड़े-से पक्षपातसे भी बड़ा भारी नुकसान होता है। बादमें सेठकी उस स्त्रीसे सन्तान हुई तो ऐसा कपूत जन्मा कि घरकी सब सम्पत्ति नष्ट हो गयी। कारण कि **काम,**

क्रोध अथवा लोभके वशीभूत होकर जो काम किया जाता है, उसका परिणाम बहुत बुरा होता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

संसारमें जितनी चीजें आपको दीखती हैं, वे सब पैदा और नष्ट होनेवाली हैं—ऐसा जानते हुए भी आप उनमें मन लगाते हैं, मोह करते हैं, तो सिवाय दुःखके और क्या होगा? संसारमें अनन्त शरीर हैं, पर अपना कल्याण करनेके लिये एक मनुष्यशरीर ही है। सत्संग अर्थात् सत्का संग इस मनुष्यशरीरमें ही होता है। अन्य शरीरोंमें असत्का संग होता है। आपको अधिकार इतना बड़ा मिला हुआ है कि लाखोंका उद्धार कर सकते हैं, पर अपना भी उद्धार नहीं कर सके, यह कितनी शर्मकी बात है! अपना कल्याण करो या पतन करो, इसके लिये ये ही दिन हैं, नये दिन नहीं आयेंगे।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान् कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

(गीता ९/२९)

‘मैं सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान हूँ। उन प्राणियोंमें न तो कोई मेरा द्वेषी है और न कोई प्रिय है। परन्तु जो प्रेमपूर्वक मेरा भजन करते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें हूँ।’

तात्पर्य है कि भगवान्में प्राणिमात्रके प्रति समता है, समान दृष्टि है, पर भक्तोंके कारण उनमें विषमता आती है। जैसे सूर्यका प्रकाश सबपर समानरूपसे पड़ता है, पर आतशी शीशेके कारण उस प्रकाशसे आग पैदा हो जाती है। यह पक्षपात या विषमता सूर्यमें नहीं है, प्रत्युत इसमें आतशी शीशा कारण है। ऐसे ही भगवान्की कृपा सबपर समान है। उनकी भक्तपर विशेष कृपा होती है तो वास्तवमें भगवान्ने विशेष कृपा की नहीं, प्रत्युत भक्तने (आतशी शीशेकी तरह) विशेष कृपा खींच ली। यह विशेषता भक्तकी है। इसी तरह जो प्रेमसे सुनते हैं, उनके प्रति वक्ताके विशेष भाव पैदा हो जाते हैं, और जो प्रेमसे नहीं सुनते, उनपर कृपा समान होनेपर भी वैसे भाव पैदा नहीं होते तो यह वक्ताका पक्षपात नहीं है।

जिसका अन्तःकरण अशुद्ध है, वह दूसरेका अच्छा आचरण देखकर भी उसे अच्छा नहीं मानता, पर दूसरेका बुरा आचरण देखकर उसे बुरा मान लेता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा, जो हरदम दुःखी रहे; क्योंकि दुःखकी जड़, नींव है ही नहीं। परन्तु सदा सुखी रहनेवाले सन्त-महात्मा मिल जायेंगे।

जितने सुख देनेवाले व्यक्ति हैं, वे आपको सुखी नहीं बना सकते, पर कोई सुख देनेवाला नहीं हो, केवल भगवान्का सहारा हो, तो आप मौजमें, आनन्दमें रहोगे। आपको सुख देनेवाले अच्छे लगते हैं, पर वास्तवमें जो सुख देनेवाले हैं, वे ही दुःख देते हैं।

जिस समय सुख आता है, उसी समय उसका नाश शुरू हो जाता है। आपके माँके पेटमें आते ही मृत्यु शुरू हो गयी। आप ख्याल करो, बिल्कुल सच्ची बात है। बालक पाँच वर्षका हो गया तो उसकी कुल उम्रसे पाँच वर्ष कम हो गये, मृत्यु नजदीक आ गयी। सुख आता है तो वह भी नहीं ठहरता और दुःख आता है तो वह भी नहीं ठहरता; परन्तु परमात्माका आनन्द आता है तो वह कभी जाता ही नहीं, कभी मिटता ही नहीं, हरदम रहता है—

## ‘सदा दीवाली संत के आठों पहर आनन्द’।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

एक ही बात है—संसारसे हटना और परमात्मामें लगना। वास्तवमें संसार आपसे निरन्तर हटता जा रहा है। संसार और शरीर आपके साथ एक क्षण भी नहीं रहते। अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, पर उनमें कोई भी चीज आपके साथ नहीं रह रही है। हरेक चीज आपसे अलग हो रही है। परन्तु परमात्मा निरन्तर आपके साथ रह रहे हैं। वे एक क्षणके लिये भी आपसे अलग नहीं होते।

जैसे घड़ीमें हम समय न देखें तो वह हमारे क्या काम आती है? कुछ काम नहीं आती। ऐसे ही अगर आप शरीरसे कोई काम न लें तो शरीर हो चाहे न हो, उससे क्या मतलब सिद्ध होता है? आप सोते हैं तो शरीर क्या काम आता है? जैसे शरीर काम नहीं आता, ऐसे ही संग्रह किये रुपये क्या काम आते हैं? आपको उनकी रक्षाकी चिन्ता तो होती है, पर वे काम क्या आते हैं? उन रुपयोंको काममें लेते हो तो भी वे संसारके ही काम आये, आपके काम क्या आया? क्या आपका कल्याण हो गया? अगर मरते समय उनमें चित्त रह गया तो साँप, अजगर, भूत-प्रेत बनोगे। इस प्रकार रुपये अजगर या भूत-प्रेत बननेके लिये आपके काम आयेंगे। **मेरा कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि आप सब छोड़कर साधु बन जाओ, मेरा तात्पर्य है कि आप रुपयोंमें मन न लगाकर भगवान्में मन लगाओ।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जैसे विवाह होनेपर कन्या अपना घर, गोत्र आदि सब कुछ छोड़कर पतिकी ही हो जाती है, अपने माता-पिताके घर रहते हुए भी वहाँकी नहीं रहती, ऐसे ही आप भगवान्के शरण हो जाओ कि आज मैं भगवान्का हो गया, अब मैं संसारका नहीं रहा। इतनी बातमें ही सब काम हो जायगा!

कलकत्तेमें रहनेवाले एक सज्जनने मुझे अपनी बात बतायी कि ‘मैं पहले सत्संगको अच्छा नहीं समझता था। जब सत्संग करनेवालोंको देखता था तो मनमें आता कि ये व्यर्थमें ही अपना समय बरबाद कर रहे हैं। जिस कामसे एक कौड़ी पैदा न हो, उस काममें क्यों समय लगाया जाय! एक बार मैं नवद्वीप गया और वहाँ भजनाश्रममें ठहरा। भजनाश्रममें माताएँ इकट्ठी होकर कीर्तन करती थीं। मैं वहाँ बैठ गया। कीर्तनके बीचमें एक माता खड़े होकर व्याख्यान देती थी। उस माताने कहा—

**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।**

**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥**

(वाल्मीकि. ६/१८/३३)

‘भगवान् कहते हैं कि जो एक बार भी शरणमें आकर ‘मैं आपका हूँ’ ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी याचना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है।’

मैंने सोचा कि यह तो बड़ी सरल बात है। मैंने अपने कमरेमें जाकर दरवाजा बन्द कर लिया और दण्डवत् प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर कहा कि ‘हे प्रभो, मैं सच्चे मनसे आपके शरण होता हूँ’। फिर मैं कलकत्ते आ गया। उस (शरण होनेकी) बातको भूल गया। यहाँ सत्संग होते देखा तो यों ही मनमें विचार आया कि जाकर देखें, सत्संगमें क्या होता है? वहाँ गया तो सत्संग अच्छा लगा। धीरे-धीरे मैं सत्संगमें जाने लग गया। तब मनमें विचार आया कि मैं तो सत्संगको अच्छा नहीं समझता था, फिर सत्संगमें कैसे जाने लग गया? तब याद आया कि मैंने एक बार भगवान्से कहा था कि मैं आपके शरण हूँ, यह उसीका परिणाम है।’

जैसे विवाह होनेपर तत्काल बेटा नहीं होता, प्रत्युत समय पाकर होता है, ऐसे ही आप भगवान्के

हो जाओ, फिर समय पाकर वह सब हो जायगा, जो आप चाहते हो। स्वतः अनुभव हो जायगा।

विवाह होनेपर स्त्री पतिके साथ जाती है तो क्या माँसे कहती है कि मुझे थोड़ा-सा आटा दे दो; भूख लगेगी तो खाऊँगी क्या? पर ऐसी किसीके मनमें नहीं आती; क्योंकि जो ले जायगा, वही रोटी-कपड़ा देगा, इसमें मुझे क्या चिन्ता करनी? जबकि ले जानेवाला तलाक भी दे सकता है, साधु भी हो सकता है, मर भी सकता है! इसमें सब तरहकी जोखिम है। परन्तु भगवान् न तलाक देते हैं, न साधु होते हैं, न मरते हैं। ऐसा वर संसारमें आपको कहीं मिलेगा नहीं।

किसी माँके दस बेटे हों तो माँके दस हिस्से नहीं होते, प्रत्युत माँ दसों बेटोंकी पूरी-की-पूरी होती है। ऐसे ही भगवान् हम सबके पूरे-के-पूरे हैं।

अपनेको भगवान्का मान लो, फिर किसी गुरुकी जरूरत नहीं है।

हम भगवान्के हैं और भगवान् हमारे हैं—इतना स्वीकार कर लो तो हमारा सत्संग सफल हो गया और आपका काम भी सफल हो गया।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मेरे मनमें एक लगन है कि सबको सुगमतासे और जल्दी भगवत्प्राप्ति कैसे हो? मैंने कई वर्ष पहले सभामें कहा था कि यदि छः-सात वर्ष मेरा शरीर और रह गया तो भगवत्प्राप्ति और सुगम बता दूँगा। आज वही बात बता रहा हूँ।

आपमें केवल भगवत्प्राप्तिकी लालसा हो जाय। वह लालसा ऐसी हो, जिसकी कभी विस्मृति न हो। तात्पर्य है कि मुझे भगवान्की प्राप्ति हो जाय, तत्त्वज्ञान हो जाय, उनके चरणोंमें मेरा प्रेम हो जाय—इसको केवल याद रखना है, भूलना नहीं है। हम सब भगवान्रूपी कल्पवृक्षकी छायामें बैठे हैं, इसलिये हमारी लालसा अवश्य पूरी होगी; क्योंकि इसीके लिये मनुष्यजन्म मिला है। अगर आपकी सच्ची लगन होगी तो दो-चार दिनमें काम सिद्ध हो जायगा। कितनी सुगम बात है। इसमें कठिनता क्या है? इसमें लाभ-ही-लाभ है, हानि कोई है ही नहीं। इससे बढ़िया सुगम उपाय मुझे कहीं मिला नहीं!

केवल एक बात पकड़ लें कि मेरा भगवान्में प्रेम हो जाय। इस एक बातमें सब कुछ आ जायगा। इसमें पुरुषार्थ इतना ही है कि इस बातको भूलें नहीं, केवल याद रखें। ऐसा करोगे तो मैं अपनेपर आपकी बड़ी कृपा मानूँगा, एहसान मानूँगा। केवल याद रखना है, इतनी ही बात है। ऊँची-से-ऊँची सिद्धि इससे हो जायगी। सदाके लिये दुःख मिट जायगा। कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग—ये तीनों योग सिद्ध हो जायँगे। केवल अपनी आवश्यकताको याद रखें, भूलें नहीं। इसके सिद्ध होनेमें कम या ज्यादा दिन लग सकते हैं, पर इसमें कोई अयोग्य नहीं है। यह बात मामूली नहीं है। मुझे किसी ग्रन्थमें यह बात मिली नहीं। स्पष्टरूपसे केवल एक जगह सन्तोंकी (श्रीशरणानन्दजी महाराजकी) वाणीमें मिली है।

शास्त्रोंकी अपेक्षा अनुभवी सन्तोंकी बात श्रेष्ठ है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

किसी सन्तके पास जाओ तो कम-से-कम उनके मनके विरुद्ध काम मत करो। इससे कभी लाभ नहीं होगा, उल्टे हानि होगी। लाभ सन्तकी प्रसन्नतासे होता है, उनके मनके विरुद्ध काम करनेसे नहीं। उनके मनके विरुद्ध काम करेंगे तो वह अपराध होगा, जिसका दण्ड भोगना पड़ेगा। उनका कहना नहीं मानो तो कम-से-कम उनके विरुद्ध तो मत चलो। हम सन्तसे जबर्दस्ती लाभ नहीं ले सकते, प्रत्युत उनकी प्रसन्नतासे लाभ ले सकते हैं। लाभ सन्तकी प्रसन्नतामें है, उनके चरणोंमें नहीं।

घरमें भी आप शान्ति चाहो तो बड़ोंकी आज्ञा भंग मत करो। अगर बड़ा व्यक्ति कोई अनुचित काम कह दे तो उस समय चुप रहो, पीछे हाथ जोड़कर सामने हाजिर हो जाओ और नम्रतापूर्वक कह दो कि आपने जो काम कहा, उससे यह खराबी हो जायगी। इससे कोई दोष नहीं लगेगा। पर उनकी बात काट देनेसे दोष लगेगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जो भी दुःख आया है, वह किसी-न-किसी कर्मका फल है। कर्मफल भोगनेसे आपका नुकसान नहीं होगा, प्रत्युत आपके पाप कटेंगे, आप शुद्ध हो जायेंगे। मनके अनुकूल परिस्थिति आनेसे तो नुकसान हो सकता है, पर मनके विरुद्ध होनेसे नुकसान नहीं हो सकता। आपकी स्वार्थबुद्धि होनेसे नुकसान दीखता है, वास्तवमें होता नहीं। जितना मनके विरुद्ध होगा, उतने ही पाप कटेंगे और हम शुद्ध होंगे। इसलिये दुःखी मत होओ। जो परिस्थिति आये, हरदम प्रसन्न रहो—‘**जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये**’।

भक्तको तो हर समय प्रसन्न रहना चाहिये। उसको न सुखी होना है, न दुःखी होना है, प्रत्युत सुख-दुःख दोनोंसे ऊँचा उठकर आनन्दमें रहना है। जो अनुकूलतामें हर्षित नहीं होता, वही प्रतिकूलतामें प्रसन्न रह सकता है।

हरदम खूब प्रसन्न रहो तो इससे साधन भी सुगमतासे होगा और रोग भी ठीक होगा।

**विपरीत परिस्थितिमें भी प्रसन्न रहना सत्संगका फल है।**

कोई भी व्यसन नहीं होना चाहिये। व्यसनी कभी सुखी नहीं रह सकता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

सदुपयोग और दुरुपयोग—ये दो शब्द बड़े विलक्षण हैं। इनमें बड़ा भाव भरा है। नीची-से-नीची बातका सदुपयोग किया जाय तो उससे कल्याण हो जाय, और ऊँची-से-ऊँची बातका दुरुपयोग किया जाय तो उससे पतन हो जाय! **ऊँच-नीच योनियोंकी प्राप्तिमें मनुष्यशरीरका सदुपयोग-दुरुपयोग ही कारण है।** मनुष्यजन्ममें भगवान्की दी हुई अनन्त-अपार शक्ति है। मनुष्यशरीरके सदुपयोगसे जीव इतनी उन्नति कर सकता है, जिसका कोई पारावार नहीं है। सदुपयोग-दुरुपयोग करनेमें मनुष्य स्वतन्त्र है।

मनुष्यशरीरका सदुपयोग है—अभिमान और स्वार्थका त्याग करके दूसरोंका हित करना।

**पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥**

(मानस, उत्तर.४१/१)

**परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहूँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥**

(मानस, अरण्य.३१/५)

आपके पास जो कुछ है, उसका सदुपयोग करें तो आप महात्मा बन जायेंगे। आप ऊँचे बन जायँ, महात्मा बन जायँ, संसारमें आपकी कीर्ति हो जाय, आपके दर्शनसे लोगोंका कल्याण हो जाय—ऐसे मैं चाहता हूँ, इसीलिये ये बातें कहता हूँ।

आप कितना ही दान-पुण्य करें, वह सीमित ही रहेगा। परन्तु किसीका भी अहित न करनेसे असीम पुण्य होगा।

एक खोमचा बनानेवाला आदमी था, जो चने और आलूकी कई चीजें बनाकर बेचा करता था। वह रोजाना सत्संगके लिये एक सन्तके पास जाया करता था। वह प्रायः सन्तसे कहा करता कि मैं एकान्तमें भजन करने बैठता हूँ तो मन नहीं लगता, क्या करूँ? सन्त कहते कि दूसरेका उपकार करो; दूसरेका उपकार, हित करनेसे शान्ति

मिलती है। वह आदमी रोजाना कुछ दान-पुण्य भी करता था, पर शान्ति नहीं मिलती थी। एक दिन दोपहरके समय वह खोमचा लेकर जा रहा था तो रास्तेमें उसने एक बूढ़े व्यक्तिको सिरपर लकड़ियोंका बोझा उठाये जाते हुए देखा। सहसा वह बूढ़ा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। खोमचेवाला भागकर उसके पास गया। उस व्यक्तिके मुखपर पानीके छींटे मारे तो उसे होश आ गया। खोमचेवालेने उसे चने व आलूसे बनी कुछ चीजें खानेको दीं। जब उसने खा लिया तो उसे पानी पिलाया। जब वह बूढ़ा व्यक्ति स्वस्थ हो गया, तब परिचय पूछनेपर उसने बताया कि मैं रोजाना जंगलसे लकड़ियाँ लाकर बेचता हूँ, इसीसे काम चलता है। अगर एक दिन लकड़ी न लाऊँ तो काम बन्द हो जाय। घरमें बच्चे हैं, जवान कोई है नहीं। इसलिये मैं सब काम करता हूँ। खोमचेवालेने लकड़ियोंका बोझा उठाकर उसके सिरपर रख दिया। वह चला गया।

रातमें जब खोमचेवाला भजन करने बैठा तो उसका ध्यान लग गया। उसने दूसरे दिन सन्तको बताया कि कल रात मेरा ध्यान ठीक लग गया। सन्तने कहा कि कल तुमने कोई पुण्यका काम किया होगा? वह बोला कि नहीं, मैंने ऐसा कोई काम किया ही नहीं। बादमें याद आया तो बूढ़े आदमीकी बात बतायी। सन्तने कहा कि उसीकी सेवाका परिणाम है कि तुम्हारा ध्यान लग गया। इसी तरह जो दीन-दुःखियोंकी सेवा करता है, उसका बहुत पुण्य होता है। लखपति-करोड़पति ऐसी सेवा नहीं कर सकते।

**दूसरेका दुःख देखकर दयासे हृदय द्रवित होनेसे जितना पुण्य होता है, उतना लाखों रुपयोंके दानसे भी पुण्य नहीं होता।** द्रवित हृदयसे बहुत लाभ होता है। परन्तु धनियोंका हृदय कठोर होता है।

बालक-बालिकाओंको दो बातें याद रखनी चाहिये—बड़ोंके सामने बोलना नहीं और वे जैसा कहें, वैसा तुरन्त कर देना।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**भगवान्में अपनेपनका सम्बन्ध प्रेम जाग्रत् करनेमें खास हेतु है।** भगवान् न पुरुष हैं, न स्त्री हैं, न पुंसक हैं, फिर भी सब कुछ हैं! इसलिये आप उनको पिता भी मान सकते हैं और माता भी। आप भगवान्से जो सम्बन्ध मानें, उसी सम्बन्धको माननेके लिये भगवान् तैयार हैं। सम्बन्ध माननेसे भगवान्में अपनापन होता है। भगवान् अपनेपनसे जितने जल्दी मिलते हैं, उतने जल्दी उद्योगसे नहीं मिलते। आपके साथ बेटेका जितना सम्बन्ध होता है, उतना नौकरका सम्बन्ध नहीं होता। नौकरका सम्बन्ध काम-धंधेसे होता है, पर बेटेका सम्बन्ध काम-धंधेसे नहीं होता। नौकर काम-धंधा ठीक करे तो आप राजी होते हैं। परन्तु बेटा चाहे अनपढ़ हो, अयोग्य हो, तो भी वह पिताकी सम्पत्तिका पूरा मालिक होता है। आप उद्योग करते हैं तो नौकर बनते हैं और भगवान्में अपनापन करते हैं तो बेटा बनते हैं।

**अनन्त ब्रह्माण्डोंमें केशभर भी कोई वस्तु अपनी नहीं है, पर अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके एक अंशमें हैं, वे परमात्मा अपने हैं।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

‘मुक्ति’ नाम छूटनेका है। सम्पूर्ण विकारोंसे, दुःखोंसे, पाप-ताप-सन्तापसे, पराधीनतासे सर्वथा छूट जाना ‘मुक्ति’ है। इसके बाद जो ‘प्राप्त’ होता है, वह है—परमात्मा, उसका प्रेम। वह प्रेम मुक्तिसे भी विलक्षण है। कई सम्प्रदाय मुक्तिको तो मानते हैं, पर प्रेमको नहीं मानते। प्रेममें जैसा आनन्द है, वैसा देखने, सुनने, समझनेमें नहीं आता। मुक्तिमें ‘अखण्ड आनन्द’ है, पर प्रेममें ‘अनन्त आनन्द’ है। **उस प्रेमकी प्राप्तिमें ही मनुष्यजन्मकी पूर्णता है।** कई मुक्तिको ही पूर्ण मान लेते हैं और वहीं अटक जाते हैं। मुक्तिमें दार्शनिक मतभेद रहता है, पर प्रेममें वह मतभेद मिट जाता है और सब एक हो जाते हैं। उस प्रेममें ऐसा विलक्षण आनन्द है, जिसकी कोई सीमा नहीं है।



\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—मनुष्य अपने दुःखदायी कर्मोंसे छूट सकता है क्या?

**स्वामीजी**—हाँ, छूट सकता है। इसके लौकिक उपाय भी हैं; जैसे महामृत्युंजयका जप ठीक विधि-विधानसे किया जाय तो वह दुःखसे छूट जाता है। परन्तु वे दुःखदायी कर्म जितनी मात्रामें हैं, उससे अधिक मात्रामें प्रायश्चित्त (अनुष्ठान) हो, तभी उन कर्मोंसे छूट सकते हैं, अन्यथा नहीं। तात्पर्य है कि दुःखदायी कर्मोंकी अपेक्षा अनुष्ठान अधिक बलवान् हो तो उनसे छूट सकते हैं, दोनों बराबर बलवान् हों तो भी दुःख कम हो जाता है, पर कम बलवान् हो तो छुटकारा नहीं होता। इसलिये कर्मोंके बदलनेमें बलाबलका विचार होता है। जैसे कैदकी सजा जुर्माना देनेसे भी मिट जाती है, पर जुर्माना कम नहीं होना चाहिये। ऐसे ही अनुष्ठान करनेसे कर्मफल बदल जाता है। अथवा जैसे फलवाले वृक्षकी कलम लगा दी जाय तो उसी वृक्षके रससे दूसरा फल (कलममें) लग जाता है, ऐसे ही कर्मोंके फलमें भी परिवर्तन हो सकता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो जैसा अभाव दरिद्र-से-दरिद्र व्यक्तिमें होता है, वैसा-का-वैसा अभाव धनी-से-धनी व्यक्तिमें भी होता है। फर्क इतना है कि दरिद्र आदमीमें धनका अभिमान कम होता है और धनी आदमीमें अभिमान अधिक होता है। यह वस्तु नहीं है, वह वस्तु नहीं हैइस प्रकार 'नहीं'-पना (कमी) धनी-से-धनी व्यक्तिमें भी रहता है। धनी हो या दरिद्र, कमी रहती ही है। यह कमी धनसे नहीं मिटती। भगवान्की तरफ चलनेवाले, सत्संग करनेवालेमें यह कमी स्वाभाविक ही मिटती चली जाती है।

**दान सीमित होता है, पर त्याग असीम होता है।** त्याग क्रिया नहीं है, प्रत्युत भाव है। लाखों-करोड़ों रुपयोंका दान कर दें तो भी वह सीमित ही होगा, पर 'हमें कुछ लेना ही नहीं है'—यह त्याग असीम होता है। इसलिये निषेधात्मक साधनको बड़ा ऊँचा माना गया है। **जड़ताका सम्बन्ध विहितसे उतना नहीं छूटता, जितना निषेध ( त्याग )-से छूटता है।** इसलिये त्यागकी जो महिमा है, वह दान-पुण्यकी नहीं है। बुराईके त्यागकी जो महिमा है, वह भलाईकी नहीं है। इसका कारण यह है कि संसारमें हम केवल निषिद्धमें, असत् पदार्थोंके सम्बन्धसे ही फँसे हैं। त्यागसे उन पदार्थोंका सम्बन्ध छूट जाता है। वह सम्बन्ध दान-पुण्यसे नहीं छूटता। अतः मूलमें 'त्याग' से अर्थात् असत् पदार्थोंके सम्बन्ध-विच्छेदसे ही मुक्ति होती है। **त्याग करनेसे जो शान्ति मिलती है, वह विहित कर्मोंसे नहीं मिलती।** गीतामें जो दान बताया है, वह वास्तवमें त्याग है (१७/२०)।

**'एकगुना दान, सहस्रगुना पुण्य'**—एक रुपया दिया तो हजार रुपयोंके साथ सम्बन्ध जुड़ गया, तो सम्बन्ध कहाँ छूटा? पर त्याग करनेसे सम्बन्ध छूट जाता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

दूसरा हमारे साथ बुराई करता है तो हमें भी उसके साथ बुराई करनी चाहिये—यह नीतिकी बात हो सकती है, पर धर्मकी बात नहीं है और मोक्षकी बात तो है ही नहीं। जो आपके साथ बुराई करता है, वह वास्तवमें आपकी भलाई करता है; क्योंकि वह आपके पापोंको नष्ट करता है। आपका कोई-न-कोई पाप रहनेसे ही वह बुराई करता है। **आपके पाप न हों और दूसरा आपका बुरा कर दे—ऐसा सम्भव ही नहीं है।** अगर आपका बुरा होनेवाला होगा तो वह होगा ही, चाहे उसमें कोई निमित्त हो जाय। होनहारको कोई टाल नहीं सकता—

**होतब होत बड़ो बली, ताको अटल विचार।**

**किण मानी मानी नहीं, होनहार से हार॥**

इसलिये आप तो अपने पापोंका फल भोगते हैं, पर दूसरा उसमें निमित्त बन जाता है और मुफ्तमें ही पापका

भागी हो जाता है। इसलिये उसपर दया आनी चाहिये। इसी तरह आप किसीका बुरा करते हैं तो नया पाप करते हैं, पर दूसरेका बुरा तभी होगा, जब उसके प्रारब्धमें (होनेवाला) होगा। दूसरेका बुरा हो जाय—यह आपके हाथकी बात नहीं है। तात्पर्य है कि दूसरेका बुरा होगा या नहीं होगा—इसमें सन्देह है, पर आपका बुरा जरूर होगा—इसमें सन्देह नहीं है।

अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं, परमात्माकी प्राप्ति चाहते हैं तो किसीका बुरा करो मत, किसीको बुरा समझो मत और किसीका बुरा चाहो मत।

आपके मनमें दूसरेको दुःख देनेकी जो नीयत पैदा होती है, वह पापसे भी ज्यादा खराब है! वह पापका बीज है, पापकी जड़ है। एक बीजमें कई मीलौतकका जंगल निहित रहता है !

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—पहले भूलसे गर्भपात करा लिया हो तो उसका क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये?

**स्वामीजी**—पति-पत्नी दोनों एक वर्षतक रोजाना सवा लाख नामजप करें। तीन वर्षतक करें तो बहुत बढ़िया है, पर कम-से-कम एक वर्षतक तो करें ही। कलकत्तेमें एक माई भिक्षाके लिये रो पड़ी कि स्वामीजी, आप भिक्षा ले लो, तो मैंने रोजाना सवा लाख नामजप एक वर्षतक करनेको कहा। उसने वैसा ही किया। तब मैंने उसकी भिक्षा ले ली।

पाप करते समय जितनी खुशी हुई है, उससे डेढ़-दो गुना अधिक दुःख (पश्चात्ताप) हो जाय तो उससे पाप मिट जायगा। जैसे, बालकने गुस्सेमें आकर तोड़-फोड़ कर दी, पर जब माँ उसके पास आती है और वह जोरसे रोने लग जाय कि 'माँ, अब आगेसे मैं ऐसा नहीं करूँगा', तो माँमें है ताकत कि उसे मारे? क्या भगवान्में माँ-जितनी दया भी नहीं है?

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**गुरु बनना बड़ा भारी अपराध है, मामूली अपराध नहीं।** भगवान्की तरफ जाते हुएको रोककर अपनी तरफ खींच लेना, अपना चेला बना लेना कितना बड़ा अपराध है! अगर आपमें उद्धार करनेकी ताकत नहीं है तो चेला बनाना ठीक है क्या? दत्तात्रेयजीके चौबीस गुरु थे, पर गुरुजीसे पूछा जाय कि दत्तात्रेय आपका चेला है? तो क्या वे बता देंगे? आप जिनको गुरु बनाते हो, उनके बारेमें क्या आप जानते हो कि वे जीवन्मुक्त हैं, तत्त्वज्ञ हैं, भगवत्प्रेमी हैं? क्या गुरुके बिना शिक्षा देनेवाला नहीं है क्या? क्या सब आदमी मर गये, पुस्तकें नष्ट हो गयीं? आपको गुरुसे कितनी शिक्षा मिली है और दूसरोंसे कितनी शिक्षा मिली है, इसपर विचार करो तो मालूम होगा कि गुरुकी अपेक्षा दूसरोंसे ज्यादा शिक्षा मिली है। आपकी सर्वप्रथम गुरु माँ है। खाना-पीना, चलना-फिरना आदि सब माँ सिखाती है। उस माँका निरादर करते हो और गुरुका आदर करते हो, यह बड़ा भारी अपराध करते हो।

**श्रोता**—गुरु अपराधी कैसे हुआ?

**स्वामीजी**—रामायणमें आया है—

**हरइ सिष्य धन सोक न हरई । सो गुर घोर नरक महुँ परई ॥**

(मानस, उत्तर.९९/४)

आपने गुरु बनाया है तो आपको शोक होता है कि नहीं? बताओ। आपमेंसे एक भी आदमी बताओ कि क्या आपका शोक दूर हो गया? जो गुरु उद्धार करनेकी, भगवान्की प्राप्ति करानेकी सामर्थ्य रखता हो, उसका मैं चेला बननेके लिये तैयार हूँ! उसका चेला बनकर मैं बड़ी खुशी मनाऊँगा, और लोगोंमें भी उसका प्रचार करूँगा।

कइयोंको उसका चेला बनाऊंगा।

आप चाहो तो भले ही मुझे गुरु मान लो, पर अपना सम्बन्ध केवल भगवान्से ही मानो और मेरेसे कभी मिलो मत!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**अगर आप अपना कल्याण चाहते हो तो केवल भगवान्के साथ सम्बन्ध जोड़ो।** दूसरा कोई भी सम्बन्ध कल्याण करनेवाला नहीं है। सन्त-महात्मा भी भगवान्के साथ ही सम्बन्ध जोड़ते हैं। माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई-भौजाई और भतीजे—इतना सम्बन्ध खास कुटुम्ब है। इनमें भी आप भगवान्को ही देखो। भगवान्का सम्बन्ध सदासे है और सदा रहनेवाला है। आप स्वीकार करें या न करें, मानें या न मानें, आप सदासे भगवान्के ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जीवमात्रका भगवान्के साथ स्वतः सम्बन्ध है—‘ममैवांशो जीवलोके’ (गीता १५/७)। आप भगवान्से अलग नहीं हो सकते। भगवान्में भी यह ताकत नहीं कि वे आपसे अलग हो जायँ!

आप भगवान्की वस्तु (संसार) को तो अपना मानते हैं, पर भगवान्को अपना नहीं मानते, यही भूल है। **सेवा किसीकी भी कर दो, पर सम्बन्ध केवल भगवान्के साथ जोड़ो।** पहले सन्त-महात्मा भी भगवान्के साथ सम्बन्ध जोड़नेके लिये ही चेला बनाते थे; क्योंकि मनुष्योंकी सन्त-महात्माओंपर श्रद्धा होती है। सन्त-महात्मा कहते थे कि तुम भगवान्के हो गये, तो उनके मनमें भगवान्की बात बैठ जाती थी।

आप माता-पिताके लिये सपूत बेटे बन जाओ, पर माता-पिताको अपने लिये मत मानो। अपने लिये किसीको भी अपना मत मानो। गुरु बनाया हो तो उनको भेंट चढ़ा दो, पर सम्बन्ध मत जोड़ो। भेंट देकर पिण्ड छुड़ाओ, और अपनेको भगवान्का ही मानो। मीराबाईकी एक ही बात आप मान लो—‘मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई’। जो अपना नहीं है, उसको अपना मान लिया—यही मूल भूल है। जब शरीर भी आपका नहीं है, फिर गुरु, माता, पिता आदि आपके कैसे हुए? माता-पिताको आपने नहीं बनाया है, पर गुरुको आपने बनाया है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अपने स्वार्थका त्याग करके दूसरोंके हितके लिये कर्म करनेसे ‘कर्मयोग’ होता है। स्वार्थबुद्धि न रखनेवालेका स्वार्थ सुगमतासे सिद्ध होता है। सबका हित चाहनेवालेका हित स्वतः होता है। सबको सुखी कर देना हाथकी बात नहीं है, पर हमारा भाव सबके सुखका, हितका ही होना चाहिये—‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’, ‘सर्वभूतहिते रताः’ (गीता ५/२५; १२/४)। सबके हितके भाववालेकी उन्नति स्वतः होती है। **सबका हित चाहनेवाला घर बैठे महात्मा हो जाता है।**

**अनुचित कर्म करनेसे प्रकृति कुपित होती है। प्रकृति बहुत बलवान् है। वह कुपित हो जाय तो मनुष्य उसका सामना नहीं कर सकता।**

अनुचित कर्म करनेवालेके चित्तमें शान्ति, निर्भयता नहीं रहती। रावणके नामसे त्रिलोकी डरती थी। देवता भी उसके डरसे काँपते थे। पर वही रावण जब सीताजीकी चोरी करने जाता है, तब उसको भी डर लगता है। यदि मनुष्य संसारके, भगवान्के, गुरुजनोंके विरुद्ध काम न करे तो वह सदा निर्भय रहता है। कर्मयोगीको भय नहीं लगता। जिसके हृदयमें सबके हितका भाव है, उसको भय नहीं होता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मैं दो चीजोंके लिये विशेष काम करता हूँ—अच्छी (कल्याणकारी) पुस्तकोंका प्रचार और गायोंकी रक्षा। वर्तमानमें हिन्दुओंपर और गायोंपर बड़ी आफत आ रही है। स्वराज्यप्राप्तिसे पहले नेतालोगोंने यह बात कही थी

कि स्वराज्य मिलते ही सबसे पहला काम गोवधको बन्द करना होगा। ऐसे व्याख्यान मैंने सुने हैं। परन्तु स्वराज्यप्राप्तिके बाद गोवध बन्द होना दूर रहा, उल्टे सैंकड़ोंगुना अधिक गोवध होना शुरू हो गया !

गीतामें काम, क्रोध और लोभ—तीनोंको नरकका दरवाजा बताया है। लोभके कारण बड़ी संख्यामें गायोंकी हत्या हो रही है। गोवध करनेसे जो लाभ दीखता है, वह कितने दिन चलेगा—इसपर विचार ही नहीं करते। अगर गोवध न करके गायोंका पालन किया जाय तो विशेष लाभ होगा। परन्तु सुने कौन?

गोवध और परिवार-नियोजन—इन दोनोंसे जो नुकसान हुआ है, उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। लोग कहते हैं कि जनसंख्या कम करो, नहीं तो अन्न नहीं मिलेगा। पर मैं कहता हूँ कि परिवार-नियोजनके फलस्वरूप अन्न मिलना तो दूर रहा, पानी भी नहीं मिलेगा!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जो परिस्थिति आपको प्राप्त है, उसका सदुपयोग करो तो आपकी अवश्य उन्नति होगी ही, यह नियम है। अगर उसका दुरुपयोग किया जाय तो आपका अवश्य पतन होगा ही, यह नियम है। सदुपयोग-दुरुपयोग करना आपके हाथकी बात है। **सदुपयोग होता है 'त्याग' से और दुरुपयोग होता है 'राग' से।**

संसारका सुख भोगनेके लायक नहीं है। **संसारका सुख तो देने-ही-देनेके लिये है, लेनेके लिये है ही नहीं।** जहाँ सुख भोगना शुरू किया कि पतन शुरू हो गया। संसारके सुख जहरके लड्डू हैं! सुखके लोभीका कोई आदर नहीं करता। परन्तु जिसमें सुख लेनेकी इच्छा ही नहीं है, वह कोई क्यों न हो, उसकी महिमा हो जायगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

साधन कौन करता है? विचारपूर्वक देखें तो साधन वही करता है, जो बदलता नहीं। शरीर साधन नहीं करता; क्योंकि वह बदलता रहता है। अतः **साधक शरीर नहीं होता।** कल्याण स्वयंका होता है, शरीरका नहीं। शरीर तो यहीं रह जाता है। अपना कल्याण अथवा मुक्ति स्वयं चाहता है, शरीर नहीं चाहता। परमधाम (गोलोक, साकेत आदि) में भी स्वयं जाता है, शरीर नहीं जाता। इसलिये साधन करनेवालेको अपनेको शरीर नहीं मानना चाहिये। तभी भगवान्ने कहा है—**‘देहेऽस्मिन्युरुषः परः’** (गीता १३/२२) ‘यह इस देहमें रहता हुआ भी देहसे पर अर्थात् सर्वथा सम्बन्ध-रहित ही है।’

यह स्थूलशरीर न तो स्वप्नमें काम आता है, न सुषुप्तिमें। स्थूलशरीर ज्यों-का-त्यों पड़ा रहता है। इसी तरह आपके पास लाखों-करोड़ों रुपये पड़े हैं, पर जब आप उनको काममें लेते हो, तब तो वे रुपये होते हैं; परन्तु जब उनको आप काममें नहीं लेते, तब रुपयोंमें और रद्दीमें क्या फर्क है? काममें नहीं लें तो सोनेमें और पत्थरमें क्या फर्क है? फर्क है तो यह है कि सोनेमें तो राज्यका, चोर-डाकुओंका, कुटुम्बियोंका डर लगेगा, पर पत्थरमें डर नहीं लगेगा। सिवाय भयके सोना या रुपया क्या काम आया? जब कभी रुपये काम आयेंगे, खर्च करनेपर ही काम आयेंगे। इससे सिद्ध हुआ कि आवश्यकता पड़नेपर कंजूसी नहीं करनी चाहिये।

साधन करनेवाला अपनी मुक्ति चाहता है, शरीरकी मुक्ति नहीं चाहता। इसलिये **साधकको कम-से-कम इतना मान लेना चाहिये कि मैं शरीर नहीं हूँ। वास्तवमें असली साधक तभी होता है, जब वह अपनेको शरीर नहीं मानता। ज्यों-ज्यों शरीरमें अपनापन कम होगा, त्यों-त्यों शोक कम होगा, काम-क्रोध-लोभ कम होंगे।**

**श्रोता—**खेचरी मुद्रासे क्या होता है?

**स्वामीजी—**खेचरी मुद्रासे भोग होता है, योग नहीं होता। इससे कल्याण नहीं होता। **कल्याण तभी होता है, जब उद्देश्य कल्याणका होता है।** उद्देश्य भोगका हो तो योग कैसे हो जायगा? कल्याणका उद्देश्य

हो तो गृहस्थमें रहते हुए भी कल्याण हो जायगा। कल्याणमें गृहस्थ या साधुका, स्त्री या पुरुषका भेद नहीं है, प्रत्युत भावका, उद्देश्यका भेद है। साधु होनेमें इतना फर्क है कि बहुत आफत मिट जाती है; न स्त्री है, न बेटा-बेटी है, कुछ नहीं है, हरदम भजन करो!!

**योगदर्शनका विभूतिपाद भोग ही है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अपना असली काम किये बिना आदमीको सन्तोष नहीं होता, शान्ति नहीं मिलती, आनन्द नहीं मिलता। जैसे प्यासेको जल पीनेसे, भूखेको भोजन करनेसे बड़ी शान्ति मिलती है, ऐसे ही अपना उद्धार करनेसे बड़ी शान्ति मिलती है; जीते हुए भी शान्ति, मरनेपर भी शान्ति। कितनी ही धन-सम्पत्ति हो जाय, मान-बड़ाई हो जाय, संसारमें आदर हो जाय, पर जबतक अपना कल्याण नहीं कर लेता, तबतक शान्ति नहीं मिलती। शान्तिका मूल परमात्मा हैं। सच्चे हृदयसे भगवान्में लग जाओ तो महान् सन्तोष, शान्ति मिलेगी।

उत्तराखण्डमें कई सन्त-महात्मा बैठे भजन करते हैं, जिनका अपनेको पता ही नहीं है। नर-नारायण ऋषि भी हिमालयमें तपस्या करते हैं, पर उनके कारण शान्ति हमलोगोंको मिलती है। जिनके पासमें कुछ भी नहीं है, पर हृदयमें शान्ति है, ऐसे त्यागी महात्माओंके पास बैठकर लखपति-करोड़पति आदमियोंको भी शान्ति मिलती है। जिसके भीतर कोई चाहना नहीं है, उसको दुःख देनेकी ताकत किसीमें भी नहीं है।

- आपके जैसे हम नहीं बन सकते, पर आप सब हमारे जैसे बन सकते हैं! त्यागमें सब स्वतन्त्र हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**यदि कोई ईसाई या मुसलमान हिन्दू बनना चाहे तो बन सकता है क्या?

**स्वामीजी—**सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) बहुत ज्यादा छुआछूत रखते थे। वे टोंटीका पानी भी नहीं पीते थे। पर उन्होंने भी यह कहा था कि अगर किसी हिन्दूको जबर्दस्ती मुसलमान बना दिया हो, गोमांस खिला दिया हो तो भी उसका धर्म भ्रष्ट नहीं हुआ, अगर वह स्वयं सहमत नहीं है तो। अगर वह वापिस हिन्दू बन जाय तो मैं उसके साथ बैठकर भोजन कर सकता हूँ।

जिनका जन्म ईसाई या मुसलमानके घर हुआ है, वे भी हिन्दूधर्ममें आ सकते हैं, पर उनसे रोटी और बेटीका व्यवहार नहीं होगा।

चाहे लाखों जातियाँ हो जायँ, इससे फर्क नहीं पड़ता। फर्क पड़ता है भीतरके राग-द्वेषसे। आपकी जाति कोई हो, इससे फर्क नहीं पड़ता, प्रत्युत आप हमें सुहाते नहीं, इससे फर्क पड़ता है। **लड़ाई विभिन्न जातियोंमें नहीं होती, प्रत्युत एक जातिमें होती है।** क्या कभी ब्राह्मणों और चमारोंमें लड़ाई हुई है? महाभारतका युद्ध क्या जातिके कारण हुआ है? गहरा विचार करें। लड़ाई वहाँ होती है, जहाँ दोनों पक्षोंका एक ही जगह स्वार्थ हो, एक ही जीविका हो। परन्तु आपकी जीविका अलग हो, मेरी जीविका अलग हो तो लड़ाई क्यों होगी? दूसरेके स्वार्थमें हम बाधा देंगे, तब लड़ाई होगी। अतः लड़ाई होनेमें जाति कारण नहीं है, प्रत्युत स्वार्थ कारण है। आज जो सबमें एकता करते हैं, यह लड़ाईका बड़ा भारी कारण है। मैंने इसपर खूब विचार किया है।

**तत्त्वज्ञान, जीवन्मुक्ति होनेपर भी व्यवहार अलग-अलग होते हैं।** तत्त्वज्ञान होनेपर व्यवहारमें भिन्नता नहीं रहतीयह बात है ही नहीं। ऐसी बेसमझीकी बात किसी ग्रन्थमें आती ही नहीं। दो तत्त्वज्ञानियोंमें भी व्यवहार भिन्न-भिन्न होते हैं। तत्त्वज्ञान होनेपर भी ब्राह्मण हरेकका बनाया हुआ नहीं खायेगा; क्योंकि उसका प्रवाह वैसा ही है। वह उस आदमीको खराब नहीं समझेगा, घृणा नहीं करेगा, वैर नहीं करेगा, पर खान-पान एक नहीं करेगा।

- हम आध्यात्मिक उन्नति भले ही पूरी न कर सकें, पर कम-से-कम उद्देश्य तो परमात्मप्राप्तिका होना

चाहिये। जैसे, आपका उद्देश्य धन कमानेका रहता है, फिर धन चाहे मिले या न मिले।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

प्रत्येक कार्य करनेसे पहले भगवान्को याद करना चाहिये। कोई भी पत्र लिखें तो पहले सबसे ऊपर भगवान्का नाम लिखें। **कोई भी काम करें, पहले भगवान्को याद करें—यह हमारी संस्कृतिकी खास बात है।** मैंने पढ़ना आरम्भ किया तो सबसे पहले 'श्रीरामजी' लिखना सीखा, इसके बादमें वर्णमाला सीखी। अगर आप आध्यात्मिक उन्नति चाहते हैं तो हरेक कामसे पहले भगवान्को याद करें।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**जबतक समस्त पाप नष्ट नहीं होंगे, तबतक भगवान् नहीं मिलेंगे; अतः समस्त पाप किस उपायसे जल्दी नष्ट होंगे?

**स्वामीजी—**आपने बात उत्तम लिखी है और मैं आपकी बातका आदर करता हूँ। परन्तु मेरा निवेदन है कि 'जबतक समस्त पाप नष्ट नहीं होंगे, तबतक भगवान् नहीं मिलेंगे'—यह भाव आप बिल्कुल मत रखें। अगर आपकी तीव्र उत्कण्ठा है तो भगवान् मिल जायँगे, चाहे आप कितने ही पापी हों। समस्त पाप नष्ट होंगे, तब भगवान् मिलेंगे—यह भाव आप भीतरसे निकाल दें। सच्ची बात यह है कि भगवान्के मिलनेसे सब पाप नष्ट हो जायँगे।

अगर भगवान् इतने कमजोर हैं कि आपके पापोंसे अटक जायँ तो वे मिलकर क्या निहाल करेंगे? पाप क्या इतने बलवान् हैं कि भगवान्को रोक दें? भगवान्को याद करनेमात्रसे पाप भस्म हो जाते हैं, वे पाप क्या भगवान्को अटका सकते हैं? भगवान् कहते हैं—

**अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।**

**सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥**

(गीता ४/३६)

'अगर तू सब पापियोंसे भी अधिक पापी है, तो भी तू ज्ञानरूपी नौकाके द्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप-समुद्रसे अच्छी तरह तर जायगा।'

**अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।**

**साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥**

(गीता ९/३०)

'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्यभक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।'

जैसे आपने पैसोंको मुख्य मान रखा है कि बिना पैसोंके कुछ नहीं होता, इससे भी ज्यादा आप भगवान्को मुख्य मान लें कि बिना भगवान्के कुछ नहीं होता। आपका काम है भगवान्की चाहना बढ़ाना। चाहना न बढ़ा सको तो भगवान्से माँगो। आपमें जो कमजोरी है, वह भगवान् दूर करेंगे। जैसे ज्यादा मैले कपड़ोंको धोनेमें धोबीको ज्यादा आनन्द आता है, ऐसे ही ज्यादा पापी व्यक्तिको निर्मल करनेमें भगवान्को ज्यादा आनन्द आता है। इसलिये आप पापोंसे डरो मत और भगवान्का भजन शुरू कर दो। **भगवान् भजनको देखते हैं, पापको नहीं—**

**रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥**

(मानस, बाल.२९/३)



भगवान्‌के बड़ी भारी पोल है, पता नहीं है आपको! अब याद कर लो। सच्चे हृदयसे पुकारो—‘हे नाथ! हे नाथ!!’ ‘ना.....थ’—‘थ’ कहते ही आ जायँगे!! भगवान्‌ बड़े लोभी हैं। लोभी आदमीको पैसा मिल जाय तो वह कसकर पकड़ लेता है! भगवान्‌ भी चाहते हैं कि कोई भजन करनेवाला मिल जाय। आजकल भगवान्‌के दरिद्रता बहुत है; क्योंकि भजन करनेवाले कम हो गये, मिलते नहीं! इसलिये अभी मौका बहुत बढ़िया आया हुआ है! थोड़े भजनसे ही भगवान्‌ प्रसन्न हो जाते हैं।

आज भगवन्नाम मिलता है सत्ययुगके भावसे और बिकता है कलियुगके भावसे। अब धनी बननेमें क्या देरी लगे?

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

संसारमें दो ही चीजें देखनेमें आती हैं—क्षर (जड़, नाशवान्‌, शरीर) और अक्षर (चेतन, अविनाशी, जीवात्मा)। ये दोनों ही लौकिक हैं—‘द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च’ (गीता १५/१६)। इन दोनोंको लेकर दो निष्ठाएँ हैं—कर्मयोग और ज्ञानयोग—‘लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा’ (गीता ३/३)। शरीर और उनमें रहनेवाला जीवात्मा—इन दोके सिवाय संसारमें और कोई दीखता नहीं। संसारमात्रमें, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंमें एक भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो जीवात्माको तृप्त कर सके। चेतन (अविनाशी) की तृप्ति जड़ (नाशवान्‌) से हो सकती ही नहीं। परन्तु जड़ और चेतनसे भी उत्तम एक तीसरी चीज है, वह है ‘परमात्मा’—‘उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः’ (गीता १५/१)। वह परमात्मा अलौकिक है तथा संसारमें देखनेमें नहीं आता। इसलिये नास्तिक सम्प्रदाय उसको नहीं मानते। परन्तु जीवात्माकी तृप्ति परमात्मासे ही हो सकती है—यह खास बात आपको बतानी है।

**श्रोता**—क्या अलौकिक परमात्माको साकाररूपमें इस युगमें देख सकते हैं?

**स्वामीजी**—बिल्कुल देख सकते हैं। केवल देख ही नहीं सकते, उनके साथ खेल भी सकते हैं!!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—स्वभावमें दोष कैसे दूर हो?

**स्वामीजी**—जब दोषका रहना असह्य हो जायगा, तब दोष मिट जायगा। दोष कैसे मिटे—इसके लिये व्याकुल हो जाओ; न भूख लगे, न प्यास लगे, न नींद आये, न चैन पड़े, तो वह दोष अवश्य दूर हो जायगा। जिस गुणके न आनेका दुःख हो जाय, वह आ जायगा और जिस अवगुणके न जानेका दुःख हो जायगा, वह चला जायगा, यह नियम है।

**श्रोता**—व्यवहार कैसे सुधरे?

**स्वामीजी**—अपने अभिमान और स्वार्थका त्याग करके दूसरेका हित करो तो व्यवहार भी सुधर जायगा, स्वभाव भी सुधर जायगा।

● हम जैसा संग करते हैं, वैसा असर पड़ता है, ऐसे ही हम जिस उपास्यदेवकी उपासना करते हैं, उस उपास्यदेवके गुण हमारेमें स्वतः आ जाते हैं। जैसे, नींबू अथवा मिर्चीके अचारका चिन्तन करनेसे मुँहमें पानी आ जाता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजकी वाणीमें बड़ी नम्रता, सरलता, अलौकिकता, विलक्षणता है, जिसे देखकर मन चकित हो जाता है। उनकी वाणी (श्रीरामचरितमानस) हमलोगोंको पढ़नेको मिली है, यह भगवान्‌की कोई विशेष कृपा है।

भगवान्‌ने हमारेपर जितनी कृपा की है, उतनी हमारे माननेमें नहीं आ सकती। उनकी कृपासे

हमें मनुष्यशरीर मिला है, सत्संगका मौका मिला है, गोस्वामीजी महाराजकी वाणी पढ़नेको मिली है; एक-एक बातमें उनकी विलक्षण कृपा है। इन चीजोंको क्या कोई अपने बलसे प्राप्त कर सकता है? उनकी कृपाके बिना मनुष्य कल्याणके रास्तेपर पाँव नहीं रख सकता। कलियुगमें जन्म लेनेवाले हमलोग कहाँ इसके अधिकारी हैं ! परन्तु भगवान्की कृपा होती है तो वह अधिकारी नहीं देखती। अगर वह अधिकारी-अनधिकारी, पात्र-कुपात्र देखे तो हमारा कल्याण नहीं हो सकता।

भगवान्की बात भगवान्की कृपासे ही समझमें आती है, अपने उद्योगसे नहीं। जो भगवान्की कृपाको जान लेता है, वह सब प्रकारसे भगवान्का ही भजन करता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आपके पास बहुत कीमती समय है, पर उस कीमती समयका आप आदर नहीं कर रहे हैं। जिस समयका सदुपयोग करके आप भगवान्की प्राप्ति कर सकते हैं, उस समयको मदिरा, मांस-मछली-अण्डे, पान-मसाला, बीड़ी-सिगरेट, चाय आदि दुर्व्यसनोंमें लगाना कितनी बड़ी हानिकी बात है! सौंफ-सुपारीकी भी आदत नहीं होनी चाहिये। पवित्र अन्न और पवित्र जल—इन दो चीजोंसे अच्छी तरहसे आपका जीवन-निर्वाह हो सकता है। व्यसनोंका सेवन करनेसे, भोगोंमें लगनेसे पराधीनता होती है, परिश्रम होता है, स्वास्थ्य खराब होता है, उम्र कम होती है और आगे चलकर नरक होते हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यशरीर बड़ा दुर्लभ है और भगवान्की कृपासे प्राप्त हुआ है। भगवान्ने मनुष्योंको अपनेमेंसे प्रकट किया है, फिर उनका उनका जन्म-मरण कैसे हो सकता है? परन्तु भगवान्से विमुख होकर अपनी मर्यादाका त्याग करनेसे जन्म-मरण शुरू हो गया। जो भगवान्के सम्मुख ही रहे, वे भक्त जन्म-मरणमें नहीं पड़े। हम भगवान्के अंश हैं। वे हमारा खास स्थान हैं। अपने असली स्थानसे हटनेके कारण ही हम दुःख पा रहे हैं, भटक रहे हैं। अगर उनसे विमुख न होते तो महान् आनन्दमें रहते। बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ आनेपर भी मनमें आनन्द रहता। भगवान् आनन्दघन हैं। इसलिये उनके सम्मुख होते ही आनन्द आता है।

संसारके विषयमें निषेधात्मक साधन और परमात्माके विषयमें विध्यात्मक साधन बढ़िया है; क्योंकि संसारसे ऊँचा उठना है और परमात्माको प्राप्त करना है। जिससे ऊँचा उठना है, उस संसारकी सेवा करनी है; उसको देना है, लेना कुछ नहीं है। जिस परमात्माको प्राप्त करना है, उसे अपने-आपको देना है।

● रामायणके एक सौ आठ पाठ करनेसे भगवान्के साथ भक्तका सम्बन्ध जुड़ जाता है। रामायणका नवाह पाठ करनेवाले विद्यार्थी फेल नहीं होते—ऐसा मैंने देखा है। **भगवान्का चिन्तन करनेवाले किसी भी मार्गमें जायँ, उनको सफलता मिलती है।** कारण कि भगवान्को याद करनेसे सद्बुद्धि पैदा होती है, सद्बुद्धि होनेसे बुद्धि विकसित होती है और बुद्धि विकसित होनेसे वे फेल नहीं होते।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

त्यागकी बड़ी महिमा है। मनुष्य रागसे बँधता है और त्यागसे मुक्त होता है। भोग और संग्रह—ये दो बड़ी विलक्षण बीमारियाँ हैं। इनसे ही पतन हो रहा है। न्याययुक्त भोग और संग्रह भी बाँधनेवाले हैं, फिर अन्याययुक्त हों तो महान् बन्धन होता ही है।

चीज उतनी ही मिलेगी, जितनी मिलनेवाली है, और काममें उतनी ही आयेगी, जितनी काममें आनेवाली है। अन्यायपूर्वक रुपये कमानेसे बड़ा भारी पतन होता है। वे रुपये दूसरोंके काम आते हैं, पर पाप आपके पल्ले बँधता है। अन्यायपूर्वक इकट्ठे किये गये सब-के-सब रुपयोंको आप उम्रभरमें काममें नहीं ले सकते; और उनके लिये जो पाप किये हैं, उनको भोगे बिना आप पिण्ड छुड़ा नहीं सकते। रुपये आपके

## काम नहीं आयेगे, पर पाप पूरा आपके काम आयेगा।

जब मनुष्यका पाप करनेका स्वभाव बन जाता है, तब वह पापको पाप समझता नहीं। उसकी बुद्धि ऐसी बन जाती है कि उसको पाप दीखता ही नहीं। डॉक्टरलोग इस सिद्धान्तको मानते हैं कि वीर्यमें जो जीव होता है, वही गर्भाशयमें जाकर शिशु बनता है, फिर भी वे गर्भपातको जीव-हिंसा नहीं मानते—यह बड़े भारी आश्चर्यकी बात है। गर्भपातसे बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है। गर्भस्थ कन्याकी हत्यामें कई कारण हैं, जिसमें मुख्य कारण दहेज-प्रथा है। दहेज-प्रथाके मूलमें यह बात है कि दूसरेका धन हमारे पास आ जाय। आपका पुत्र हो गया, इसलिये कन्यादान लेना आपकी परवशता है, पर कन्याके साथ धनकी इच्छा करना बड़ा भारी पाप है। आज कन्या गौण हो गयी है और पैसा मुख्य हो गया है। आपके भाग्यमें जितना लिखा है, उतना पैसा आ जायगा। उस पैसेको भी आप पूरा भोग सकोगे नहीं। **पूरे पैसे काममें ले सकोगे नहीं और पापसे बच सकोगे नहीं।** उन पैसोंको छोड़कर मरना पड़ेगा। अधिक छोड़कर मरो अथवा कम छोड़कर मरो, फर्क क्या पड़ा?

आप ऐसे पाप करेंगे तो आपके देखादेखी और लोग भी पाप करेंगे। जैसे गीता पढ़नेवाला गीताका प्रचार करता है, बीड़ी-सिगरेट पीनेवाला बीड़ी-सिगरेटका प्रचार करता है, ऐसे ही पाप करनेवाला पापका प्रचार करता है। उस प्रचारमें आप सहायक होंगे, तो उसका पाप भी आपको लगेगा। इसलिये आप भी पापसे बचो और दूसरोंको भी बचाओ। दूसरेके धनकी इच्छा रखनेवाले चोर-डाकू होते हैं। पराया धन जहरसे भी भारी जहर है—**‘धनु पराव विष तें विष भारी’** (मानस, अयोध्या. १३०/३)।

दहेज माँगना लड़केकी बिक्री करना है। भगवान् ने आपको पुत्र दिया है तो बिक्री करनेके लिये नहीं दिया है। अपनी सन्तानकी बिक्री करना कितना बड़ा पाप है! आपसे प्रार्थना है कि आप इस घोर पापसे, अन्यायसे बचो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मैं बड़े दुःखी मनसे आपको कह रहा हूँ कि आप बिना विचार किये जो काम किये जा रहे हो, इससे परिणाममें बड़ी दुर्दशा होगी, बड़ा भारी दुःख पाना पड़ेगा। आप **‘दवा’ के नामपर चाहे जो खिला दो और ‘व्यापार’ के नामपर चाहे जो करा लो—यह अच्छी बात नहीं है। इससे बड़ी दुर्दशा होगी।** यह मनुष्यशरीर मनमाना आचरण करनेके लिये नहीं मिला है। अभी जो चाल चल रहे हैं, उससे देशकी बड़ी दुर्दशा होगी, विशेषरूपसे हिन्दू-समुदायकी तो ज्यादा ही दुर्दशा होगी। आप जो काम कर रहे हैं, वह किस शास्त्र, धर्म, महात्माके कहनेसे कर रहे हैं? मनमाने आचरणका परिणाम बड़ा बुरा होता है। **काम करोगे अपने मनसे, पर दण्ड भोगना पड़ेगा बिना मनके।** स्वयं सोचते नहीं, दूसरेकी मानते नहीं, फिर क्या दशा होगी? अभी आप स्वतन्त्र हो, फिर आप परतन्त्र हो जाओगे। हाथोंकी जगह पैर आ जायेंगे अर्थात् दो हाथ और दो पैरकी जगह चार पैर हो जायेंगे! ये हाथ फिर नहीं मिलेंगे। इसलिये पाप-पुण्यका, कर्तव्य-अकर्तव्यका, ठीक-बेठीकका विचार करो। कलियुग आया है तो उससे बचनेकी चेष्टा करो, उसमें बहो मत।

पहले स्वार्थबुद्धिसे पाप किया करते थे, आज बिना स्वार्थबुद्धिके पापोंमें रुचि हो रही है। क्या दशा होगी! मनमाना व्यापार, मनमाना खानपान, मनमानी भाषा, मनमानी वेशभूषा करनेका नतीजा बहुत खराब होगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**मैंने अनजानपनेमें गुरु बना लिया, पर अब मेरी उनपर श्रद्धा नहीं रही। मुझे डर लगता है कि गुरुको छोड़ दूँगा तो नरकमें जाऊँगा। अब मैं क्या करूँ?

**स्वामीजी—**जब हृदयमें श्रद्धा-विश्वास नहीं है तो गुरुका त्याग करनेमें डरो मत। जब आपके मनमें ऐसी भावना हो गयी, तो फिर उस गुरुको रखनेमें कोई फायदा नहीं है। शास्त्रमें ऐसे गुरुका त्याग कर देनेकी आज्ञा आती है—**‘परित्यागो विधीयते’**। गुरु कैसा ही हो, जब आपकी श्रद्धा नहीं है तो भीतरसे गुरुका त्याग हो

ही गया, अब डरनेकी क्या जरूरत है? आपको पाप लगनेका डर है तो वह पाप मेरेको दे देना! गुरु जबर्दस्ती नहीं बनाये जाते। गुरु तो हृदयकी श्रद्धा होनेपर होता है।

कई गुरु बनते हैं, पर वे गुरु नहीं हैं, प्रत्युत आपके पोताचेला हैं। आपका चेला (दास) है पैसा और पैसेका चेला है वह गुरु। गुरुके मनमें आपसे पैसा (भेंट-पूजा, मान-बड़ाई) लेनेकी है तो वह आपका पोताचेला हुआ, गुरु कैसे हुआ? गुरु वह होता है, जो आपसे कुछ नहीं चाहता, केवल आपका कल्याण चाहता है।

जिनके मनमें सबके उद्धारकी लगन है, वे चाहे एकान्तमें भी बैठे हों, बिना बनाये गुरु हैं। गुरु बनना बड़े खतरेकी बात है। सच्चे सन्त प्रायः गुरु बनते नहीं—ऐसा मैंने सुना है; क्योंकि गुरु बननेसे अपना भी नुकसान है, शिष्यका भी नुकसान है। चेला बना ले और उद्धार न कर सके तो कितना बड़ा धोखा हो जायगा! आजकल हरेक चीज नकली बन रही है तो गुरु भी नकली बन रहे हैं। रामायणमें आया है—

**हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई॥**

(मानस, उत्तर.९९/४)

इसलिये शिष्य न बनकर आप गुरुपर कृपा करो, उसे नरकमें जानेसे रोको!

आप सबसे प्रार्थना कि गुरुके जालमें मत फँसो। आप भगवान्को गुरु मान लो और सच्चे हृदयसे भगवान्में लग जाओ तो आपका उद्धार अवश्य होगा, इसमें सन्देह नहीं है। मैं अपनेपर आपकी बड़ी कृपा मानूँगा!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

सुबह नींद खुलनेसे लेकर रात्रि नींद आनेतक चार-चार, पाँच-पाँच मिनटके बाद कहते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान् सुलभतासे प्राप्त हो जायँगे! आप करके देखो। वृत्ति अच्छी हो या बुरी, भगवान्को भूलो मत। आप 'हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो!' पुकारो, आपका कल्याण होगा.....होगा.....होगा! नहीं हो तो मेरेको दण्ड देना!

भगवान्के सिवाय अवगुणोंसे रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। भगवान् अपने हैं, इसलिये हमारी प्रार्थना सुनते हैं। भगवान्को पुकारनेके सिवाय और कोई उपाय है नहीं। पहले कोई पाप हो गया हो तो उसे बार-बार याद मत करो, प्रत्युत भगवान्से कहकर, पश्चात्तापपूर्वक क्षमा माँगकर फिर छोड़ दो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मुक्ति, कल्याणके लिये हिन्दूधर्ममें जितना प्रयास किया गया है, उतना अन्य किसीने नहीं किया है। इस विषयमें मैंने खूब विचार किया है। **मनुष्यका जल्दी-से-जल्दी और सुगमतापूर्वक कल्याण हो जाय—ऐसे उपायोंकी खोजमें मैं बालकपनसे ही लगा हुआ हूँ।** मुझे अब भी नयी-नयी विलक्षण बातें मिलती हैं। परन्तु आपलोगोंका इस तरफ विचार ही नहीं है, उल्टे जिससे पतन हो जाय, ऐसे कामोंमें आप लगे हुए हैं!

'साधक-संजीवनी' पढ़नेसे बहुत लोगोंको लाभ हुआ है, उनको शान्ति मिली है। मेरे पास कई लोगोंके पत्र आते हैं, कई लोग मिलते हैं और अपना-अपना अनुभव बताते हैं। एक माताजीने बताया कि 'मेरी लड़कीकी शादी थी। शादीमें एक सज्जनने घीका एक कनस्तर चुरा लिया। मुझे पता लगा तो मन बड़ा खराब हुआ कि अब उससे बोलना नहीं, कोई सम्बन्ध रखना नहीं। जब मैंने 'साधक-संजीवनी' पढ़ी तो विचार आया कि चोरी, अन्याय तो उसने किया, हमने तो अन्याय किया नहीं। फिर हम क्यों अपना मन खराब करें? मैंने उसको घरपर बुलाया और भोजन कराया, उसको राजी किया।' इस प्रकार 'साधक-संजीवनी' पढ़नेसे हृदयके भावोंमें परिवर्तन होता है।

व्यापारमें तो नफा और नुकसान दोनों होते हैं, पर सच्चे हृदयसे भगवान्में लग जाओ तो नफा-ही-नफा होता है, नुकसान होता ही नहीं।

अपना कल्याण करना मनुष्यमात्रका कर्तव्य है, किसी एक जाति, वर्ण आदिका नहीं। अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं तो अपना समय क्षणमात्र भी व्यर्थ नष्ट न करें।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

‘पंचामृत’ में सबसे पहली बात है—‘हम भगवान्के ही हैं’। जैसे शरीर माता और पिता—दोनोंका अंश है, ऐसे हम (स्वयं) दोके अंश नहीं हैं, प्रत्युत केवल भगवान्के ही अंश हैं—‘ममैवांशो जीवलोके’ (गीता १५/७)। हममें प्रकृतिका मिश्रण नहीं है। शरीरको हम अपना मानते हैं, पर वास्तवमें शरीर अपना है नहीं, प्रत्युत हमें मिला है। शरीर प्रकृतिका अंश है। शरीरपर हमारा स्वतन्त्र अधिकार नहीं चलता, फिर उसे अपना मानना सिवाय मूर्खताके और क्या है?

दूसरी बात है—‘हम जहाँ भी रहते हैं, भगवान्के ही दरबारमें रहते हैं’। यहाँ जिस घरको हम अपना मानते हैं, उस घरमें रहनेमें क्या हमारी स्वतन्त्रता है? क्या हम सदाके लिये रह सकेंगे?

तीसरी बात है—‘हम जो भी शुभ काम करते हैं, भगवान्का ही काम करते हैं’। आप जो भी काम करो, मनसे भगवान्का काम समझकर करो। अलगसे जप, ध्यान आदि करनेकी जरूरत नहीं।

चौथी बात है—‘शुद्ध-सात्त्विक जो भी पाते हैं, भगवान्का ही प्रसाद पाते हैं’। भगवान्के प्रसादका बड़ा भारी माहात्म्य है। बड़े-बड़े धनी भी प्रसादका कणमात्र पानेके लिये हाथ फैलाते हैं। प्रसाद पानेसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। घरमें जितनी वस्तुएँ हैं, उन सबपर तुलसीदल रखकर भगवान्के अर्पण कर दो। अब भोजन बनेगा तो भगवान्का प्रसाद ही बनेगा।

पाँचवीं बात है—‘भगवान्के दिये प्रसादसे भगवान्के ही जनोंकी सेवा करते हैं’। दूकान आदिमें काम करते हैं तो भगवान्का ही काम करते हैं, और उससे जो पैसा पैदा होता है, वह भगवान्का ही प्रसाद है। उस प्रसादसे भगवान्के ही जनोंका अर्थात् माँ-बाप, स्त्री-पुत्र आदिका पालन करते हैं।

उपर्युक्त ‘पंचामृत’ का सेवन करनेसे आपका जीवन महान् पवित्र हो जायगा, आप सन्त-महात्मा हो जायँगे, जीवन्मुक्त हो जायँगे, परमात्माको प्राप्त हो जायँगे। इसके लिये आपको न कहीं जाना है, न जंगलमें रहना है, न साधु-बाबा बनना है, प्रत्युत जहाँ रहते हैं, वहाँ रहते हुए ही केवल भाव बदलना है। भाव बदलनेसे जीवन बदल जायगा।

वस्तुओं तथा व्यक्तियोंको अपना मानेंगे तो अभिमानरूपी विष चढ़ेगा, पर ‘सब कुछ भगवान्का है और भगवान् मेरे हैं’—ऐसा माननेसे अभिमानरूपी विष नहीं चढ़ेगा; क्योंकि बीचमें भगवान् आ गये!

जैसे मछली जलके शरणमें रहती है; जलके बाहर नहीं रह सकती, मर जाती है, ऐसे ही आप निरन्तर भगवान्के ही शरणमें रहो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

घरमें काम-धन्धा स्वयं करो और सुख-आराम दूसरोंको दो। परिवारमें ‘मैं करूँ, मैं करूँ’—ऐसा भाव होनेसे आदमी ज्यादा हो जायँगे, काम कम हो जायगा। परन्तु ‘तू कर, तू कर’—ऐसा भाव होनेसे आदमी कम हो जायँगे, काम ज्यादा हो जायगा।

जिस घरमें आपसमें प्रेम होता है, उस घरमें लक्ष्मी बढ़ती है। जहाँ आपसमें खटपट होती है, वहाँसे लक्ष्मी विदा हो जाती है। काम खुद करे और वस्तु दूसरेको दे तो आपसमें प्रेम बढ़ेगा; प्रेम बढ़ेगा

तो लक्ष्मी आयेगी। खुद काम करनेसे अहंताका और वस्तु दूसरेको देनेसे ममताका त्याग हो जाता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यजन्म इसलिये मिला है कि बार-बार जन्मना-मरना न पड़े, सदाके लिये दुःख मिट जाय तथा महान् आनन्दकी प्राप्ति हो जाय।

**यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।**

**यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥**

(गीता ६/२२)

‘जिस लाभकी प्राप्ति होनेपर उससे अधिक कोई दूसरा लाभ उसके माननेमें भी नहीं आता और जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता।’

इस महान् आनन्दको जीते-जी प्राप्त कर लें, मरनेके बादका क्या पता? हम इसी जीवनमें परम आनन्दको, परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं। शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो जायें तो पीड़ा हो सकती है, पर दुःख नहीं हो सकता—ऐसा आनन्द हम जीते-जी प्राप्त कर सकते हैं। पीड़ा और दुःखमें फर्क है। पीड़ा तो किसी अंगमें होती है, पर दुःख हृदयमें होता है।

**भोग और संग्रहकी इच्छा सर्वथा मिट जाय तो इस अविनाशी आनन्दकी प्राप्ति हो जायगी।** शरीर-घर-स्त्री-पुत्रका त्याग करनेकी, जंगलमें जानेकी, बाबाजी बननेकी जरूरत नहीं है, प्रत्युत केवल भोग और संग्रहकी इच्छा छोड़नेकी जरूरत है। केवल इस इच्छाको छोड़नेसे काम हो जायगा।

इच्छा करनेसे भोग मिल जायेंगे, रुपये मिल जायेंगे—यह बात बिल्कुल नहीं है। परन्तु इच्छा न करनेपर भी मिलनेवाले भोग मिलेंगे, मिलनेवाले रुपये मिलेंगे। लोग कहते हैं कि हम जो चाहते हैं, वह होता नहीं, तो फिर चाहना करते ही क्यों हो?

इच्छाओंकी सर्वथा पूर्ति देवता, मनुष्य आदि किसीकी भी कभी नहीं हुई। इच्छाकी पूर्ति कर सकते ही नहीं, पर इच्छाका त्याग कर सकते हैं। त्याग करनेमें सब स्वतन्त्र हैं। त्याग किसका करना है? जो कभी पूरी हो सकती ही नहीं, उस इच्छाका त्याग करना है। **इच्छा तो पूरी होगी नहीं कभी, पर त्याग कर दो तो निहाल हो जाओगे अभी!!**

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मान, बड़ाई और आरामूये आठ भोग हैं, जिनको आप कई बार भोग चुके हो। अब कोई नया भोग तो आयेगा नहीं। कोई भोग ऐसा नहीं है, जिसका नमूना आपने न देखा हो। इनसे कभी किसीकी तृप्ति हुई नहीं, हो सकती ही नहीं। इनकी इच्छा छोड़ दो तो आपको कोई कमी नहीं आयेगी। **इच्छा करनेसे वस्तु नहीं मिलती, पर इच्छाका त्याग करनेसे वस्तु जबर्दस्ती आती है। जिस वस्तुकी इच्छा करते हैं, वह वस्तु (धन आदि) आनेसे डरती है, घबराती है। इच्छा करना छोड़ दें तो वस्तु प्रसन्नतासे आती है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**आजकल शहरोंमें परिवारका पालन करना भी समस्या है, फिर गायका पालन कैसे करें?

**स्वामीजी—**विचार कर लें कि यह काम करना है, तब काम होगा। अनुकूलता-प्रतिकूलता देखते रहनेसे काम नहीं होगा। पहले ही हार स्वीकार करनेसे सुगम काम भी कठिन हो जाता है। आवश्यकता आविष्कारकी जननी है। घरमें गायको रखनेका विचार कर लें तो काम हो जायगा।

अगर धर्मका पालन करनेमें सुगमता होती और रुपये ज्यादा मिलते तो कई धर्मात्मा हो जाते। पर धर्मके पालनमें



कुछ कठिनता सहनी पड़ती है। कठिनता सहे बिना धर्मका अनुष्ठान नहीं होता। धर्मका पालन करनेसे निर्वाह हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आजकल भगवान् बहुत सस्ते हैं। परन्तु सत्संग करनेवाले भी सच्चे हृदयसे भगवान्को चाहते नहीं! भगवान् सबको सब कुछ देनेको तैयार हैं, यहाँतक कि अपने-आपको भी देनेको तैयार हैं।

आप कहींसे भी रुपये लगे तो किसीके तो रुपये कम होंगे ही। परन्तु पारमार्थिक धन कितना ही ले लो, किसीके भी कम नहीं होगा; क्योंकि भगवान् सबके लिये पूरे-के-पूरे हैं। सब पूर्ण हो जायँ तो भी भगवान्में किंचिन्मात्र भी कमी नहीं आती।

धनके कारण अपनी इज्जत मानना वास्तवमें खुदकी बेइज्जती है। आप भगवान्के अंश हैं। इसलिये आपकी असली इज्जत भगवान्के साथ सम्बन्ध जोड़नेमें है। भगवान्के साथ सम्बन्ध न जोड़नेसे आप नीचे हो जाते हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**कर्मोंकी आसक्ति कैसे छूटे?

**स्वामीजी—**कर्म और पदार्थ—ये दो चीजें हैं। ये दोनों ही प्रकृतिके हैं। इनके साथ आपका सम्बन्ध नहीं है। आप गहरी रीतिसे विचार करो, इनके साथ सम्बन्ध रखनेसे आपको क्या लाभ है और सम्बन्ध न रखनेसे क्या नुकसान है? लाभ तो किंचिन्मात्र भी नहीं है और नुकसान सब तरहका है। क्रिया और पदार्थ आपके साथ रहेंगे नहीं, आप इनके साथ रहोगे नहीं।

**श्रोता—**अहंकार कैसे समाप्त हो?

**स्वामीजी—**वास्तवमें आप अहंकारसे रहित हो। जाग्रत् और स्वप्नमें आप अहंकार-सहित रहते हो, पर सुषुप्ति, मूर्च्छा और समाधिमें आप अहंकार-रहित रहते हो। अहंकारसे रहित होनेपर ही सुषुप्तिमें आपको शान्ति मिलती है, जिसके बिना आप रह नहीं सकते। सुषुप्तिमें इन्द्रियाँ मनमें, मन बुद्धिमें, बुद्धि अहंकारमें और अहंकार अविद्यामें लीन हो जाता है। आप पदार्थोंके बिना रह सकते हो, माता, पिता, स्त्री, पुत्र, धन आदिके बिना रह सकते हो, पर सुषुप्तिके बिना, अहंकार-रहित हुए बिना आप नहीं रह सकते। आप अहंकारके बिना रह सकते हो, पर अहंकारके सहित आठ पहर रहना भी मुश्किल हो जायगा। यदि आप अहंकारसे रहित न हों तो पागल हो जायँ! गाढ़ नींद आनेके कारण ही आप पागल होनेसे बचे हुए हो। जिसे गाढ़ नींद आती है, वह आदमी स्वस्थ, नीरोग होता है। जिसे गाढ़ नींद नहीं आती, स्वप्न अधिक आते हैं, वह नीरोग नहीं होता।

अहंकारके बिना आप रह सकते हो, पर अहंकार आपके बिना नहीं रह सकता। अहंकारके बिना भी आपका अस्तित्व है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आपमें जितनी-जितनी कामना अधिक होगी, उतना-उतना आप अपना भी नुकसान करोगे और दूसरोंका भी। परन्तु जितनी-जितनी कामना कम होगी, उतनी-उतनी आपको भी शान्ति मिलेगी, दूसरोंको भी।

हमारी आसक्तिके कारण ही भोग-पदार्थ सुन्दर लगते हैं। रुपयोंकी कामना होनेसे ही रुपये अच्छे लगते हैं। कामना न हो तो रुपये अच्छे नहीं लगेंगे। बालकके आगे रुपये रखो तो वह रुपये छोड़कर बताशा ले लेगा; क्योंकि उसमें मिठाईकी कामना है, रुपयोंकी नहीं। आप उसको बेसमझ कह सकते हो, पर वास्तवमें वह बेसमझ नहीं है; क्योंकि बताशा तो उसके काम आयेगा, रुपये उसके क्या काम आयेंगे? कुत्तेके आगे रुपयोंकी थैली रख दो तो

वह उसपर पेशाब करके चला जायगा। कारण कि रुपयोंमें कोई महत्त्व नहीं है। हमने ही उसे महत्त्व दे रखा है। रुपया खुद कोई काम नहीं आता, उसका खर्च ही हमारे अथवा दूसरोंके काम आता है। परन्तु रुपये खर्च करना आपको बुरा लगता है, इकट्ठा करना अच्छा लगता है। यह बुद्धिमानी है क्या? मैं रुपयोंका त्याग करनेको नहीं कहता। रुपयोंका उपार्जन करना, उनकी रक्षा करना, उन्हें अच्छे काममें लगाना, उनका सदुपयोग करना मैं बुरा नहीं समझता। बढ़िया-से-बढ़िया वस्तु भी यदि उपयोगमें न ली जाय तो वह किस कामकी?

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—रामायणमें आया है—‘मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग तप ग्यान बिरागा॥’ (उत्तर.६२/१) और ‘कलिसंतरणोपनिषद्’ में आया है कि ‘हरे राम.....’ का साढ़े तीन करोड़ जप करनेसे परमात्माकी प्राप्ति होती है, तो परमात्मा अनुरागसे मिलते हैं या साढ़े तीन करोड़ नामजपसे?

**स्वामीजी**—परमात्मा अनुराग (प्रेम) से ही मिलते हैं। ऐसे आदमी मेरी जानकारीमें हैं, जिन्होंने चार अरबसे भी अधिक नामजप किया है, पर उनको भगवान्के दर्शन नहीं हुए! कारण कि उनमें दर्शनकी लालसा ही नहीं थी। अतः क्रियामात्रसे भगवान् नहीं मिलते। क्रिया तो मशीनसे भी हो जाती है। परमात्मातक ‘क्रिया’ की पहुँच नहीं है, प्रत्युत ‘भाव’ की पहुँच है। परमात्माकी प्राप्ति भावपूर्वक नामजपसे होती है। भाव हो तो साढ़े तीन करोड़ जपसे पहले ही भगवान्के दर्शन हो जायँगे।

परमात्मा किसी मूल्यसे नहीं मिलते। केवल आपकी चाहना होनी चाहिये। जिसकी एक स्फुरणामात्रसे अनन्त सृष्टियाँ पैदा हो जाती हैं, उस सृष्टिके मूल्यसे परमात्मा कैसे खरीदे जायँगे? वे तो भीतरके भावसे मिलते हैं। आप भगवान्के बिना न रह सकेंगे तो वे आपके बिना नहीं रह सकेंगे—‘ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्’ (गीता ४/११)। विश्वास न हो तो करके देख लो, भगवान् न मिलें तो मुझे जूते मारना!

सर्वत्र परिपूर्ण परमात्माकी प्राप्ति चाहनामात्रसे होती है, एकदम सच्ची बात है। केवल एक चाहना हो, साथमें दूसरी कोई चाहना न हो। परमात्माकी प्राप्ति न घर छोड़नेसे होगी, न घरमें रहनेसे होगी, प्रत्युत भीतरकी चाहनासे होगी। उनकी प्राप्तिके लिये ऊपरकी क्रियाएँ विशेष कामकी नहीं हैं।

भगवान्के समान सुलभ कोई नहीं है और उनके समान दुर्लभ भी कोई नहीं है। वे सुलभताकी आखिरी सीमा हैं और दुर्लभताकी भी आखिरी सीमा हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—परमात्माका ध्यान कैसे किया जाय?

**स्वामीजी**—परमात्मा कण-कणमें परिपूर्ण हैं—इससे बढ़िया कोई ध्यान नहीं है। ‘है’ नामसे परमात्मा ही हैं। दूसरी कोई चीज ‘है’ रूपसे है ही नहीं।

परमात्मा एक हैं, उनके रूप अनेक हैं। आपको किसी एक रूपकी ही उपासना करनी है, जिसमें आपकी रुचि हो। उस एक रूपमें सब आ जायँगे। परमात्मा एक होते हुए भी अनेक हैं और अनेक होते हुए भी एक हैं।

**श्रोता**—हमारे इष्ट रामजी हैं तो क्या उनके साथ गणेश, शिव, हनुमान् आदिकी पूजा कर सकते हैं?

**स्वामीजी**—कर सकते हो, मना कौन करता है? एक इष्टवाला कुत्तेको भी रोटी दे सकता है। पतिव्रता एककी होती है, पर सास, ससुर, जेठ आदिको भी भोजन कराती है। सबकी पूजा करो, सबकी सेवा करो, सबको आदर दो, इससे कोई बाधा नहीं लगती। बाधा लगती है अपनी चाहना होनेसे। अतः सेवा सबकी करो, पर किसीसे भी कुछ चाहो मत।

**श्रोता**—प्रतिकूल परिस्थितिमें भगवान्की कृपा कैसे समझें?

**स्वामीजी**—प्रतिकूलतामें कृपा ज्यादा होती है। अपनी मनचाही बात हो जाय तो उसमें कृपा दो नम्बरकी होती है; परन्तु अपनी मनचाही न हो तो एक नम्बरकी कृपा होती है। जिनमें हमारा पूज्यभाव है, वे माता-पिता, गुरु, सन्त आदि किसीको धमकाते हैं, उसमें उनका अपनापन है अथवा जिसको नहीं धमकाते, उसमें अपनापन है? जरा सोचो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

पारमार्थिक मार्गमें सुखबुद्धि, भोगबुद्धिका त्याग पहले ही कर देना चाहिये। मनुष्यजन्म सुखभोगके लिये है ही नहीं। सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता तो दिन तथा रातकी तरह अपने-आप आते हैं और चले जाते हैं। इनके लिये उद्योग क्या करना? यह तो संसारका स्वरूप है। दिन और रातके आने अथवा जानेके लिये आप क्या उद्योग करते हैं?

साधकको यदि दुःख होता है तो इस बातका होता है कि भगवान्‌के स्मरण-भजनके बिना समय चला गया—

**कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥**

(मानस, सुन्दर.३२/२)

**अनुकूलताकी इच्छावाला साधन नहीं कर सकता।** अगर परमात्माकी प्राप्ति चाहते हो तो सुख मत चाहो; क्योंकि सुख तो त्याग करनेकी चीज है। सुख अच्छा लगता है, पर उससे फायदा नहीं है। दुःख बुरा लगता है, पर उससे उन्नति होती है। मनुष्य जितना-जितना दुःख भोगता है, उतना-उतना अन्तःकरण शुद्ध होता है। संसारका सुख तो एक आफत है।

**मनुष्यको आरामकी चीजें जितनी ज्यादा मिलती हैं, उतना ही उसका पतन होता है।** पहले कष्ट सहकर पढ़नेवाले विद्यार्थी जितने विद्वान् होते थे, आज आरामसे पढ़नेवाले विद्यार्थी उतने विद्वान् नहीं होते। आज अच्छे विद्वान् नहीं मिलते। आप प्रत्यक्ष देख लें कि पहले बी.ए. पासवाले जितने तेज होते थे, आज एम.ए. पासवाले भी उतने तेज नहीं होते। **दुःखमें आदमीका जितना विकास होता है, उतना सुखमें नहीं होता।** मुझे तो आज देख-देखकर आश्चर्य होता है; गलीचा आदि बनानेवाले रंग नहीं पहचानते कि कहाँ कौन-सा रंग होना चाहिये। फर्शपर पत्थर जड़ा हुआ देखता हूँ तो उसमें मुझे भूलें दीखती हैं। घड़ी देखता हूँ तो उसमें कमियाँ दीखती हैं। बड़े-बड़े काम करनेवाले आदमियोंमें मैं बुद्धिकी कमी देखता हूँ। बैटरीसे चलनेवाली घड़ी आनेसे घड़ीसाज निकम्मे हो रहे हैं। आगे चलकर घड़ी बना सकें, ऐसी अक्ल नहीं रहेगी। जितना सुख-आराम बढ़ रहा है, उतना पतन हो रहा है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**हिन्दू संस्कृति केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही है।** परमात्माकी प्राप्ति कठिन नहीं है, लगन कठिन है। लगन होनेपर परमात्माकी प्राप्ति कठिन नहीं है। परमात्मप्राप्ति होनेपर कुछ करना, जानना और पाना बाकी नहीं रहता। करना बाकी न रहे तो कर्मयोग, जानना बाकी न रहे तो ज्ञानयोग, और पाना बाकी न रहे तो भक्तियोग होता है। भक्तियोग सबका फल है। सबसे आखिरी चीज है—प्रेम। भक्तका यह भाव रहता है कि भगवान्‌के दर्शन हों चाहे न हों, मेरा भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम हो जाय। एक प्रेमके सिवाय उसकी और कोई माँग नहीं होती।

जो कुछ भी शुभ कर्म करो, सबका एक ही फल चाहो कि भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम हो जाय—**‘सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ’** (मानस, अयोध्या. १२९)। वह प्रेम आप सबमें है, पर उसको आपने भोग तथा संग्रहमें लगा रखा है। भोग तथा संग्रहमें लगनेसे वह प्रेम विकृत होकर आसक्ति हो गया है।

सांसारिक चाहनाका कभी अन्त आयेगा ही नहीं, चाहे अनन्त युग बीत जायँ। अरबों-खरबों रुपये हो जायँ

तो भी चाहना मिटेगी नहीं। सांसारिक वस्तुकी चाहना करो तो वह पूरी नहीं होगी; अगर पूरी हो जाय तो वह वस्तु नहीं रहेगी अथवा आप नहीं रहोगे अथवा दोनों ही नहीं रहेंगे। इस तरह संसारकी चाहना करनेसे पूरा घाटा-का-घाटा रहेगा। परन्तु परमात्माकी प्राप्ति कर लो तो कोई काम बाकी नहीं रहेगा, कोई चाहना बाकी नहीं रहेगी।

भोजन आप जैसा चाहो, वैसा बनाया जा सकता है, पर भूख तो खुदकी ही चाहिये। भूख न हो तो बढ़िया-से-बढ़िया भोजन भी किस कामका? ऐसे ही **सत्संगसे आपको बढ़िया-बढ़िया बातें मिल सकती हैं, पर भूख, रुचि, चाहना आपकी खुदकी चाहिये।**

अगर आप केवल भगवान्की चाहना करेंगे तो भगवान् आपके लिये सुलभ हो जायेंगे—‘**तस्याहं सुलभः पार्थ**’ (गीता ८/१४)। आपको भगवान् प्राप्त हो जायेंगे तो आप दुर्लभ हो जायेंगे—‘**स महात्मा सुदुर्लभः**’ (गीता ७/१९)।

मक्खी सब जगह बैठती है, पर आगपर नहीं बैठती। अगर आगपर बैठ जाय तो धुआँ ही उठेगा, मक्खी नहीं उठेगी। ऐसे ही आप भगवान्में लग जाओ तो धुआँ ही उठेगा, आप नहीं उठोगे! क्योंकि भगवान्के समान मीठी, प्यारी चीज कोई है नहीं, हो सकती ही नहीं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**जहाँ राग-द्वेष, हर्ष-शोक, अच्छा-मन्दा, अनुकूल-प्रतिकूल आदि दो चीजें रहती हैं, वह ‘संसार’ है। दो चीजें मिटकर एक समता हो जाय तो वह ‘परमात्मा’ है।** राग-द्वेष आदि दो चीजें ही जन्म-मरणका कारण हैं। ये दो चीजें न रहकर समता हो जाय तो परमात्माकी प्राप्ति है—

**इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।**

**निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥**

(गीता ५/१९)

‘जिनका अन्तःकरण समतामें स्थित है, उन्होंने इस जीवित अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसारको जीत लिया है अर्थात् वे जीवन्मुक्त हो गये हैं; क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है, इसलिये वे ब्रह्ममें ही स्थित हैं।’

वास्तवमें मात्र जीवोंकी स्थिति स्वतः समरूप परमात्मामें है। यदि वे राग-द्वेषादिसे रहित हो जायें तो सब जीवन्मुक्त हैं। परमात्मप्राप्ति समतामें है—‘**निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते**’ (गीता ५/३) ‘द्वन्द्वोंसे रहित मनुष्य सुखपूर्वक संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है’। इसलिये आप हरेक समय समतामें रहें। यह कठिन बात नहीं है। समता आपका स्वरूप है। राग-द्वेष आगन्तुक दोष हैं। आगन्तुक दोषको आपने भूलसे स्थायी मान लिया।

अच्छा-मन्दा आदि दो बातोंसे ही अहंभाव है। यह अहंभाव (व्यक्तित्व) केवल राग-द्वेषपर ही टिका हुआ है। समता होते ही अहम् मिट जायगा।

विधवा, कुआँरी, बूढ़ा और साधु—ये चाहें तो सुगमतासे समतामें स्थित हो सकते हैं; क्योंकि इनके ऊपर कोई जिम्मेवारी नहीं, कोई चिन्ता नहीं।

**श्रोता**—व्यवहारमें जब खटपट होती है, उस समय हम इन बातोंको कैसे धारण करें?

**स्वामीजी**—व्यवहारमें खटपट होती है तो आप वही रहते हैं या दूसरे हो जाते हैं? खटपटके समय आप जो हैं, वही शान्तिके समय भी हैं। इसलिये आप ‘स्व’ में स्थित रहो—‘**समदुःखसुखः स्वस्थः**’ (गीता १४/२४)। आप खटपटसे रहित हो, तभी आप खटपटको भी जानते हो और खटपट न होनेको भी जानते हो। कम-से-कम इतना जान लो कि खटपट सदा रहनेवाली नहीं है, पर आप सदा रहनेवाले हो। आप खटपटको पकड़ लेते हो—यही दोष है।

अपने ज्ञानको दूसरेपर मत थोपो, खुद उसपर विचार करो। दूसरा माने तो अच्छी बात, न माने तो अच्छी बात। आप अपने ही गुरु, नेता और शासक बन जाओ—‘उद्धरेदात्मनात्मानम्’ (गीता ६।५) ‘अपने द्वारा अपना उद्धार करो।’ आप अपना सुधार कर लो तो दुनियामात्रकी सेवाका, उपकारका पुण्य आपको हो जायगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जो वस्तु ‘है’, वह सभी देश, काल, वस्तु, व्यक्ति आदिमें है। जो वस्तु किसी देश, काल, वस्तु, व्यक्ति आदिमें नहीं है, वह वास्तवमें है ही नहीं। जो वस्तु कभी है, कभी नहीं है, वह वास्तवमें है ही नहीं—यह पक्का सिद्धान्त है। तात्पर्य यह हुआ कि एक परमात्मतत्त्व ही है, उसके सिवाय और कुछ है ही नहीं। ‘है’ रूपसे दीखनेवाला भी वही है और ‘नहीं’ रूपसे दीखनेवाला भी वही है। उस नित्य सत्ताका कभी अभाव है ही नहीं, हो सकता ही नहीं। गीताका आधा श्लोक है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

(गीता २/१६)

‘असत्का तो भाव (सत्ता) विद्यमान नहीं है और सत्का अभाव विद्यमान नहीं है।’

सब शास्त्र, सब पुराण, सब वेद, सब ग्रन्थ, सब सिद्धान्त इन सोलह अक्षरोंके अन्तर्गत आ गये! संसारमात्रके जितने ग्रन्थ हैं, जितने सन्त हैं, सबकी सार बात इसके अन्तर्गत आ गयी!

सन्तोंसे जो बात मिलती है, वह पुस्तकोंसे नहीं मिलती। सन्तोंने लिखा है कि असत् किंचिन्मात्र भी बाधक नहीं है, प्रत्युत उसका सम्बन्ध ही बाधक है। यह बात वेदान्तके आचार्यतकके ग्रन्थोंमें भी नहीं मिलती! सत्के लिये असत् बाधक हो सकता ही नहीं। आप असत्से जो सम्बन्ध जोड़ लेते हो, यह बाधक है। वेदान्तके ग्रन्थोंमें आठ प्रकारका अध्यास बताकर फालतू मेहनत की गयी है! सन्तोंका अनुभव बहुत विलक्षण है, वह शास्त्रोंमें नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अगर आप असत्का ज्ञान करना चाहते हैं तो असत्से अलग हो जाइये। अगर आप सत्का ज्ञान करना चाहते हैं तो सत्से अभिन्न हो जाइये। आप तटस्थ होकर जो बात कहेंगे, वह तत्त्वकी बात नहीं होगी। शास्त्रोंकी, पढ़ाईकी जितनी बातें हैं, सब तटस्थ बातें हैं। शास्त्रोंमें पढ़नेसे जीव, ब्रह्म और जगत्—ये तीनों ही बुद्धिका विषय होंगे। इससे तत्त्वका ज्ञान नहीं होगा। बुद्धि आपकी है, आप बुद्धिके नहीं हैं। आप बुद्धिके मालिक हैं। अतः बुद्धिका विषय होनेसे जीव, ब्रह्म और जगत्—तीनों ही आपसे छोटे हुए। फिर श्रेष्ठ कौन हुआ, तत्त्व या बुद्धि? जो बुद्धिके अन्तर्गत आता है, वह तत्त्व नहीं होता। बुद्धिका विषय आपका कल्याण कैसे करेगा?

जो बुद्धिके अन्तर्गत आता है, उसे ही आप समझ सकते हैं। जो बुद्धिके अन्तर्गत आता ही नहीं, उसे आप कैसे समझोगे? इसलिये बुद्धि न लगाकर चुप हो जायँ।

दौड़ सके तो दौड़ ले, जब लगि तेरी दौड़।

दौड़ थक्या धोखा मिट्या, वस्तु ठौड़-की-ठौड़॥

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आप पहलेसे ही यह उद्देश्य रखें कि पुस्तक पूरी करनेके लिये नहीं पढ़नी है, प्रत्युत मन लगानेके लिये पढ़नी है। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते जहाँ मन लग जाय, वहीं पढ़ना छोड़ दो। जब मन घूमने लग जाय तो एक पृष्ठ

पीछेसे पुनः पढ़ना शुरू कर दो। फिर जहाँ मन लगे, पढ़ना छोड़ दो। पढ़नेसे उतना काम नहीं होता, जितना मन लगनेसे होता है। यह बहुत बढ़िया साधन है। जैसे व्यापारमें पैसे ज्यादा पैदा हों, वही व्यापार बढ़िया है, ऐसे ही जिस साधनमें मन भगवान्में ज्यादा तल्लीन हो, वही साधन बढ़िया है—‘तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णो निवेशयेत्’ (श्रीमद्भागवत ७/१/३१)। उससे फायदा ज्यादा होगा, इसमें सन्देह नहीं है।

पुस्तक पढ़नेका तात्पर्य ‘चुप’ होनेमें है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

क्रिया और पदार्थ प्रकृतिका कार्य है। हमें इन दोनोंसे ऊँचा उठना है। चिन्तन करनेकी अपेक्षा कुछ भी चिन्तन न करना बढ़िया है। चिन्तन न करना बहुत ऊँचा साधन है। न संसारका, न आत्माका, न परमात्माका, न नामका, न भजनका, किसीका भी चिन्तन न करे। **किसीका भी चिन्तन न करनेसे आपकी स्थिति परमात्मामें ही होगी।** न नींद हो, न आलस्य हो, स्वच्छ वृत्ति हो। नामजपका, भजनका फल है—चुप होना। यह ‘चुप साधन’ जल्दी समझमें नहीं आता। समझमें आ जाय तो बहुत बढ़िया है। समझमें न आये तो नामजप करो, कीर्तन करो, पुस्तक पढ़ो।

एक परमात्मतत्त्व सब जगह ठोस परिपूर्ण है—इसमें स्थित होकर चुप हो जाओ। इसमें मन नहीं लगाना है। यह ‘चुप साधन’ बहुत बढ़िया है, पर नींद, आलस्य आ जाय, चिन्तन हो जाय तो ठीक नहीं है। यह साधन यदि हाथ लग जाय तो समझ लो कि भाग्य खुल गया! एक दिनमें विलक्षणता हो जायगी! इसको सेठजी ‘अचिन्त्यका ध्यान’ और शरणानन्दजी ‘मूक सत्संग’ कहते हैं।

**श्रोता**—चुप साधनके समय मनमें संकल्प-विकल्प हों, तब क्या करें?

**स्वामीजी**—सबसे पहले इस बातको समझो कि संकल्प-विकल्प मनमें होते हैं, आपमें नहीं होते। मन प्रकृतिका कार्य है, आप परमात्माके अंश हो। अतः संकल्प-विकल्पके साथ आपका सम्बन्ध नहीं है। मनमें संकल्प-विकल्प होते हों तो उनकी उपेक्षा करो। संकल्प-विकल्पका विभाग दूसरा है, आपका विभाग दूसरा है। संकल्प-विकल्प आपके नहीं हैं, आप संकल्प-विकल्पके नहीं हैं।

संकल्प-विकल्प होते हों तो उनका न विरोध करो, न समर्थन करो; न उनको अच्छा समझो, न बुरा समझो, प्रत्युत उनकी उपेक्षा कर दो। उनका विरोध करोगे तो सम्बन्ध जुड़ेगा, समर्थन करोगे तो सम्बन्ध जुड़ेगा। भगवान्के साथ जिसने प्रेम किया, उसका भी कल्याण हो गया और जिसने वैर किया, उसका भी कल्याण हो गया; परन्तु जिसने कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ा, उसका कल्याण नहीं हुआ।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

एक जड़-विभाग है, एक चेतन-विभाग है। क्रिया और पदार्थ जड़-विभागमें हैं। जड़-विभाग प्रकृतिका स्वरूप है और चेतन-विभाग आपका स्वरूप है। शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि जड़-विभागमें हैं। जड़-विभागके साथ सम्बन्ध ही जन्म-मरणका कारण है। आपका स्वरूप है—सत्तामात्र, होनापन।

‘मैं हूँ’—इसमें ‘मैं’ जड़-विभागमें है और ‘हूँ’ चेतन-विभागमें है। ‘मैं’ प्रकृतिका अंश है और ‘हूँ’ परमात्माका अंश है। ‘मैं’ के कारण ही ‘हूँ’ है। ‘मैं’ को छोड़ दें तो ‘हूँ’ ‘है’ (परमात्मा) में विलीन हो जायगा अर्थात् ‘हूँ’ नहीं रहेगा, केवल ‘है’ रह जायगा। आप ‘मैं’ को छोड़कर ‘है’ में स्थित हो जायँ, कुछ भी चिन्तन न करें। ‘है’ व्यापक है, ‘हूँ’ छोटा-सा है। उस सर्वत्र परिपूर्ण ‘है’ में न ‘मैं’ है, न ‘तू’ है, न ‘यह’ है, न ‘वह’ है।

कई वर्ष पहले मैंने कहा था कि ‘अहं ब्रह्मास्मि’ (मैं ब्रह्म हूँ) कहना ठीक नहीं है, ‘अहं ब्रह्मास्ति’ (मैं ब्रह्म है) कहना चाहिये! पढ़े-लिखे लोग सोचेंगे कि यह कैसा बोलता है! पर मेरा तात्पर्य है कि ‘मैं’ नहीं है,



ब्रह्म है। जहाँ अहम् है, वहाँ ब्रह्म नहीं है; जहाँ ब्रह्म है, वहाँ अहम् नहीं है।

**‘हूँ’ में ‘हूँ’-पना नहीं है, ‘है’-पना है—इतनी बात मान लो। ‘हूँ’ भी वास्तवमें ‘है’ ही है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

‘मेरा कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये’—यह बात मान लो तो आप निहाल हो जाओगे। यह बहुत ऊँची और तत्काल शान्ति देनेवाली बात है। विचार करें, जो वस्तु मेरी दीखती है, वह सदा आपके साथ रहेगी क्या? आप सदा उसके साथ रहोगे क्या? इस बातको पकड़ लो तो ममता मिट जायगी। अगर आपको जल्दी तत्त्वका अनुभव करना हो तो यह बहुत बढ़िया उपाय है।

आपने साधन करते इतने वर्ष बिता दिये, अब मेरे कहनेसे दो-तीन दिन यह करके देख लो कि ‘मेरा कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये’। **जो लाभ वर्षोंसे नहीं हुआ, वह केवल इस बातको माननेसे हो जायगा कि ‘मेरा कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये’।** इस बातको माननेसे लाभ ही होगा, नुकसान किंचिन्मात्र भी नहीं होगा। जो चीज दीखे, ‘यह मेरी नहीं है’; क्योंकि कोई भी चीज आपके साथ रहनेवाली नहीं है।

चाहे आप यह मान लो कि ‘मेरा कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये’, चाहे आप यह मान लो कि ‘भगवान् मेरे हैं, मैं भगवान्का हूँ’। दोनोंमें आपको जो बढ़िया लगे, वह बात मान लो। चाहे दोनों बातें एक साथ मान लो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

नाशवान् और अविनाशी—इन दोनोंका विभाग ठीक समझमें आ जाय तो बड़े लाभकी बात है। हमने नाशवान्को आदर दे दिया—यह बहुत बड़ी भूल है, मामूली भूल नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीर नाशवान् हैं। इन तीनों शरीरोंमें क्रमशः क्रिया, चिन्तन और स्थिरता होती है। समाधि भी कारणशरीरमें होती है। वास्तविक तत्त्व तीनों शरीरोंसे अतीत है। **तीनों शरीरोंसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर ही चिन्मयता (परमात्मतत्त्व) की प्राप्ति होगी। चिन्मयताकी प्राप्तिमें शरीर बाधक नहीं है, प्रत्युत उसका सम्बन्ध बाधक है।**

अपरा प्रकृतिमें सबसे सूक्ष्म ‘अहम्’ है। अहम्से सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर ही जड़तासे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद होता है। आपकी सत्ता (स्वरूप) इस अहम्के बिना है। जाग्रतमें स्थूलशरीरकी प्रधानता, स्वप्नमें सूक्ष्मशरीरकी प्रधानता और गाढ़ नींद (सुषुप्ति) में कारणशरीरकी प्रधानता रहती है। अहम्के बिना भी आप रहते हैं। इसलिये सुषुप्तिमें अहम्के लीन होनेपर भी अपने अभावका अनुभव नहीं होता। मृत्युमें भी अपने अभावका अनुभव नहीं होता। **तत्त्वज्ञान होनेपर अहम्-रहित स्वरूपमें स्थिति होती है।**

स्वरूप तुरीयावस्थासे भी अतीत है। तुरीयावस्थामें अहम् तो नहीं रहता, पर अहम्का संस्कार रहता है, जिससे दार्शनिक मतभेद होता है।

अविद्या अहंकारसे भी सूक्ष्म है, पर अहंकारसे रहित होनेपर अविद्या भी नहीं रहती। अतः अहंकारसे रहित होनेपर हम अविद्यासे भी रहित हो जायँगे। एक मार्मिक बात है, भगवान्की भक्तिका अविद्याके साथ विरोध नहीं है। भक्ति करनेसे अहंकारसे रहित हो जायँगे—ऐसा कहते हैं, पर अविद्यासे रहित हो जायँगे—ऐसा नहीं कहते। कारण कि तत्त्व अविद्याका विरोधी नहीं है, प्रत्युत ‘जिज्ञासा’ अविद्याकी विरोधी है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जो अपनेको भी जानता है और दूसरेको भी जानता है, वह ‘चेतन’ है। जो न अपनेको जानता है, न दूसरेको जानता है, वह ‘जड़’ है। क्रिया जड़में होती है, चेतनमें नहीं। साधनमें प्रवृत्त होते ही ‘मैं शरीर हूँ, शरीर मेरा है’

यह भाव नहीं रहना चाहिये। साधक शरीर नहीं होता। शरीर संसारकी चीज है। आप स्वयं परमात्माके अंश हो। जब शरीर मैं नहीं हूँ तो फिर शरीरके द्वारा किया गया काम मेरा कैसे हुआ? जब काम मेरा है ही नहीं तो फिर उसके फलकी कामना कैसे होगी?

जितने सम्प्रदाय हुए हैं, सन्त हुए हैं, वे प्रायः शरीरको लेकर ही चलते हैं। **षट्चक्रभेदन, कुण्डलिनी-जागरण आदि सब साधनाएँ शरीरको लेकर है।** मैं जो कहता हूँ, यह शरीरकी साधना नहीं है। श्रीशरणानन्दजीसे किसीने पूछा कि आप कुण्डलिनीके विषयमें क्या जानते हैं? वे बोले कि 'कुण्डलिनीके साथ मेरा सम्बन्ध नहीं है, यह जानता हूँ'। जिससे हमारा सम्बन्ध ही नहीं है, वह चाहे जैसा हो, जाग्रत् हो या सुप्त, उससे हमें क्या मतलब? इसलिये आरम्भमें ही यह बात पकड़ लें कि शरीर मैं नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है। शरीर मिला है और छूट जायगा।

जड़ आपके लिये नहीं है, आप जड़के लिये नहीं हो; जड़का त्याग (सम्बन्ध-विच्छेद) आपके लिये है। जैसे हाथ कट जाय तो वह कटा हुआ हाथ अपना नहीं दीखता, ऐसे ही यह शरीर अपना नहीं दीखना चाहिये। कटा हुआ हाथ कहीं फेंक दो, जला दो अथवा उसे कुत्ता ले जाय, क्या फर्क पड़ता है। जिस धातुका वह कटा हुआ हाथ है, उसी धातुका यह शरीर है। दोनों एक ही चीज है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मैंने सन्तोंसे सुना है कि मध्यरात्रिमें, रात्रि ग्यारह बजेसे एक बजेतक जो भजन करता है, वह अन्त समयमें बेहोश नहीं होता। उसे होश रहता है।

**श्रोता**—हमारा मन भजनमें लगता है, पर घरवाले कहते हैं कि काम करो। हम उनकी बात मानें या भजनमें लगे?

**स्वामीजी**—दोनों बात करो। ऐसा स्वभाव बनाओ कि काम करते हुए भजन न छूटे और भजन करते हुए काम याद न आये। तात्पर्य है कि भगवान्का भजन तो हरदम होना चाहिये और संसारका काम वक्तपर करना चाहिये—'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च' (गीता ८/७)। जो संसारका काम करते हुए भजन करता है, उसका भजन जैसा बढ़िया होता है, वैसा एकान्तमें रहनेवालेका नहीं होता। यदि उसे एकान्त न मिले तो उसका भजन छूट जाता है, पर संसारका काम करते हुए भजन करनेवालेका भजन छूटता नहीं।

**हाथ काम मुख राम है, हिरदै साची प्रीत।**

**दरिया गृहस्थी साध की, याही उत्तम रीत॥**

● उदार व्यक्तिके द्वारा दुनियाका बड़ा हित होता है और कृपण, कंजूस व्यक्तिके द्वारा दुनियाका बड़ा अहित होता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

परमात्माकी प्राप्ति बहुतोंको नहीं हुई, इसलिये कठिन नहीं है, प्रत्युत उसकी लालसा नहीं है, इसलिये कठिन है। **मनुष्यशरीर मिल गया तो परमात्मप्राप्तिका अधिकार मिल गया।** 'मनुष्य' कहो चाहे 'परमात्मप्राप्तिका अधिकारी' कहो, दोनों पर्यायवाची शब्द है। इसलिये परमात्मप्राप्तिसे निराश नहीं होना चाहिये। जैसे माँकी गोदीमें जानेका सबको अधिकार है, ऐसे ही परमात्माको प्राप्त करनेका सबको अधिकार है। परमात्माकी कृपाका भरोसा रखो। अपना बल न होते हुए भी उनकी कृपासे सब काम होता है।

आपको अबतक भगवान्का जैसा स्वरूप समझमें आया है, उसको हर समय याद करो। भगवान् उसीको अपना स्वरूप मान लेते हैं, यह उनका कायदा है। 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!! हे मेरे प्रभो!!' ऐसे पुकारो। भगवान् सबके

लिये सुलभ हैं। योग्य हों, अयोग्य हों, सदाचारी हों, दुराचारी हों, भले हों, बुरे हों, हरेक भाई-बहन भगवान्‌को अपना कह सकते हैं। कोई भगवान्‌को पुकारता है तो उसके अवगुणोंकी तरफ भगवान्‌की दृष्टि जाती ही नहीं, वे तो केवल उसकी पुकारको देखते हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान्‌में जैसे मन लगे, लगाओ। अहम् है कि नहीं है, यह चिन्तन मत करो। कुछ भी चिन्तन करोगे तो अहम् आयेगा ही। अहम् है कि नहीं है—यह परीक्षा बिना अहम्‌के कौन करेगा? कुछ भी चिन्तन मत करो। थोड़ा भी आलस्य, नींद आये तो यह चुप-साधन मत करो। आलस्य, नींद आये तो नामजप करो, कीर्तन करो, पद गाओ।

**श्रोता**—भगवान्‌का भजन करते हैं, पर घरवाले तंग करते हैं कि तुम यह काम करो, वह काम करो, क्या करें?

**स्वामीजी**—वक्तपर काम-धन्धा कर दो और हर समय भगवान्‌का स्मरण करो। वास्तवमें दोष खुदका होता है, पर दीखता है मनका अथवा घरवालोंका। अपने दोषको दूर करो। हरदम 'हे नाथ! हे नाथ!! हे मेरे प्रभो!! मैं आपको भूलूँ नहीं' ऐसा कहते रहो। भगवान्‌में मन लग जायगा तो सब काम ठीक हो जायगा।

भगवान्‌में मेरापन होना बहुत श्रेष्ठ है। 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'—यह बहुत ही बढ़िया चीज है। यह हरदम रहनी चाहिये। सार बात है, भगवान्‌ जितने अपने हैं, उतना कोई अपना नहीं है। यह बात याद रखो—

**उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥**

(मानस, किष्किन्धा.१२/१)

संसारमें जो अपने दीखते हैं, वे कितने दिनोंसे हैं और कबतक रहेंगे? स्वयं सोचो तो बात समझमें आ जायगी। सौ वर्ष पहले अपना कौन था और सौ वर्षके बाद अपना कौन रहेगा? पर भगवान्‌ सदासे अपने हैं और सदा अपने रहेंगे। उनके सिवाय सदा साथ रहनेवाला कोई है ही नहीं। भगवान्‌ने बहुत विलक्षण कृपा की है कि न शरीर साथ रहता है, न कुटुम्ब साथ रहता है, न घर साथ रहता है, न रुपये साथ रहते हैं, सदा साथ रहनेवाला कोई है ही नहीं! सेवा सबकी करो, पर अपना किसीको मत मानो।

**संसारको अपना माननेवाला एक भी भक्त नहीं हुआ।**

**श्रोता**—क्रोध कैसे मिटे, दुराचार कैसे मिटे?

**स्वामीजी**—एक ही उपाय है—'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌को याद करनेसे सब काम ठीक होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सब मिट जाते हैं।

**नरेष्वभीक्षणं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात्।**

**स्पर्धासूयातिरस्काराः साहङ्कारा वियन्ति हि॥**

(श्रीमद्भागवत ११/२९/१५)

'जब साधक समस्त स्त्री-पुरुषोंमें निरन्तर मेरा ही भाव करता है अर्थात् मेरेको ही देखता है, तब शीघ्र ही उसके चित्तसे स्पर्धा, ईर्ष्या, तिरस्कार आदि दोष अहंकारके सहित दूर हो जाते हैं।'

हरदम मन-ही-मन यही प्रार्थना करते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। एक प्रभुको याद रखनेसे सब ठीक हो जायगा—'एकै साथे सब सधै, सब साथै सब जाय'। 'हे नाथ! हे नाथ!!' इसमें मन लगा दो, अन्य साधनोंका भरोसा मत रखो। अन्य साधन जड़ताको लेकर हैं। जड़ताके द्वारा चिन्मयताकी प्राप्ति नहीं होती—

यह बहुत ही मार्मिक, सार बात है।

हमें न आफत चाहिये, न सम्पत्ति चाहिये; न दुःख चाहिये, न सुख चाहिये, हमें तो भगवान्की स्मृति चाहिये। जिसमें भगवान्को भूल जायँ, वह न सुख बढ़िया है, न दुःख बढ़िया है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जब मनुष्य भगवान्में लगता है, तब उसके मनमें आती है कि एकान्त मिल जाय, समयपर अन्न-जल ठीक मिल जाय तो भजन अच्छा होगा। पर इसमें धोखा होता है; भजन नहीं होता, प्रत्युत अनुकूलताका भोग होता है। एकान्तमें बैठने-सोनेमें आराम ज्यादा मिलेगा, नींद बढ़िया आयेगी। अगर भगवान्में मन लग जाय, लगन बढ़ जाय, संसारका चिन्तन कम हो जाय, नींद कम हो जाय तो एकान्त हो या समुदाय, वही परिस्थिति बढ़िया है।

यदि सत्संग करते हुए मनकी शंकाएँ न मिटें, भगवान्में प्रेम न हो, भजन न बढ़े तो वह सत्संग भी भोग है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आप और आपका शरीर दो हैं—इतनी बात आप केवल याद कर लें। शरीर जड़ व नाशवान् है, आप चेतन व अविनाशी हैं। आप शरीर नहीं हैं, शरीर आपका नहीं है। शरीर आपके लिये भी नहीं है। आपके लिये विवेक है। शरीर संसारको नहीं छोड़ सकता और संसार शरीरको नहीं छोड़ सकता। इसी तरह हम भगवान्को नहीं छोड़ सकते और भगवान् हमें नहीं छोड़ सकते।

मैं संसारका हूँ—इसमें महान् पतन है। मैं भगवान्का हूँ—इसमें महान् उत्थान है। भगवान्में अपनापन होनेसे शरीरका अध्यास छोड़ना नहीं पड़ता, स्वतः छूट जाता है। 'मैं शरीर हूँ'—ऐसा मानोगे तो सब दोष आ जायँगे, पर 'मैं भगवान्का हूँ, भगवान् मेरे हैं'—ऐसा मानोगे तो कोई दोष नजदीक नहीं आयेगा। संसारकी कोई भी चीज अपनी नहीं है।

**श्रोता**—परिवारके जो सम्बन्ध हैं, वे माँ, बाप, स्त्री, पुत्र आदि भी तो अपने हैं?

**स्वामीजी**—मैं आपसे पूछता हूँ कि पारिवारिक सम्बन्ध कबसे है और कबतक है? माता, पिता आदि कबसे अपने हैं और कबतक अपने रहेंगे? इसपर विचार करें। क्या इनके साथ हमारा सम्बन्ध सदासे है? क्या इनके साथ सम्बन्ध सदा रहेगा? पहले इनकी पहचान भी नहीं थी। यह थोड़े दिनोंका मेरापन माना हुआ है। ये अपने कहलाते हैं तो इनकी सेवा करो, इनको सुख पहुँचाओ।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान् चतुराईसे, बुद्धिमानीसे अथवा सांसारिक गुणोंसे नहीं रीझते। वे तो सीधे-सरल भावसे रीझते हैं—'सुरल सुभाव न मन कुटिलाई' (मानस, उत्तर. ४६/१)। जैसे बच्चेका सीधा-सरल भाव होता है कि 'मेरी माँ है'। वह यह नहीं सोचता कि मेरी माँ क्यों है, कैसे है? ऐसे ही भगवान्में सीधा-सरल भाव हो कि 'मेरे भगवान् हैं'। भगवान्के यहाँ चतुराईका घाटा नहीं है, भोलेपनका घाटा है।

भगवान् मीठे लगें, प्यारे लगें। भगवान्का नाम, रूप, लीला आदि सब मीठे लगें। भगवान्से कुछ माँगना हो तो यही माँगो कि 'हे प्रभो! आप मीठे लगो'। भगवान् मीठे लगेंगे तो सब काम ठीक हो जायगा। सब संसार फीका हो जायगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अपने स्वार्थका त्याग करके दूसरोंका हित करनेसे अपना नुकसान नहीं होता। अपने स्वार्थका त्याग करनेसे

अपना वास्तविक स्वार्थ (परमार्थ) सिद्ध होता है और बड़े आदरसे होता है। चाहना करना घाटेमें रहना है। चाहनाका सर्वथा त्याग कर दें तो स्वतः-स्वाभाविक मुक्ति हो जायगी। चाहना रखेंगे तो कितना ही धन मिल जाय, सम्पत्ति मिल जाय, ऊँचा पद मिल जाय, राज्य मिल जाय, घाटा ही रहेगा, दरिद्रता ही रहेगी। चाहना सर्वथा छोड़ दें तो किसी वस्तुकी कमी नहीं रहेगी। आजतक तरह-तरहकी इच्छाएँ करके आपको क्या मिल गया? क्या पूर्ति हो गयी?

चाहना आदमीको बहुत नीचा बना देती है—

**क्या माँगता है इष्ट से, तू इष्ट का भी इष्ट है।**

**है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥**

(वेदान्त-छन्दावली)

इसलिये कोई भी कामना न रहे, न जीनेकी, न मरनेकी; न देनेकी, न लेनेकी; न जानेकी, न आनेकी; न लोककी, न परलोककी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**युवा लड़कियोंको आजके जमानेमें दीक्षा लेना और आश्रमोंमें रहना चाहिये या नहीं?

**स्वामीजी—**बिल्कुल नहीं रहना चाहिये। आजकल लड़कियोंकी रक्षा करनेकी बहुत विशेष जरूरत है। जहाँतक हो सके, उन्हें कॉलेजोंमें भेजनेको भी मैं बढ़िया नहीं मानता हूँ, फिर आश्रमोंमें भेजनेकी बात दूर रही! माताओंको चाहिये कि वे कन्याओंको अपने पास रखें।

**स्त्रीको किसी भी पुरुषके साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये।**

**श्रोता—**गुरुसे ज्ञान लिये बिना उसका कल्याण कैसे होगा?

**स्वामीजी—**उसके लिये गुरुका ज्ञान बहुत भयंकर है, व्यभिचारकी जड़ है! मैं तो इसको बिल्कुल अच्छा नहीं समझता। बहनों-माताओंको खूब बचकर रहना चाहिये। वेदव्यासजी महाराजकी आज्ञा है—

**मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत्।**

**बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥**

(श्रीमद्भागवत ९/१९/१७)

‘माता, बहन अथवा कन्याके साथ भी एकान्तमें एक आसनपर सटकर नहीं बैठना चाहिये; क्योंकि बलवान् इन्द्रिय-समूह विद्वानोंको भी अपने वशमें कर लेता है।’

आज समाजका बहुत ज्यादा पतन हो गया है। परिवार-नियोजनसे चरित्र बहुत भ्रष्ट हुआ है। पहले कभी इतना चरित्र नहीं गिरा। अच्छे पुरुषोंसे, सन्तोंसे मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे ऐसी रीति न डालें, जिससे पतनका रास्ता खुल जाय।

**इस भयंकर कलियुगसे बचना चाहते हो तो हरदम ‘हे नाथ! हे मेरे नाथ!!’ पुकारते रहो।** सिवाय भगवान्के कोई रक्षा करनेवाला, सहारा देनेवाला नहीं है।

**संसार साथी सब स्वार्थके हैं, पक्के विरोधी परमार्थके हैं,**

**देगा न कोई दुःखमें सहारा, सुन तू किसीकी मत बात प्यारा॥**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जो अपना कल्याण चाहता हो, उसे चाहिये कि सबकी सेवा करे। दूसरोंको सुख देनेसे सुख मिलता है—

इस सिद्धान्तको माने। सुखकी इच्छासे सुख नहीं मिलता। यदि सुखकी इच्छासे सुख मिलता हो तो कोई दुःखी नहीं रहता; क्योंकि सुख सभी चाहते हैं। वास्तवमें बात उल्टी है; जो सुख चाहता है, उसे दुःख भोगना पड़ता है—यह नियम है। **अगर आप दुःख नहीं चाहते हो तो दूसरोंको सुख पहुँचाओ।** यह बात ऐसे समझमें नहीं आती, करके देखो तब अनुभव होगा।

जैसे औषधालय, भोजनालय, वस्त्रालय, पुस्तकालय आदि होते हैं, ऐसे यह संसार 'दुःखालय' है—'**दुःखालयमशाश्वतम्**' (गीता ८/१५)। आप दुःखालयमें सुख ढूँढ़ते हैं तो वह कैसे मिलेगा? संसारमें वहम होता है सुखका, मिलता है दुःख। '**संसारमें सुख नहीं है**'—यह वहम सत्संग करनेवालेका नहीं मिटेगा तो फिर किसका मिटेगा?

जैसे बीमारीकी इच्छा कोई भी नहीं करता, फिर भी बीमारी आती है, ऐसे ही आनेवाला सुख बिना इच्छा किये भी आयेगा। सुखकी इच्छा करते-करते उम्र बीत गयी। बाकी समय भी बीत जायगा और मिलेगा कुछ नहीं। कम-से-कम अपने अनुभवका तो आदर करो। सुखकी इच्छा छोड़ दो तो दुःख मिट जायगा। **सन्तोंने अपना अनुभव बता दिया है—'चाख चाख सब छाड़िया, माया रस खारा हो', इसलिये आप इसमें समय खराब मत करो।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मुक्त होनेपर कारणशरीर मिट जाता है और स्थूल तथा सूक्ष्मशरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। इसलिये जीवन्मुक्त महापुरुष 'विदेह' कहलाता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीर प्रकृतिके कार्य हैं। प्रकृतिके कार्यसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती। परमात्मप्राप्तिमें स्थूलशरीरकी महिमा नहीं है, प्रत्युत विवेकशक्तिकी महिमा है। यह विवेकशक्ति अनादि है और सबके भीतर है। विवेकशक्तिसे जड़ और चेतनका, कर्तव्य और अकर्तव्यका विभाग होता है। यह विवेक ही तत्त्वज्ञानमें परिणत होता है।

मुक्त स्वयं होता है। शरीर मुक्त नहीं होता। शरीरके साथ सम्बन्ध माननेसे स्वयंका बन्धन होता है। जिसका बन्धन होता है, उसीकी मुक्ति होती है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आप मानते हैं कि संसारका त्याग कठिन है, पर वास्तवमें कठिन नहीं है। आप परमात्माके साक्षात् अंश हैं। परन्तु आपने संसारको अधिक महत्त्व देकर उसे कठिन मान रखा है। संसारको इतना अधिक महत्त्व दे दिया कि अपने-आपको ही भूल गये! पहले उसे अधिक महत्त्व दे देते हैं, फिर उसे दूर करना चाहते हैं! इसलिये कठिनता दीखती है। जैसे, पहले बीड़ी-सिगरेटका व्यसन लगा लिया तो अब उसे छोड़ना कठिन दीखता है।

आप यह याद कर लिया करो कि हम उस भगवान्के अंश हैं, जिसके समान भी कोई नहीं है, फिर अधिक कैसे होगा! इसलिये आप मायासे डरो मत। **हम भगवान्के हैं—यह याद करनेसे अपने-आप बल आ जायगा।** हम अनाथ नहीं हैं, सनाथ हैं—इसको याद रखो। केवल भगवान्को याद न करनेके कारण आप हताश-निराश हो गये। भगवान्का बल क्या भगवान्के काम आयेगा? जैसे माँका दूध बच्चेके लिये होता है, माँके लिये नहीं, ऐसे ही भगवान्का बल हमारे लिये है। भगवान्का अंश होनेके कारण हम निर्बल नहीं हैं। हम जैसे भी हैं, भगवान्के हैं। कपूत क्या पूत नहीं होता?

**हम भगवान्के हैं, फिर हम चिन्ता क्यों करें? चिन्ता वह करे जो भगवान्का न हो।**

● भगवान्के सभी नाम कल्याण करनेवाले हैं, पर अपने इष्टके नामका जप करनेसे मन अधिक लगता है, जिससे लाभ अधिक होता है।



\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

एक बड़े आश्चर्यकी बात है कि जो हमारे साथ रहता ही नहीं, उसीसे मुक्त होना है। जो निरन्तर छूट रहा है, उसीको छोड़ना है। जो सदा हमारे साथ रहता है, उसीके साथ रहना है। आप कितना ही कसकर पकड़ो, कितनी ही मेहनत करो, शरीर-संसार एक दिन आपको छोड़ देंगे इसमें सन्देह नहीं है। आप उनको छोड़ दो तो निहाल हो जाओगे।

**श्रोता**—छोड़नेमें कठिनाई कहाँ है ?

**स्वामीजी**—आपने छोड़नेका विचार पक्का नहीं किया है, इसलिये कठिनाई है। उसके संयोगसे सुख होता है, उस सुखको आप छोड़ना नहीं चाहते—मूलमें यहाँ कठिनाई है। सुख मिलेगा नहीं, केवल वहम है। यह वहम आपको छोड़ना पड़ेगा। आजतक जितना सुख मिला है, उससे ज्यादा मिलनेका है नहीं। थोड़े-से सुखके लिये भयंकर दुःख भोगना पड़ता है—‘अनाराम कहे सुख एक रती, दुख मेरु प्रमाण ही पावता है’।

शरीर परिवार, समाज और संसारकी सेवाके काम आयेगा, इसके सिवाय किसी काम नहीं आयेगा। साधकके जीवनमें शरीरका कोई उपयोग नहीं है। भगवान् आपके हैं, सदा आपके रहेंगे, कभी आपको छोड़ेंगे नहीं। आप उनको पकड़ लो, उनके सम्मुख हो जाओ।

आप सच्चे हृदयसे भगवान्में लग जाओ—इसके समान संसारका कोई उपकार नहीं है, इससे बढ़कर कोई सेवा नहीं है, इससे बड़ा कोई पुण्य नहीं है।

संसारके पदार्थ आपके पास खुले आनेको तैयार हैं, बस, आप चाहना छोड़ दो। एकदम पक्की सच्ची बात है। इच्छा छोड़ दो तो वस्तुएँ अपने-आप आती हैं। इतना नफा किसी व्यापारमें नहीं है। त्यागरूपी व्यापारमें बड़ा भारी नफा है। भगवान्में लग जाओ तो आपका भाग्य बदल जायगा। संसार आपके लिये उदार हो जायगा।

जिसके भीतर कोई चाहना नहीं है, उसके पास कुछ भी नहीं हो तो भी उसके हृदयमें शान्ति होगी। परन्तु जिसके भीतर चाहना है, उसके पास लाखों-करोड़ों रुपये हों तो भी उसके भीतर अशान्ति रहेगी। उसे नींद लानेके लिये भी गोली लेनी पड़ेगी!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

‘हम भगवान्के हैं, भगवान् हमारे हैं’—यह बात आप दाँत भींचकर, आँखें मीचकर, छाती कड़ी करके मान लो! जब स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर भी अपना नहीं है, तो फिर संसारमें क्या चीज अपनी रही?

**श्रोता**—हम भगवान्को अपना मानते हैं, पर संसारका असर पड़ जाता है, क्या करें?

**स्वामीजी**—आप संसारके असरका जितना आदर करते हो, उतना सच्चाईका आदर नहीं करते। अगर आप सांसारिक असरको मिटाना चाहते हो तो कृपा करके मेरी बात मान लो कि उस असरको महत्त्व मत दो। दूसरेकी चीज भी अच्छी दीखती है, उसका असर पड़ता है, पर क्या आप उसको अपनी मानोगे? आप उस असरको महत्त्व देकर असली चीज खो रहे हैं! असर भले ही पड़ जाय, पर हम सच्ची बातको मानेंगे, असरको नहीं मानेंगे—यह पक्का विचार कर लो। असर सच्ची बातका पड़ना चाहिये। झूठे संसारका असर भी झूठा ही होगा, सच्चा कैसे होगा?

संसारका असर पड़ता है—इस बातको मानकर आप बड़े भारी लाभसे वंचित हो रहे हो! असर पड़ता है

तो पड़ने दो, पर मनमें समझो कि बात सच्ची नहीं है, ठगाई है। आप ठगाईमें तभी आते हो, जब उसे सच्चा मानते हो।

आप विचार करें कि असर किसपर पड़ता है? जिस जातिकी चीज है, उसी जातिका उसपर असर पड़ता है। **शरीर संसारकी जातिका है; अतः संसारका असर शरीरपर, मन-बुद्धिपर ही पड़ता है, आपपर नहीं।** उन मन-बुद्धिको अपना माननेके कारण ही आपपर असर पड़ता है, आप सुखी-दुःखी होते हो। एक कुत्तेके मन-बुद्धिका आपपर असर पड़ता है क्या? आप अभी-अभी इस बातको स्वीकार कर लो कि हमारे स्वरूपपर असर नहीं पड़ता, मन-बुद्धि-इन्द्रियोंपर असर पड़ता है। आप स्वयं बिल्कुल निर्लेप रहते हैं। यह मामूली बात नहीं है!

सच्ची बात यह है कि 'हम शरीर नहीं हैं, शरीर हमारा नहीं है'। मुक्तिमें शरीर काम आता ही नहीं। **भगवान्की तरफ चलनेवाले साधकमात्रके न स्थूलशरीर काम आता है, न सूक्ष्मशरीर काम आता है, न कारण-शरीर काम आता है।** यह बड़ी दामी बात है। बड़े-बड़े ग्रन्थोंमें समाधिकी बड़ी महिमा गायी गयी है, पर वह भी आपके काम नहीं आती। शरीर परिवार, समाज और संसारकी सेवाके काम आता है। आपके काम आनेवाली विशेष चीज है—कुछ भी चिन्तन न करना।

**मन अपना है ही नहीं, एकाग्र करके क्या करोगे?** जड़तासे सम्बन्ध-विच्छेद विवेकसे होता है, अभ्याससे नहीं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

कर्मयोगमें 'मेरेमें कोई कामना है ही नहीं'—इसकी स्मृति प्राप्त होती है। ज्ञानयोगमें 'मैं नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त हूँ'—इसकी स्मृति प्राप्त होती है। भक्तियोगमें 'मैं भगवान्का हूँ'—इसकी स्मृति प्राप्त होती है। इसको गीतामें अर्जुनने कहा है—'**स्मृतिर्लब्धा**' (१८/७३)। स्मृति प्राप्त होनेका आशय है कि वास्तविक तत्त्वका जो बोध हुआ है, यह नयी बात नहीं है, प्रत्युत पुरानी है, सदासे है। अब उधर (स्वाभाविकताकी तरफ) दृष्टि चली गयी, उसकी याद आ गयी। अब इसकी पुनः विस्मृति नहीं होगी। **मुक्ति होती नहीं, प्रत्युत मुक्ति है। जो होती है, वह मुक्ति नहीं होती।**

एक ज्ञान हमारे उद्योगसे होता है, एक ज्ञान भगवान्की कृपासे होता है; दोनोंमें बड़ा फर्क है। भगवान्का आशय था कि जो एकाग्रतासे गीताको सुनेगा और उसे मानेगा, उसको स्मृति प्राप्त हो जायगी। परन्तु अर्जुनका आशय है कि मैंने एकाग्रतासे गीता सुनी हो, मैंने उद्योग किया हो, उससे स्मृति प्राप्त हुई हो—यह बात नहीं है; मेरेको तो आपकी कृपासे स्मृति प्राप्त हुई है—'**त्वत्प्रसादान्मयाच्युत**' (गीता १८/७३)। कृपासे जो चीज प्राप्त होती है, वह अन्य उपायोंसे नहीं प्राप्त हो सकती। गुरुजनोंकी कृपासे जो लाभ होता है, वह अपने उद्योगसे नहीं होता।

**'मैं भगवान्का हूँ'**—यह बात सच्ची होते हुए भी ऐसा अनुभव नहीं होता। अनुभव होता है **भगवान्की कृपासे**। मथानियामें मैं गीताजीका मूल पाठ कर रहा था। पाठ करते हुए जिस एक बातकी स्मृति हुई, वह मेरे उद्योगसे नहीं हुई है। पहले गीतापर 'साधक-संजीवनी' टीका लिखी तो स्मृति हुई है, तभी लिखी, नहीं तो नयी बात लिखनेकी मनमें क्यों आती? टीका लिखनेपर भी विचार आया कि यह लिखना अधूरा है। टीका लिख देनेपर भी मथानियामें असन्तोष हुआ तथा और लिखनेकी मनमें आयी। तब 'साधक-संजीवनी-परिशिष्ट' लिखा। अब भी पूरा सन्तोष हुआ नहीं है। बातें और भी हैं, पर उनको कहना मेरे हाथकी बात नहीं है।

अहम् मिटनेपर अपनी सत्ताका अनुभव तो होता है, पर 'मैं जानकार हूँ'—ऐसा नहीं होता; क्योंकि **जहाँ 'मैं' होता है, वहाँ 'जानकार' नहीं होता और जहाँ 'जानकार' होता है, वहाँ 'मैं' नहीं होता।** जानना व्यक्तिगत नहीं होता। व्यक्तिगत जानना पण्डिताई होती है। अहम् (मैंपन) के साथ जो जानना होता है, उसमें अभिमान

होता है; परन्तु अहम्के बिना जो जानना होता है, उसमें अभिमान नहीं होता। इसे शरणानन्दजी महाराजने 'अभिमानशून्य अहम्' कहा है, जो व्यवहारमात्रके लिये होता है। मैं जानता हूँ—यही अनजानपना है।

जबतक मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ-अहम् साथमें हैं, तबतक अज्ञान है, बोध नहीं है। अभ्याससे एक नयी स्थिति बनती है, बोध नहीं होता। असली बोध नींदसे आँख खुलनेकी तरह अचानक होता है। यह कृपासे होता है, अपने उद्योगसे नहीं। कृपा कब, किस समय, कैसे होती है—यह भगवान् ही जानें। सर्वथा भगवान्के शरण हो जाओ, कृपा जरूर होगी—'भजत कृपा करिहहिं रघुराई' (मानस, बाल.२००/३)। अपना पुरुषार्थ पूरा करना है, पर करना है भगवान्का आश्रय रखकर—'मामाश्रित्य यतन्ति ये' (गीता ७/२९)।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यशरीरकी जो महिमा है, वह वास्तवमें विवेकशक्तिकी महिमा है, जड़ शरीरकी नहीं। विवेक प्रकृतिका कार्य नहीं है, प्रत्युत भगवत्प्रदत्त शक्ति है। वह विवेक सबमें समानरूपसे है। परन्तु भोग और संग्रहकी तरफ ज्यादा वृत्ति होनेसे वह विवेक जाग्रत् नहीं होता। विवेक जाग्रत् होता है भोग तथा संग्रहकी इच्छा मिटनेसे।

अच्छे-अच्छे साधक भी सबसे पहले सुख-सुविधा देखते हैं कि ऐसी सुविधा मिले तो भजन करें। सुविधा न मिले तो भजन नहीं बनता। अब विवेक जाग्रत् कैसे होगा? आरामसे रहनेकी इच्छा मुख्य है, भजन करनेकी इच्छा गौण है। अनुकूलतामें साधन बढ़िया नहीं होता, उल्टे भोग होता है। एकान्तमें भजन ज्यादा होता है या नींद ज्यादा आती है, खुद सोचो।

भजन सुविधा अथवा दुविधाके अधीन नहीं है। सुख-सुविधाकी इच्छा भोग है। चाहे दुःख मिले या सुख, भजन बढ़ना चाहिये। अनुकूलता आये या प्रतिकूलता, हमारा मन भगवान्में लगाना चाहिये, हमारी चालमें फर्क नहीं आना चाहिये।

एक बुद्धिकी 'स्थिरता' होती है, एक बुद्धिकी 'तीक्ष्णता' होती है। बुद्धिकी स्थिरता कामकी है, तीक्ष्णता कामकी नहीं है। एक परमात्माको ही प्राप्त करना है—ऐसी स्थिरता होनी चाहिये।

श्रोता—हमारे विवेकको तो अज्ञानने ढक लिया है—'अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्' (गीता ५/१५), अब हम क्या करें?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे मेरे नाथ!!' ऐसे भगवान्को पुकारो, सब ठीक हो जायगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

हम जितनी सांसारिक चीजोंको अपना मानते हैं, उतनी ही आफत है! वस्तुओं और व्यक्तियोंमें जितना अपनापन करेंगे, उतने ही फँसेंगे। इसलिये अपनापन न करें और सेवा करें। ममता करनेसे बन्धन होता है और ममता न करके सेवा करनेसे कल्याण होता है। सेवा हरेककी करो, पर अपना किसीको मत मानो। अपना मानकर सेवा करोगे तो वह सेवा रद्दी हो जायगी। कुतिया भी अपने बच्चोंका पालन करती है। शीतकालमें आप अपने घरवालोंको कम्बल देते हैं तो कोई पुण्य नहीं होता; परन्तु जिनमें अपनापन नहीं है, उनको कम्बल देनेसे पुण्य होता है। अगर घरवालोंमें ममता, स्वार्थबुद्धि न रखकर सेवा करें तो उसका भी पुण्य हो जायगा।

सेवा-सामग्री भी अपनी नहीं है, प्रत्युत उनकी है, जिनकी सेवा की जाती है। उन्हींकी वस्तु उन्हींको दे दी तो फिर सकामभाव कैसे आयेगा? हम भगवान्के हैं, भगवान् हमारे हैं; अतः अपने-आपको भगवान्के समर्पित कर दें। संसारकी चीज संसारको दे दें, भगवान्की चीज भगवान्को दे दें। न संसारसे कुछ लेना है, न भगवान्से कुछ लेना है।

सेवा करनेमें जो परिश्रम होता है, उससे 'अहंता' कम होगी और वस्तु देनेसे 'ममता' कम होगी। सेवा करनेसे आपसमें प्रेम बढ़ेगा। जहाँ आपसमें प्रेम बढ़ता है, वहाँ लक्ष्मी बढ़ती है और जहाँ आपसमें कलह होती है, वहाँ लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। इस तरह सेवा करनेसे लौकिक और पारलौकिक दोनों लाभ हैं।

सेवा करनेवालेको आदर भी ज्यादा मिलता है, शान्ति भी ज्यादा मिलती है। परन्तु आदर, मान-बड़ाई आदि पानेके लिये सेवा करनेसे सेवाकी बिक्री हो जाती है।

गृहस्थमें रहते हुए सबके हितके लिये काम करो तो आपका जीवन सफल हो जायगा, आप एकान्तमें बैठकर भजन करनेवाले महात्मासे कम नहीं रहोगे—

**त्यागी सोभा जगत में, करता है सब कोय।**

**हरिया गिरसत साध का, भेदी विरला होय॥**

जड़ताके साथ हमारा सम्बन्ध ही नहीं है—यह छोटी-सी बात मान लो तो निहाल हो जाओगे। यह सिद्धान्तकी बात है कि जो चीज हमारे जाननेमें आती है, वह हमारी नहीं होती। जो चीज हमारी नहीं है, उसके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति कैसे हो जायगी? अनन्त ब्रह्माण्ड मिलकर भी हमारी आवश्यकताकी पूर्ति नहीं कर सकते। कारण कि ब्रह्माण्ड नाशवान् हैं, हमारी आवश्यकता अविनाशी है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

एक भगवान्के सिवाय कोई चीज मेरी नहीं—यह मान लो तो निहाल हो जाओगे। इसके समान आनन्दकी, शान्तिकी दूसरी कोई बात है ही नहीं! यह सब शास्त्रोंकी, सन्त-महात्माओंकी सार बात है। नामजप, भजन, कीर्तन आदि कोई साधनकी जरूरत नहीं, मन चाहे वशमें करो या न करो, बस, इतना मान लो कि भगवान्के सिवाय कोई चीज हमारी है ही नहीं। भगवान् कैसे हैं, इससे हमें कोई मतलब नहीं। वे जैसे भी हैं, हमारे हैं। भगवान्के बिना सूईकी नोक जितनी जगह भी खाली नहीं है, पर अपना माने बिना वे आपके काम नहीं आयेंगे।

अपने तन-मन-धनसे सेवा सबकी करो, पर अपना केवल भगवान्को ही मानो। आज जितना दुःख हो रहा है, वह सब दूसरेको अपना माननेसे, दूसरेसे सम्बन्ध जोड़नेसे ही हो रहा है। कोई वस्तु अपनी नहीं है—ऐसा मान लो तो आज ही सब झंझट मिट जाय। वस्तुको अपना माना कि फँसे, मुफ्तमें! वस्तुको अपनी मानते ही आफत शुरू हो जाती है। अपनी मत मानो तो कोई आफत नहीं, चिन्ता नहीं, शोक नहीं। उन्हें अपना मानना धोखा है। एक दिन वे सब आपको छोड़ देंगे। यहाँ सब मरने-ही-मरनेवाले इकट्ठे हुए हैं, साथ रहनेवाला कोई नहीं। केवल भगवान् ही सदा साथ रहनेवाले हैं। मीराने भगवान्को अपना पति माना। ईसा मसीहने अपना पिता माना। मुहम्मद साहबने अपना दोस्त माना। उनके साथ चाहे जो सम्बन्ध मान लो।

संसारमें रत्तीभर भी चीज हमारी नहीं है। न मन हमारा है, न इन्द्रियाँ हमारी हैं, न बुद्धि हमारी है, न प्राण हमारे हैं। यह सर्वस्व दान है! बड़ा भारी त्याग है। नुकसान कोई है नहीं, लाभ बड़ा भारी है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यको भूत और भविष्यकी चिन्ता बिल्कुल नहीं करनी है, वर्तमानको ठीक करना है। वर्तमान ठीक होगा तो भूत और भविष्य दोनों ठीक हो जायँगे। वर्तमान ही भूत बनता है और भविष्य वर्तमानमें ही आता है। एक वर्तमानको ठीक करो तो सब ठीक हो जायगा। इसलिये अपना वर्तमान जीवन शुद्ध बनाओ। वर्तमान ठीक होगा 'सावधानी' से। ऐसी सावधानी रखो कि कोई काम शास्त्र-विरुद्ध, धर्म-विरुद्ध, मर्यादा-

विरुद्ध न हो। वर्तमानमें निर्भय, निःशंक, निःशोक और निश्चिन्त रहो। जितने सन्त हुए हैं, उन्होंने वर्तमानको ही ठीक किया है, भूत-भविष्यकी चिन्ता नहीं की है। अभी हम जो कार्य करते हैं, उसका भविष्यमें क्या परिणाम होगा—ऐसा विचार करना भी वर्तमानको ठीक करनेके लिये ही है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**काम-क्रोधके वेगसे कैसे बचें?

**स्वामीजी—**हरदम भगवान्से कहते रहो 'हे नाथ! मुझे बचाओ'। आप उकताना नहीं। प्रार्थना करना छोड़ो मत। यह विश्वास रखो कि भगवान् बचायेंगे। भगवान् जरूर बचायेंगे। भगवान्से की प्रार्थना निष्फल नहीं जाती। हरदम कहते-कहते कभी चट काम हो जायगा।

**श्रोता—**साधक एकान्तमें रहकर साधन करता है, इसके बावजूद भी उसके साधनमें बाधाएँ आती हैं तो वे प्रारब्धसे आती हैं या साधनकी कमीसे आती हैं?

**स्वामीजी—**कमी अपनी नीयतकी है। अपनेको भगवान्के पूर्ण अर्पण नहीं किया। हरदम भगवान्को याद नहीं करता, बीचमें खाली समय जाता है। इसमें प्रारब्ध कुछ नहीं है। अपनी कमी है। अपनी कमी ढूँढ़ते रहो और दूर करते रहो। फिर एकदम ठीक हो जायगा।

प्रारब्धका फल भुगतानेवाले भगवान् हैं, इसलिये प्रारब्ध बढ़िया ही होता है, बुरा होता ही नहीं—'क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः' (पाण्डवगीता २३)। खराब-से-खराब प्रारब्ध भी बढ़िया होता है; आपके पापोंका नाश करनेवाला, कल्याण करनेवाला होता है।

'हे नाथ, मैं आपको भूलूँ नहीं—यह कहते रहो, फिर सब काम अपने-आप ठीक हो जायगा। हनुमान्जी सीताकी खबर लेकर आये तो पहले भगवान्से बोले—

**नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।**

**लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥**

(मानस, अरण्य.३०)

फिर हनुमान्जी बोले—

**सीता कै अति बिपति बिसाला । बिनहिं कहें भलि दीनदयाला ॥**

(३१/५)

तब भगवान् हँसकर बोले—

**बचन कायँ मन मम गति जाही । सपनेहुँ बूझिअ बिपति की ताही ॥**

(३२/१)

यह सुनते ही हनुमान्जीको अपनी भूल समझमें आयी और अपनी भूल स्वीकार करते हुए वे बोले—

**कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई । जब तव सुमिरन भजन न होई ॥**

(३२/२)

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

हमें किससे मुक्त होना है और किसको प्राप्त करना है—यह दो बात है। मुक्त होना है शरीर-संसारसे, और प्राप्त करना है परमात्माको। जिनसे आप मुक्त होना चाहते हैं, वे शरीर-संसार निरन्तर आपका त्याग कर रहे हैं, एक क्षण भी आपके साथ नहीं रहते। जिन परमात्माको प्राप्त करना है, वे एक क्षण भी आपसे दूर नहीं होते। संसारको साथ आप रख सकते नहीं और परमात्माका त्याग आप कर सकते नहीं। इस बातको आप स्वीकार कर लें। इसकी जिम्मेवारी आपपर है; क्योंकि शरीर-संसारसे आपने सम्बन्ध माना है और परमात्मासे आप विमुख हुए हैं।

आपको कोई प्रयत्न करनेकी जरूरत नहीं। केवल अपनी चाह छोड़ दो। कोई भी चाह मत करो, न संसारको छोड़नेकी, न परमात्माको पकड़नेकी; न जीनेकी, न मरनेकी। चाह छोड़ते ही सर्वथा मुक्त हो जाओगे।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आपका शरीर आपके लिये नहीं है, प्रत्युत कुटुम्ब, समाज और संसारके लिये है। आपके लिये परमात्मा हैं। दो बातें हैं—‘जानना’ और ‘मानना’। जिसके विषयमें कुछ जानते हैं अर्थात् पूरा नहीं जानते, वह जाननेकी चीज होती है। जिसके विषयमें कुछ नहीं जानते, वह माननेकी चीज होती है। संसार जाननेकी चीज है, परमात्मा माननेकी चीज है। संसार भगवान्की ‘अपरा प्रकृति’ है। बड़ी भूल यह हुई है कि भगवान्को भूलकर उनकी अपरा प्रकृतिको अपना मान लिया। कोई राजकीय चीजको अपना मान ले तो उसका दण्ड होता है। शरीरादि वस्तुएँ तो आपके साथ रहेंगी नहीं, पर दण्ड भोगना पड़ेगा, दुःख पाना पड़ेगा।

**श्रोता**—कोई चीज गुम हो जाय अथवा चोरी हो जाय तो उसे वापिस प्राप्त करनेकी कोशिश करनी चाहिये या नहीं?

**स्वामीजी**—उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करना हमारा कर्तव्य है। अगर वह चीज हमारी (हमारे हककी) है तो मिलेगी, हमारी नहीं है तो नहीं मिलेगी, चाहे कितना ही प्रयत्न कर लो। आप उसे भगवान्के अर्पण कर दो। जैसे, आपका लाख रुपया चोरी हो गया तो उसे हृदयसे भगवान्के अर्पण कर दो। आपको लाख रुपया दान करनेका पुण्य हो जायगा। आपकी चिन्ता मिट जायगी। वस्तु खो जाय तो चिन्ता होती है, पर दान करनेसे चिन्ता नहीं होती।

**श्रोता**—अगर वह रुपया वापिस मिल जाय तो क्या करें?

**स्वामीजी**—उसको काममें न लेकर दान-पुण्यमें लगा दो; क्योंकि संकल्प कर दिया।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यके उद्धारके लिये अभी एक मौका है। यह चूकनेके बाद फिर ऐसा अवसर मिलनेकी सम्भावना नहीं है! आज जो मौका मिला है, ऐसा मौका बार-बार नहीं मिलेगा। संसारकी तरह-तरहकी बातें तो मिल जायँगी, पर अपने उद्धारकी ऐसी बातें मिलेंगी नहीं। यह एकदम पक्की बात है।

आप अपनी तरफसे पूरी चेष्टा करो, कमी मत रखो तो परमात्मप्राप्ति जरूर हो जायगी। अगर नहीं होगी तो भगवान् दुबारा शक्ति देंगे, दुबारा मौका देंगे (देखें, गीतामें योगभ्रष्टका विषय ६/४०-४४)। सांसारिक उन्नति नहीं हो तो कोई हानि नहीं है। परन्तु पारमार्थिक उन्नति नहीं की तो बड़ी भारी हानि है!

जिसके भीतर भक्तिके संस्कार हैं, उसको जबतक प्रेमकी प्राप्ति नहीं होती, तबतक भगवान् तत्त्वज्ञानमें, जीवन्मुक्तिमें भी सन्तोष नहीं करने देते, उसमें टिकने नहीं देते। यह भगवान्का स्वभाव है। प्रेमकी प्राप्ति सबको हो सकती है। ‘मैं भगवान्का हूँ, भगवान् मेरे हैं’—यह भाव दृढ़ हो जाय तो प्रेम हो जायगा।

मनुष्यको करोड़ों-अरबों रुपये मिल जायँ, पृथ्वीका राज्य मिल जाय, त्रिलोकीका राज्य मिल जाय तो भी उसको सन्तोष नहीं होता। यह सन्तोष नहीं होने देना भगवान्की कृपा है। मनुष्यको किसी भी परिस्थितिमें सन्तोष नहीं होता यह भगवान्की कृपाकी पहचान है। यह भगवान्का आह्वान है कि इसमें फँसो मत, मेरी तरफ आओ।

सब बातोंका पूरा पालन कोई कर सकता ही नहीं। कमी सबमें रहती है। कोई भी आदमी यह नहीं कह सकता कि मेरेमें कोई कमी नहीं है। इसलिये अपनी नीयत ठीक होनी चाहिये। नीयतमें कमी न रखें।



● दूसरेकी निन्दा, खण्डन करना कल्याणका उपाय नहीं है। जिस सज्जनने पुराणोंकी, शास्त्रोंकी, सनातनधर्मकी, मुसलमानोंकी, ईसाइयोंकी सबकी बहुत निन्दा की, उसने भी यह नहीं बताया कि निन्दा, खण्डन करनेसे मुक्ति होती है!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

गुरु बनाना हो तो ऐसा बनाना चाहिये कि गुरुजीको मालूम ही न हो कि मेरा कोई चेला है। दत्तात्रेयजीने चौबीस गुरु बनाये, पर किसी गुरुको मालूम नहीं हुआ कि दत्तात्रेय मेरा चेला है। गुरुका मतलब है उनसे शिक्षा लेना, उनकी बात मानना, उनके सिद्धान्तको मानना। बनावटी गुरु कामका नहीं होता। दत्तात्रेयने गुरु बनाया तो उससे शिक्षा ली। उन्होंने पिंगला वेश्याको गुरु बनाया तो क्या पिंगला वेश्यामें गुरुके लक्षण थे?

आजकल गुरु तो बना लेते हैं, पर उनकी बात मानते नहीं। क्या दशा होगी? जो गुरुकी बात नहीं मानता, उसका कल्याण होना दूर रहा, उल्टे अपराध होगा, नरकोंकी प्राप्ति होगी। अगर बिना गुरु बनाये उनकी बात माने तो फायदा होगा, और न माने तो नुकसान नहीं होगा। मैं आपको जो बातें कहता हूँ, आपको आप मानो तो फायदा होगा, नहीं मानो तो नुकसान नहीं होगा। परन्तु अगर आप गुरु बना लो और मैं गुरु बन जाऊँ और मेरी बातका तिरस्कार करो तो भगवान् भी आपको माफी नहीं दे सकते।

सुनु सरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥

जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥

(मानस, अयोध्या. २१८/२-३)

अतः गुरु बनाना मुख्य नहीं है, उनकी बात मानना मुख्य है। गुरु बनाना बड़ी आफतमें जाना है! इसलिये आप किसीको गुरु मत बनाओ और जो ज्ञान मिला है, उसके अनुसार चुपचाप अपना जीवन बनाओ। माता-पिताकी बात न माननेका इतना अपराध नहीं है, जितना गुरुकी बात न माननेका अपराध है। कारण कि माँ-बाप आपने जानकर नहीं बनाये हैं, पर गुरुको आप बनाते हो। एक मार्मिक बात है, विवाह सबका होता है, पर स्वयंवर (अपनी इच्छासे विवाह) करनेवालेपर बड़ी भारी जिम्मेवारी होती है। सीताजी, द्रौपदी, दमयन्ती आदिने स्वयंवर किया तो उनको बहुत दुःख सहने पड़े।

भगवान्का नाम लेना चाहिये—यह ज्ञान आप सबको है। जिससे आपको यह ज्ञान मिला, वह आपका गुरु हो गया, आप चाहे जानो या न जानो, मानो या मत मानो। जब अच्छाई-बुराईका ज्ञान आप सबको है तो फिर आप निगुरे (बिना गुरुके) कैसे हुए?

शरणानन्दजीसे किसीने पूछा कि आपका गुरु कौन है? वे बोले कि जो मेरेसे ज्यादा जानता है, वह मेरा गुरु है। फिर पूछा कि आपका चेला कौन है? वे बोले कि जो मेरेसे कम जानता है, वह मेरा चेला है।

भगवान्ने मनुष्यशरीर स्वतन्त्र होनेके लिये दिया है, परतन्त्र होनेके लिये दिया ही नहीं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अगर अपने बलसे विकार दूर न हों तो बार-बार 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!! बचाओ!!' कहकर भगवान्को पुकारो। भगवान् सर्वज्ञ भी हैं, परम दयालु भी हैं और सर्वसमर्थ भी हैं, फिर हम दुःख क्यों पायें? यद्यपि भीतरमें राग-द्वेष, काम-क्रोध, मोह आदि वृत्तियाँ रहनेके कारण सच्ची प्रार्थना होती नहीं, फिर भी बार-बार प्रार्थना करते रहो। जैसे मोटरको स्टार्ट करते समय बार-बार चाबी घुमाते-घुमाते कभी एक ही चाबीसे मोटर स्टार्ट हो जाती है, ऐसे ही प्रार्थना करते-करते कभी हृदयसे सच्ची प्रार्थना निकलेगी तो काम हो जायगा।

नामजप करनेकी अपेक्षा 'हे नाथ! हे नाथ!!' यह पुकार ऊँचे दर्जेकी चीज है।

छोटा बालक माँ-माँ करता है तो उसका लक्ष्य, ध्यान, विश्वास 'माँ' शब्दपर नहीं होता, प्रत्युत माँके सम्बन्धपर होता है। ताकत 'माँ' शब्दमें नहीं है, प्रत्युत माँके सम्बन्धमें है। इसी तरह जो ताकत भगवान्के सम्बन्धमें है, वह नाममें नहीं है। बालक माँ-माँ करके रोता है तो यह नहीं देखता कि कितनी बार माँ-माँ कहना है, कितने मिनटतक रोना है।

नामजपमें सार चीज नामी (भगवान्) का सम्बन्ध है। भगवान्के साथ जितना सम्बन्ध होगा, उतनी जल्दी सिद्धि होगी। भगवान्का सम्बन्ध सच्चा है, क्रियाका सम्बन्ध कच्चा है। ताकत सम्बन्ध (मेरापन) में है। इसलिये 'हे नाथ!' कहनेकी अपेक्षा 'हे मेरे नाथ!' कहनेमें ज्यादा ताकत है। 'मेरा' कहते ही आपका सम्बन्ध भगवान्के साथ हो जाता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यके बन्धनका खास कारण है—भोग भोगनेकी रुचि और संग्रह करनेकी रुचि। इनके रहते कल्याण नहीं हो सकता। भोग और संग्रह बाधक नहीं हैं, प्रत्युत इनकी रुचि, इच्छा बाधक है। अगर आपको कल्याण करना है तो ये दो इच्छाएँ मिटानी होंगी। जड़ वस्तुका सहारा बन्धनकारक है, चाहे वह भोगरूपसे हो, चाहे संग्रहरूपसे हो। जबतक सुख-सुविधापर दृष्टि रहेगी, तबतक पारमार्थिक उन्नति नहीं होगी। वह पारमार्थिक बातें सुन लेगा, बातें अच्छी भी लगेंगी, पर उसमें स्थिति नहीं होगी।

जबतक आपके भीतर भोग और संग्रहकी इच्छा है, तबतक भले ही संसारमें आपकी महिमा, प्रशंसा, प्रसिद्धि, वाह-वाह हो जाय, जलूस निकाला जाय, मरनेके बाद आपका मन्दिर बनाया जाय, पर मुक्ति नहीं होगी।

आप खुद अपनी परीक्षा करो कि आपको भगवान् अच्छे लगते हैं कि संसार अच्छा लगता है? भगवान्में प्रियता है कि संसारमें प्रियता है अथवा दोनोंमें ही प्रियता है? ज्यादा भगवान्का चिन्तन होता है कि संसारका? आपके जीवनमें भगवान्का सम्बन्ध ज्यादा है कि संसारका सम्बन्ध ज्यादा है? भगवान्का सम्बन्ध ज्यों-ज्यों बढ़ेगा, त्यों-त्यों आपकी उन्नति होगी; और संसारका सम्बन्ध ज्यों-ज्यों बढ़ेगा, त्यों-त्यों पतन होगा।

साधकमात्रको सांसारिक सुखका त्याग करना ही पड़ेगा, तभी वह वास्तवमें 'साधक' होगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

श्रोता—आप कहते हैं कि अभिमान शरणागतिमें बाधक है, पर अभिमान मनसे निकले कैसे?

स्वामीजी—जब कभी अपनेमें अभिमान दीखे तो 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!!' पुकारो तो जैसे दूध उफनता हो तो ठण्डा पानी डालनेसे चट बैठ जाता है, ऐसे अभिमान ठण्डा पड़ जायगा, बैठ जायगा।

श्रोता—भगवान्में अनुराग कैसे हो?

स्वामीजी—इस प्रश्नको हरदम मनमें रखो, इसको भूलो मत। केवल इसको याद रखो और बार-बार कहते रहो कि 'हे नाथ, आपमें अनुराग हो जाय'। एक, दो, तीन, चार या पाँच मिनटमें कहते रहो, पाँच मिनटसे ज्यादा न हो। पाँच मिनटसे ज्यादा हो जाय तो एक समय भोजन मत करो।

भगवान्के चरणोंकी शरण होकर केवल 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!!' कह दो। पाँच मिनटसे ज्यादा देरी न हो। अगर यह भी न कर सको तो दस मिनटमें कह दो। दस मिनटसे ज्यादा हो तो एक समय उपवास करो। नींद आ जाय तो जब जागो, तब कह दो कि 'हे नाथ, मैं आपको भूलूँ नहीं'। मन लगे चाहे न लगे, कहना छोड़ो मत। करके देखो कि लाभ होता है कि नहीं होता। भगवान्के सामने की हुई प्रार्थना निरर्थक नहीं जाती।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

तत्त्वज्ञान और प्रेम दोनों नित्य हैं। ये पैदा नहीं होते, जाग्रत् होते हैं। पैदा होनेवाली चीज नष्ट होनेवाली होती है। मुक्ति और प्रेम अभी हैं। सम्पूर्ण जीवोंकी मुक्ति स्वतः-स्वाभाविक है। प्रेम भी सबमें है, पर वह अभी आसक्तिके रूपमें है। सांसारिक चीजोंमें जो खिंचाव है, वह आसक्तिके रूपमें प्रेम ही है।

प्रेम ऐसा है, जो प्रतिक्षण बढ़ता है। परन्तु ज्ञान एकरूप रहता है। **भगवान् प्रेमके भूखे हैं, ज्ञानके भूखे नहीं। प्रेमके जाग्रत् होनेमें भगवान्की कृपा मुख्य है, अपना उद्योग अथवा पुरुषार्थ मुख्य नहीं है।** तत्त्वज्ञान भगवान्को न माननेपर भी हो सकता है, पर प्रेम नहीं हो सकता। तत्त्वज्ञान होना भी उन्नति है, पर प्रेम होना सार्वभौम उन्नति है।

भगवान्की कृपा अनुकूल-प्रतिकूल हरेक परिस्थितिमें रहती है। हमारा आदर हो तो भगवान्की कृपा है, निरादर हो तो भगवान्की कृपा है। हमारी महिमा हो, लोग हमें अच्छा समझें तो भगवान्की कृपा है, लोग हमारा तिरस्कार, अपमान करें तो भगवान्की कृपा है। जैसे अच्छे वैद्यकी कड़वी दवा भी गुणकर्ता होती है, ऐसे ही भगवान्की भेजी प्रतिकूलता भी गुणकर्ता होती है। **हरेक परिस्थितिमें भगवान्की कृपाको माने, तब प्रेम प्रकट होता है।** अनुकूलता हो या प्रतिकूलता हो, भीतरसे हरदम 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!!' कहते रहो।

प्रेम जाग्रत् करना हो तो अपने स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके दूसरेका हित करनेकी चेष्टा करो। सम्पूर्ण जीवोंके हितकी भावना होनेपर भगवान् प्रेम देते हैं, तत्त्वज्ञान देते हैं—**'सर्वभूतहिते रताः'** (गीता ५/२५; १२/४)।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**जड़ताके साथ सम्बन्ध मत रखो तो जड़ता बाधक नहीं है।** परमात्माकी प्राप्ति जड़ताके द्वारा नहीं होती, जड़ताके सम्बन्ध-विच्छेदसे होती है—यह बड़ी मार्मिक बात है। आपके पास शरीर आदि जो भी वस्तुएँ हैं, वे आपके लिये नहीं हैं, संसारके हितके लिये हैं। उनकी रक्षा करना और उनको दूसरोंके हितमें लगाना आपका काम है। वस्तुएँ हमारे लिये नहीं हैं, उनसे की गयी सेवा हमारे लिये है। वह सेवा हमारा कल्याण करेगी।

**श्रोता**—संसारका सम्बन्ध तो नहीं छूटा, पर सत्संग सुननेसे क्या हमारा कल्याण हो जायगा?

**स्वामीजी**—केवल सत्संग सुननेसे कल्याण नहीं होगा। जो सुना है, उसके अनुसार अपना जीवन बनाओ। इसलिये गीतामें **'तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः'** (१३/२५) कहा है अर्थात् जैसा सुना है, उसके परायण होनेसे, उसके अनुसार आचरण करनेसे कल्याण होगा। आपको सत्संगमें कोई बात अच्छी लगती है तो उसको सुनकर आप छोड़ देते हो। यह छोड़नेकी आदत बड़ी खराब है, जिससे लाभ नहीं होता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

वक्ताकी चाल केवल दूसरोंको सुनानेकी होती है। परन्तु **जो अच्छे वक्ता होते हैं, वे अच्छे श्रोता भी होते हैं।** वे सुनाते हुए स्वयं भी सुनते हैं कि मुझे भी इन बातोंके अनुसार अपना जीवन बनाना है। परन्तु जिनका उद्देश्य केवल सुनानेका रहता है, वे रीते रह जाते हैं, उनका कल्याण नहीं होता। दूसरोंको समझाना दो नम्बरकी बात है। एक नम्बरकी बात है—अपनेको समझाना। दूसरा हमारी बात माने—इसकी अपेक्षा बढ़िया यह है कि हम हमारी बात मानें। हम अपनी बात मानेंगे तो हमारी बातका असर दूसरेपर पड़ेगा।

ये हमारे सत्संगी हैं, हमारे चेला-चेली हैं—इस प्रकार दूसरोंसे सम्बन्ध जोड़नेवालेका कल्याण नहीं होता। **जो अपना कल्याण चाहता है, वह किसी भी मनुष्यसे सम्बन्ध न जोड़े।** माता-पिता, भाई-भौजाई आदि कुटुम्बियोंसे भी सम्बन्ध न जोड़े, प्रत्युत उनकी सेवा करे।

जिनकी सेवा करे, उनको अपना न माने, और जिनको अपना नहीं मानते, उनकी सेवा करे। दोनोंका परिणाम

एक होगा। अपना माननेसे बन्धन होगा, सेवा करनेसे कल्याण होगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—गुरुके बिना कल्याण नहीं हो सकता, पर आप कहते हैं कि कल्याण होता है?

**स्वामीजी**—गुरुकी महिमा जितनी कही जाय, थोड़ी है। परन्तु आजकलके गुरुकी महिमा नहीं है। आजकलके गुरु भेंट-पूजाके लिये हैं। जिन्होंने गुरु बनाया है, उनके चिन्ता-शोक क्या मिट गये? आज गुरु बनते हैं अपना सम्प्रदाय, अपनी टोली बनानेके लिये। वे हमारा कल्याण कैसे करेंगे? जिसके बेटे-पोते ज्यादा होते हैं, उसका क्या कल्याण हो जाता है? संसारके साथ जितना सम्बन्ध जोड़ेंगे, उतना ही पतन होगा। जिसने ज्यादा शिष्य बना लिये, उसका पतन निश्चित है। उसका अपना कल्याण ही नहीं होगा, फिर दूसरेका कल्याण कैसे करेगा?

गुरुकी महिमा भगवान्से भी अधिक है! सब जगह परिपूर्ण परमात्मा गुरुकी कृपासे दीखते हैं। अगर संसार परमात्मस्वरूप न दीखे तो गुरु कैसा?

गुरुको चलेकी याद आती है तो उसका पतन होता है। चलेको गुरुकी याद आती है तो वह असली चेला नहीं बना, उसने गुरुकी आज्ञाके अनुसार जीवन नहीं बनाया। गुरुका सिद्धान्त याद आना चाहिये, गुरु नहीं। आप एकनाथजी महाराजका जीवन-चरित्र पढ़ें। उनके जैसी तेज गुरुभक्ति कहीं देखनेमें नहीं आयी। तीर्थयात्रा करते समय गुरुजीका समाचार मिला कि 'वहीं रहना', तो वे वहीं बैठ गये, फिर जीवनभर कभी गुरुसे मिलने नहीं गये।

**श्रोता**—हम कौन-से मन्त्रका जप करें?

**स्वामीजी**—जो आपको प्रिय लगे, उस मन्त्रका जप करें। मेरेसे लोग पूछते हैं तो मैं यही बात कहता हूँ कि आपको भगवान्का जो नाम प्रिय लगे, जो स्वरूप प्रिय लगे, उसीमें आपका कल्याण है। कारण कि **प्रियता कल्याण करनेवाली है, क्रिया नहीं।**

● आजकल कहते हैं कि सब एक साथ भोजन करो; परन्तु इससे परिणाममें पतन होगा। एक साथ भोजन करनेसे आपकी पवित्रता, शुद्धि तो दूसरेमें जायगी नहीं, पर दूसरेकी अपवित्रता, अशुद्धि आपमें आ जायगी। ऐसी बात देखी गयी है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

संसारमात्रमें गीता एक ही है। इसकी जोड़ीकी दूसरी पुस्तक नहीं है। इस ग्रन्थपर जितनी टीकाएँ लिखी गयीं, उतनी किसी ग्रन्थपर नहीं लिखी गयीं। अब भी टीकाएँ लिखना बन्द नहीं हुआ है। इसका जितना भी विवेचन किया जाय, उतना ही थोड़ा है। इसमें बड़े विचित्र गहरे भाव भरे हुए हैं। ज्यों-ज्यों इसका मनन करते हैं, त्यों-ही-त्यों विलक्षण भाव प्रकट होते हैं। मुझे तो गीतासे बहुत लाभ हुआ है। गीतासे ही ज्ञान मिला है। रोजाना नयी-नयी बातें मिलती हैं।

**गीताको जाननेवाला उस विषयका भी वर्णन कर सकता है, जो विषय गीतामें नहीं है।** गीता पढ़नेवाला अन्य शास्त्रोंकी बातें भी जान लेता है। उसकी बुद्धि विचित्र हो जाती है। शरणानन्दजी महाराजको गुरुने कहा कि तुम भगवान्के शरण हो जाओ तो वे भगवान्के शरण हो गये, और नाम भी 'शरणानन्द' रख लिया। उनकी पुस्तकें आप पढ़ो तो बड़ी विचित्र बातें मिलेंगी। गीताकी अलौकिक बातें उनमें अपने-आप प्रकट हो गयीं।

ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं मिलेगा, जिसका माहात्म्य उस ग्रन्थसे बड़ा हो। परन्तु गीताका माहात्म्य गीतासे भी बड़ा है! गीताके सात सौ श्लोक हैं, पर माहात्म्यके ग्यारह सौ श्लोक हैं। हरेक अध्यायका अलग माहात्म्य है। गीतामें किसीका पक्षपात नहीं है। इसलिये अन्य धर्मावलम्बी भी गीताको पढ़ते हैं, उसका आदर करते हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—गीतामें आया है कि आत्मा अचल है, कहीं आता-जाता नहीं (२/२४), फिर चौरासी लाख योनियोंमें कौन आता-जाता है?

**स्वामीजी**—क्रियाशीलता प्रकृतिमें ही है। तत्त्वमें कोई क्रिया होती ही नहीं। जीव अपरा प्रकृतिके अहम्को पकड़ लेता है, तब उस अहम्की गति होती है। अतः प्रकृति गतिशील है, आत्मा नहीं। चौरासी लाख योनियोंमें आत्मा नहीं जाता, प्रत्युत अहम्के साथ एकता माननेवाला जाता है।

**आप अपने स्वरूपको 'यह मैं हूँ' इस तरह इदंतासे नहीं देख सकते।** आपका स्वरूप केवल सत्ता है। वह न अच्छा है, न मन्दा; न भला है, न बुरा; न अनुकूल है, न प्रतिकूल। सत्ताका जन्म-मरण नहीं होता। उसमें कभी विकृति नहीं होती। उस सत्ता अर्थात् 'है' को अहम्के साथ मिला लेनेसे 'मैं हूँ' हो जाता है। इस अहम् ('मैं') के सम्बन्धसे ही जन्म-मरण होते हैं। अहम्से रहित होनेपर ब्राह्मी स्थिति होती है। आप सत्तारूप हैं, अहंरूप नहीं। यह सत्ता महासर्ग-महाप्रलयमें भी ज्यों-की-त्यों रहती है।

**'होनापन' मेरा स्वरूप है—इस बातको जोरसे पकड़ लो। इस होनेपनके साथ शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि कुछ भी मिलाओ मत।** इस होनेपनमें चुप हो जाओ; केवल है....है....है....। इस 'है' में स्थित हो जाओ। इसको पहले बुद्धिसे समझोगे; क्योंकि समझनेके लिये बुद्धिसे सूक्ष्म यन्त्र कोई है नहीं। फिर बुद्धि नहीं रहेगी, केवल होनापन रहेगा। 'होनेपन' का अर्थ है—होनेका भाव। होनेपन ('है') में स्थिति ही जाग्रत्-सुषुप्ति है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

साधक स्थिरताको बहुत महत्त्व देता है। स्थिरता कारणशरीरमें होती है। हमारा स्वरूप न स्थिरतारूप है, न चंचलतारूप है, प्रत्युत सत्तामात्र है। स्फुरणारहित होना कोई तत्त्व नहीं है। पत्थर भी स्फुरणारहित होता है। यद्यपि स्फुरणा मिटानेके लिये स्फुरणारहित होना अच्छा है, प्रशंसनीय है, तथापि स्थिरता हमारा स्वरूप नहीं है। हमारा स्वरूप है—'है'। 'है' में न चंचलता है, न स्थिरता। हमारा सम्बन्ध न चंचलताके साथ है, न स्थिरताके साथ।

**'है' में अर्थात् सत्तामात्रमें स्थित हो जाय—यह 'ज्ञान' हो गया। सत्तामात्रमें आकर्षण हो जाय—यह 'भक्ति' हो गयी।**

अनन्त ब्रह्माण्ड सत्तामात्रके अन्तर्गत हैं। एक सत्ताके सिवाय और कुछ है ही नहीं। मात्र संसार हरदम अभावमें जा रहा है। सत्ता भावरूप है, संसार अभावरूप है। मन एक करण है। मनमें दोष नहीं है, आपका दोष ही मनमें दीखता है। तात्पर्य है कि दोष तो आपमें है, पर वह आपमें न दीखकर मनमें दीखता है। आप जैसे होंगे, मन वैसा हो जायगा। आप निर्दोष हो जाओ, मन निर्दोष हो जायगा।

चेतनमें अनन्त शक्तियाँ हैं, पर वे अहम्के सम्बन्धसे प्रादुर्भूत होती हैं। जिसमें कोई शक्ति नहीं होती, उसमें सब शक्तियाँ होती हैं; और जिसमें सब शक्तियाँ होती हैं, उसमें कोई शक्ति नहीं होती। यह सिद्धान्त है। जो सब संसारको अपना मानता है, वह किसीको अपना नहीं मानता; और जो किसीको अपना नहीं मानता, वह सबको अपना मानता है। जो किसीको अपना मानता है, वह सब संसारको अपना नहीं मान सकता।

जड़ताको आप छोड़ना चाहते हैं तो उसकी उपेक्षा करो, विरोध मत करो। विरोध करनेसे अथवा अभ्यास करनेसे एक शक्ति पैदा होगी, तत्त्वका अनुभव नहीं होगा; क्योंकि जोर लगानेसे जड़ताको सत्ता मिलती है। **करनेसे संसार पैदा होता है और न करनेसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। कुछ भी मत करो तो आप जीवन्मुक्त हो जाओगे।** करनेसे बन्धन होगा, न करनेसे सब कुछ हो जायगा। परन्तु कुछ न करना आपके हाथकी बात

नहीं है; क्योंकि करनेका स्वभाव पड़ा हुआ है। इसलिये पहले यह स्वीकार करना होगा कि 'मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये'। इससे करनेका अभ्यास मिट जायगा। करनेकी शक्ति केवल दूसरोंके हितके लिये है।

● ज्ञानकी बातें सीख जाओगे तो वाचिक ज्ञानी, बद्धज्ञानी बन जाओगे। अज्ञानीकी मुक्ति हो सकती है, पर बद्धज्ञानीकी मुक्ति नहीं हो सकती।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

कई साधन ऐसे होते हैं, जिनसे पारमार्थिक बातें भीतर ठहरती हैं और कई साधन ऐसे होते हैं, जिनसे बातें समझमें आती हैं। सेवा की जाय, नामजप किया जाय तो इससे सत्संगकी बातें भीतर ठहरती हैं अर्थात् उनको धारण करनेकी शक्ति आती है। गहरा विचार किया जाय तो नयी-नयी बातें समझनेकी शक्ति आती है।

जड़-चेतनका विचार संसारमें न करके शरीरमें करना चाहिये। संसारमें विचार करनेसे बातें सीख जाओगे, पर विशेष लाभ नहीं होगा। अतः अपने शरीरमें विचार करें कि शरीर तो जड़ है और उसमें रहनेवाला स्वयं चेतन है। स्वयं परमात्माका अंश है, उसमें लेशमात्र भी जड़का अंश नहीं है। सर्वसमर्थ परमात्मामें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि हमसे अलग हो जायँ। परमात्मा सबको सदा ही प्राप्त हैं। इसलिये सब-के-सब जीवन्मुक्त हैं। मुक्ति होती नहीं, मुक्ति है। उसको आप केवल स्वीकार कर लें। परमात्मतत्त्व अथवा तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं होता, प्राप्त है। अगर वह सबको प्राप्त नहीं है तो फिर वह सर्वव्यापक कैसे होगा? बन्धन है ही नहीं। जो नहीं होता, वही मिटता है।

**श्रोता—तत्त्वज्ञान कैसे हो?**

**स्वामीजी—तत्त्वज्ञान होता है—अतत्त्वको छोड़नेसे।** यह कपड़ा मैं नहीं हूँ, यह चमड़ी मैं नहीं हूँ, यह मांस मैं नहीं हूँ, ये हड्डियाँ मैं नहीं हूँ, ये आँतें मैं नहीं हूँ, यह खून मैं नहीं हूँ; इस प्रकार 'यह मैं नहीं हूँ', 'यह मैं नहीं हूँ'—ऐसा विचार करते-करते तत्त्वज्ञान हो जायगा। किसी भी वस्तुके विषयमें यह विचार करो कि यह कहाँसे आयी है, तो उसके मूलकी खोज करते-करते आप तत्त्वतक पहुँच जाओगे। कारण कि सबके मूलमें एक परमात्मतत्त्व है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

गीतामें भगवान्ने योगी अथवा ज्ञानीको 'सर्ववित्' (सर्वज्ञ) नहीं कहा, प्रत्युत भक्तको 'सर्ववित्' कहा है। कारण कि भक्त परमात्माके समग्ररूपको जान लेता है। समग्र सगुण ही हो सकता है, निर्गुण नहीं; क्योंकि निर्गुणमें (गुणोंका निषेध होनेसे) सगुण नहीं आ सकता, पर सगुणमें निर्गुण, साकार, निराकार, द्विभुज, चतुर्भुज आदि सब आ जायँगे। ऐसे समग्ररूपको जाननेवाला सर्ववित् भक्त सर्वभावसे भगवान्का भजन करता है—'**स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत**' (गीता १५/१९)। वह खाना-पीना, चलना-फिरना, उठना-बैठना, सोना-जगना, लेना-देना, आना-जाना आदि जो कुछ भी करेगा, वह भगवान्का भजन ही होगा। कारण कि उसको यह अनुभव हो गया कि परमात्माके सिवाय और कुछ है ही नहीं—'**वासुदेवः सर्वम्**'। उसकी दृष्टिमें एक परमात्माके सिवाय कुछ है ही नहीं, फिर उसमें भजनसे अलग कोई भाव कैसे रहेगा?

गीतामें भक्तिके वर्णनमें 'अद्वैत' है और ज्ञानके वर्णनमें 'द्वैत' है। कारण कि भक्तिमें जड़-चेतन सब कुछ एक परमात्मा ही है, पर ज्ञानमें जड़-चेतन दो हैं।

द्वैत दो तरहका होता है। तत्त्वज्ञान होनेसे पहलेका द्वैत बन्धनकारक होता है, पर तत्त्वज्ञान होनेके बाद (भक्ति) का द्वैत प्रेमवृद्धिके लिये होता है। जब भक्त भगवान्की तरफ देखता है, तब 'एक भगवान्के सिवाय कुछ नहीं



है', ऐसा दीखता है—यह अद्वैत हो गया। जब वह अपनी तरफ देखता है, तब 'मैं दास हूँ, प्रभु मालिक हूँ', ऐसा दीखता है—यह द्वैत हो गया। इस प्रकार बार-बार द्वैत-अद्वैत होते रहना प्रेमका प्रतिक्षण वर्धमान होना है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**'हम भगवान्‌के अंश हैं'**—यह इतनी बढ़िया बात है कि इसको सब-के-सब मान सकते हैं। पापी, दुष्ट, पुण्यात्मा, सज्जन, महात्मा, तत्त्वज्ञानी, जीवन्मुक्त और भूत, प्रेत, पिशाच, असुर, राक्षस, ब्रह्मराक्षस आदि सबको भगवान्‌ने अपना अंश कहा है—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५/७)। इसी बातको गोस्वामीजी महाराजने और भी बढ़िया ढंगसे कहा है—

**ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥**

(मानस, उत्तर.११७/१)

हम कैसे ही क्यों न हों, हैं तो भगवान्‌के ही अंश, भगवान्‌के ही पुत्र। कितना ऊँचा पद है! चार सवार थे, जो घोड़ोंपर चढ़कर दिल्लीसे आ रहे थे। रास्तेमें किसी गाँवसे एक आदमी गधेपर सवार होकर उनके साथ चल दिया। आगे कोई पूछता कि कहाँसे आये हैं? तो गधेपर सवार आदमी कहता कि पाँचों सवार दिल्लीसे आये हैं! ऐसे ही जीवन्मुक्त महात्मा जैसे परमात्माका अंश हैं, ऐसे ही हम भी परमात्माके अंश हैं! हम जीवन्मुक्तके ही भाई हैं, उससे अलग नहीं है।

भगवान्‌के अंश होते हुए भी हमने नाशवान्‌ चीजोंको मुख्यता दे दी—यह गलती हुई है। **'मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि'** (गीता १५/७)—शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि प्रकृतिके हैं; अतः वे प्रकृतिमें स्थित हैं, पर हम परमात्माके अंश होते हुए भी परमात्मामें स्थित नहीं हैं। वे तो सपूत हैं, पर हम कपूत हो गये! जैसे प्रकृतिका अंश प्रकृतिमें स्थित है, ऐसे ही हम भगवान्‌में स्थित हो जायँ तो फिर कुछ बाकी नहीं रहेगा, पूर्णता हो जायगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—सत्संगमें हमारा भाव जैसा रहता है, वैसा भाव सत्संगके बाद नहीं रहता, बिल्कुल बदल जाता है।

**स्वामीजी**—मेरी ऐसी धारणा नहीं है। सत्संगके बाद भाव बिल्कुल बदल जाता हैयह बात जँचती नहीं है। हाँ, फर्क पड़ जाता है—यह बात जँचती है। जैसे कपड़ेसे छाननेपर वस्तुका कुछ महीन अंश कपड़ेमें रह जाता है, ऐसे ही सत्संग करनेपर कुछ भाव भीतर बैठ जाता है, जो जन्मान्तरोत्तक नहीं जाता! पारमार्थिक संस्कार सच्चे होते हैं और व्यावहारिक संस्कार कच्चे होते हैं। व्यावहारिक संस्कार कितने ही प्रबल होनेपर भी मिट जाते हैं। परन्तु सत्संगसे जो पारमार्थिक संस्कार पड़ते हैं, उनका नाश नहीं होता। वे जन्म-जन्मान्तरोत्तक रहते हैं।

दो बातें हैं—मैं भगवान्‌का हूँ, और संसारके साथ मेरा सम्बन्ध नहीं है। इन दोनोंमें एक बात भी मान लें कि 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान्‌ मेरे हैं' तो इसके सिवाय और कुछ माननेकी जरूरत ही नहीं है। अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रक्षा करनेवाले परमात्मा हमारे पिता हैं, फिर हमें किस बातकी चिन्ता है? अगर आप स्वीकार कर लो कि 'भगवान्‌ हमारे हैं, हम भगवान्‌के हैं' तो आपमें एक दिनमें बड़ा भारी फर्क पड़ जायगा। आप निश्चिन्त, निर्भय हो जायँगे।

भगवान्‌को अपना मान लो तो सब काम पूरा हो जायगा, कोई काम किञ्चिन्मात्र भी बाकी नहीं रहेगा। कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग आदि कुछ बाकी नहीं रहेगा, साधक पूर्ण हो जायगा, कृतकृत्य, ज्ञातज्ञातव्य, प्राप्तप्राप्तव्य हो जायगा। अनन्त ब्रह्माण्डोंका पालन करनेवाले भगवान्‌ हमारे हैं—यह मान लो तो अब क्या बाकी रहा, कैसे बाकी रहा?

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आप एक बात दृढ़तासे मान लो, हृदयसे स्वीकार कर लो कि हम भगवान्‌के हैं। जलचर, नभचर, थलचर सब जीव भगवान्‌के हैं। भगवान्‌के सिवाय और कुछ भी हमारा नहीं है—‘मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई’। शरीर भी अपना नहीं है, भगवान्‌का है, इसलिये इसका पालन करना है, इसकी रक्षा करना है। भगवान्‌का समझकर सबकी सेवा करनी है, आदर-सत्कार करना है, अच्छा बर्ताव करना है। हमें किसीकी जरूरत नहीं है, पर हमारी जरूरत सबको है। संसार हमारे काम नहीं आता, पर हम संसारके काम आ सकते हैं, सब संसारकी सेवा कर सकते हैं। जैसे राजाके एक प्राणीकी सेवा भी राजाकी सेवा है, ऐसे ही आप अपने शरीरको ठीक न्याययुक्त रखो तो यह संसारमात्रकी सेवा है। अपने शरीरको भोगोंमें मत लगाओ, दूसरोंके हितमें लगाओ तो यह संसारमात्रकी सेवा है। जो सामने आ जाय, उसकी सेवा करो तो यह संसारमात्रकी सेवा है। किसीको दुःख मत दो तो यह संसारमात्रकी सेवा है।

संसारमें कोई चीज व्यक्तिगत है ही नहीं। अपना मानकर आप न किसीको अपने साथ रख सकते हैं, न किसीके साथ रह सकते हैं। परन्तु भगवान् सदा हमारे साथ हैं; नरकोंमें जायँ तो भी साथ हैं, स्वर्गमें जायँ तो भी साथ हैं, वैकुण्ठमें जायँ तो भी साथ हैं, पशु-पक्षी बनें तो भी साथ हैं, वृक्ष-लता बनें तो भी साथ हैं—‘सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः’ (गीता १५/१५); ‘ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति’ (गीता १८/६१)।

आप पापी-से-पापी हों तो भी भगवान् मना नहीं कर सकते कि यह मेरा नहीं है।

श्रोता—सत्संगमें तो याद रहता है कि हम भगवान्‌के हैं, पर घर जाते ही भूल जाते हैं।

स्वामीजी—भूल जाते हैं तो इसका अर्थ हुआ कि आपको इस बातकी गरज नहीं है। रोगी आदमी क्या दवाईको भूल सकता है? मुफ्तमें बातें मिलती हैं, मुफ्तमें सुनते हो, घरका पैसा कुछ लगा नहीं, इसलिये भूल जाते हो। बातोंका पैसा लगे तब याद रहती है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अगर आप अपनेको सर्वथा भगवान्‌का ही मान लें तो बाकी कुछ नहीं रहेगा। जड़ता आपके पास भी नहीं रहेगी। पूर्णता हो जायगी, कोई कमी नहीं रहेगी। आप द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि कुछ भी मानें, हम हैं परमात्माके। संसारकी सुखलोलुपता ही बाधक है। सुखका कोरा वहम है। इतिहासमें एक भी आदमी ऐसा नहीं बता सकते, जिसको संसारमें सुख मिल गया हो।

संसारमें कोई भी चीज चाहनामात्रसे नहीं मिलती, पर भगवान् चाहनामात्रसे मिलते हैं। कारण यह है कि भगवान् प्राप्त हैं। जिसका आपको त्याग करना है, वह निरन्तर आपका त्याग कर रहा है और जिसको प्राप्त करना है, वह निरन्तर प्राप्त है। जिसके आप अंश हो, उसीकी प्राप्ति आप नहीं चाहते तो फिर इससे बढ़िया और कौन-सा काम करना बाकी है?

भगवान्‌को आप माता, पिता, भाई, पुत्र, मित्र, स्वामी, गुरु, चेला आदि जो मानो, वे वही बननेको तैयार हैं। भगवान्‌के बनाये हुए कल्पवृक्ष, चिन्तामणि भी मनोवांछित फल देते हैं तो क्या भगवान् उनसे भी कमजोर हैं? भगवान् हमारे सब कुछ हैं, और किसीकी जरूरत ही नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

ज्ञानमार्गमें तो शरीरसे अलग होना (स्वरूपमें स्थिति) आवश्यक है, पर भक्तिमार्गमें यह आवश्यक नहीं है। भक्तिमार्गमें भगवान्‌की स्मृति रहना आवश्यक है। भगवान् प्रिय लगें, मीठे लगें, अच्छे लगें तो फिर सब ठीक हो जायगा। इसलिये बार-बार भगवान्‌से प्रार्थना करो कि ‘हे नाथ, मैं आपको भूलूँ नहीं’। भगवान्‌के पीछे

पड़ जाओ कि 'हे नाथ, मैं आपको भूलूँ नहीं', फिर सब काम ठीक हो जायगा। भगवान्‌के खुदकी मिलनेकी इच्छा है। अपनेको दीखता है कि भगवान्‌ने हमें भुला रखा है, पर वास्तवमें भगवान्‌को हम भूले हैं। भगवान्‌ हमें नहीं भूलते। मनुष्य संसारमें लगा है, भगवान्‌ नहीं लगे हैं। भगवान्‌ तो आपको हरदम देखते हैं, याद करते हैं। केवल आप भगवान्‌को याद करो तो बेड़ा पार है! इसमें कोई सन्देह है ही नहीं।

भगवान्‌ कहाँ हैं, कैसे हैं—यह विचार मत करो। वे कहीं हों, कैसे ही हों, मेरे हैं। वे सुख देते हों तो मेरे हैं, दुःख देते हों तो मेरे हैं। उनको हम भूलें नहीं। यह बहुत ऊँची बात है। भगवान्‌में प्रेम बहुत विलक्षण, अलौकिक तत्त्व है। प्रेम भगवान्‌के साक्षात् दर्शनसे भी ऊँची चीज है। केवल भगवान्‌ पसन्द आयें, भगवान्‌ प्रिय लगें तो सब काम भगवान्‌ करेंगे, आपको कुछ नहीं करना पड़ेगा। कोई विघ्न आपके नजदीक नहीं आयेगा—‘मच्चितः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि’ (गीता १८/५८) ‘मुझमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपासे सम्पूर्ण विघ्नोंको तर जायगा’।

‘हे प्रभो, मैं आपका हूँ’—इस प्रकार आप भगवान्‌के चरणोंके आश्रित हो जायँ तो सब काम भगवान्‌ करेंगे, भजन भी आपको नहीं करना पड़ेगा। ‘हे नाथ, मैं आपको भूलूँ नहीं’—इस प्रार्थनामें बड़ा भारी बल है। निरन्तर नामजप करो और थोड़ी-थोड़ी देरमें यह प्रार्थना करते रहो। निहाल हो जाओगे! भगवान्‌को भूलूँ नहीं—यह काम हमारा है और सब काम भगवान्‌का है! आपको कुछ काम करना नहीं पड़ेगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

एक परमात्मा ‘है’—रूपसे सब जगह परिपूर्ण है। परिवर्तनशील संसारको प्रकाशित करनेवाला एक प्रकाश सब जगह मौजूद है। वह सबमें है, सबका है, किसी व्यक्ति-विशेषका नहीं है। उसका कहीं अभाव नहीं है। वह परमात्मा हमारेमें है, हम उस परमात्मामें हैं। वह कैसा है, यह न देखकर केवल एक ‘है...है...है’—ऐसे भीतरसे आप स्वीकार लो और रात-दिन उसमें मस्त रहो। परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं और मेरा व्यक्तिगत कुछ भी नहीं है। यह बात आपको माननी पड़ेगी, चाहे मेरे कहनेसे मानो, चाहे गीता, भागवत, सन्त-महात्मा आदिके कहनेसे मानो।

संसार पहले भी नहीं था, पीछे भी नहीं रहेगा। जो आदि और अन्तमें नहीं होता, वह मध्यमें भी नहीं होता—यह सिद्धान्त है। अतः संसारमें ‘नहीं’—पना स्वतः-स्वाभाविक सिद्ध है। परमात्मा है और संसार नहीं है—इसको स्वीकार कर लें। ‘परमात्मा है’—यह हमारा विश्वास है, और ‘संसार नहीं है’—यह हमारा अनुभव है। दो ही बातें हुई—‘मेरे तो गिरधर गोपाल’ और ‘दूसरो न कोई’ भगवान्‌ मेरे हैं—यह ‘मानना’ है, और ‘संसार नहीं है’—यह ‘जानना’ है। जबतक जानना और मानना है, तबतक ‘विवेक’ है। जब जानना और मानना—दोनों नहीं रहेंगे, एक ‘है’ में ही स्थिति हो जायगी, तब ‘बोध’ हो जायगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

सबसे श्रेष्ठ बात है—‘वासुदेवः सर्वम्’ (सब कुछ वासुदेव ही है)। इसमें जड़-चेतनका विभाग नहीं है। जड़ भी परमात्माका स्वरूप है। वह भी भगवान्‌की लीला है। चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते हरदम भगवान्‌में ही रहें। चारों तरफ, दसों दिशाओंमें परमात्मा-ही-परमात्मा हैं। हमारी बुद्धिमें जगत्‌की सत्ता बैठी है, इसलिये हमें जगत्‌ दीखता है। वास्तवमें जगत्‌की सत्ता नहीं है। जगत्‌ न तो परमात्माकी दृष्टिमें है, न महात्माकी दृष्टिमें है, प्रत्युत जीवात्माकी दृष्टिमें है।

एक ही परमात्मा अनेकरूपसे है और अनेकरूपसे होते हुए भी एक ही परमात्मा है। परन्तु अपने राग-द्वेषके कारण यह बात समझमें नहीं आती। सभी परमात्मा हैं, सबमें परमात्मा हैं, सब परमात्मामें हैं और सब परमात्माके हैं—इन चारोंमें जो बात आपको सुगम लगे, वह बात मान लो, परिणाम एक ही होगा—‘वासुदेवः सर्वम्’।

जैसे आपकी शक्ति घटती-बढ़ती रहती है, पर आप नहीं घटते-बढ़ते, ऐसे ही भगवान्‌की शक्ति (प्रकृति)

घटती-बढ़ती है, भगवान् घटते-बढ़ते नहीं, प्रत्युत ज्यों-के-त्यों रहते हैं। भगवान् प्रकृतिको लेकर ही लीला करते हैं तो परिवर्तन प्रकृतिमें होता है, भगवान्में नहीं। इसलिये अनेक तरहकी लीलाएँ होती हैं, पर भगवान् ज्यों-के-त्यों रहते हैं। प्रकृति (शक्ति) की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। हमारे द्वारा गलती यह हुई है कि हमने भगवान्की लीलामें संसारबुद्धि कर ली। इसलिये हमारेपर परमात्माको पहचाननेकी जिम्मेवारी हो गयी। अगर हम यह गलती नहीं करते तो परमात्मप्राप्तिका प्रश्न ही पैदा न होता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जैसे आप कई जगह काम करते हो, कभी बैंकमें, कभी रेलवेमें, कभी दूकानमें, कभी खेतमें काम करते हो, पर अलग-अलग काम करनेपर भी आपके माँ-बाप वही रहते हैं। इसी तरह आप अनेक जन्मोंमें तरह-तरहके काम करते हो, पर आपके खास पिता परमात्मा वही रहते हैं। वे परमात्मा ही हमारे असली पिता हैं। हम उन्हींके अंश हैं। दूसरी बात, परमात्माके सिवाय कोई चीज हमारी नहीं है। शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार, पदार्थ, रुपये, माँ-बाप, स्त्री, पुत्र आदि कोई भी अपना नहीं है। ये दो बातें खास हैं। अगर आप इन बातोंको माननेकी हिम्मत करो तो बहुत लाभकी बात है। यह मीराबाईका सिद्धान्त हमें बहुत बढ़िया लगता है— **‘मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई’**। आप खुद विचार करके देखो कि आपके साथ कौन रहेगा? सिवाय परमात्माके आपके साथ रहनेवाला कोई नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आप विचार करके देखो कि आपका कल्याण हो जाय, इसकी चिन्ता संसारमें किसको है? भागवतमें एक श्लोक आया है—

**गुरुर्न स स्वात्स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।**

**दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्॥**

(श्रीमद्भागवत ५.५.१८)

‘जो समीप आयी हुई मृत्युसे नहीं छुड़ाता अर्थात् कल्याण नहीं करता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है।’

**वास्तवमें हमारा वही है, जो सच्चे हृदयसे हमारा कल्याण चाहे।** आप विचार करो कि क्या गुरुके मनमें आपके कल्याणकी लगन, चिन्ता है? जिसके मनमें आपके कल्याणकी चिन्ता ही नहीं, जो आपकी सद्गति होगी या दुर्गति होगी—इसका विचार ही नहीं करता, वह आपका गुरु कैसे हुआ? वह आपका पूजनीय कैसे हुआ? वह आपका न गुरु है, न माँ है, न बाप है, न भाई है, न मित्र है, न कुटुम्बी है। सब पैसा चाहते हैं। आप भले ही पाप करो, नरकोंमें जाओ, पर हमें पैसा लाकर दो। **आप कृपा करके स्वयं सोचो कि वास्तवमें आपका कल्याण चाहनेवाला कौन है?** ऐसा कौन साधु, ब्राह्मण, व्याख्यानदाता आदि है, जो चाहता हो कि आपका उद्धार हो जाय, आपको परमात्माकी प्राप्ति हो जाय?

**जो हृदयसे हमारा कल्याण चाहे, वही हमारा गुरु है, चाहे हम मानें या न मानें, वह गुरु बने या न बने।** आजकल कितने ऐसे गुरु हैं, जिनमें अपने कल्याणकी लगन है अथवा जिन्होंने अपना कल्याण कर लिया हो और आपका कल्याण चाहते हों? ऐसे गुरु मिलते नहीं। इसलिये हमें तो इसमें ठगाई मालूम देती है। मेरे मनमें किसीके प्रति द्वेष, वैर नहीं है। मनमें द्वेष रखकर मैं अपना पतन क्यों करूँ? न मैं अपना पतन करना चाहता हूँ, न दूसरेका।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जो मुक्ति चाहता हो, वह भगवान्को माने—यह नियम नहीं है। परन्तु भगवान्को माननेसे लाभ अधिक होगा, इसमें सन्देह नहीं है। भगवान्को माने बिना कल्याण तो हो जायगा, पर प्रतिक्षण वर्धमान सर्वोपरि प्रेमकी प्राप्ति नहीं होगी। भगवान्को माने बिना रूखा-सूखा रहेगा, तरी नहीं होगी। प्रेम भोजनमें घीकी तरह है। घीके बिना भोजनसे भूख तो मिट जायगी, पर रस नहीं आयेगा। प्रेममें विशेष रस है, मादकता है।

प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान है। चन्द्रमा प्रतिदिन बढ़ता है तो पूर्णिमातक ही बढ़ता है। परन्तु प्रतिक्षण वर्धमान प्रेममें पूर्णिमा आती ही नहीं। यह अनन्तकालतक बढ़ता ही रहता है। यह बात ज्ञानमें नहीं है। ज्ञान अखण्ड, एकरस रहता है। प्रेमके कारण मीराबाईका जड़ शरीर भी चिन्मय हो गया। प्रेममें भगवान् और भक्त एक समान हो जाते हैं।

**प्रेमका मूल है—अपनापन।** जिसमें हमारी प्रियता होगी, उसकी याद अपने-आप आयेगी। अपनी स्त्री, बेटा, बेटी इसलिये याद आते हैं कि उनमें हमारी प्रियता है, उनको हमने अपना माना है। **यदि भगवान्में प्रेम चाहते हो तो उनको अपना मान लो, फिर उनकी याद स्वतः आयेगी, करनी नहीं पड़ेगी।** आप जिसको पसन्द करोगे, उसमें मन स्वतः लगेगा। आप पसन्द न करो तो मन नहीं लगेगा। भगवान् मेरे हैं—इसमें जो शक्ति है, वह त्याग-तपस्यामें नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मन एक करण है, आप कर्ता हो। आपके ही गुण-अवगुण मनमें दीखते हैं। मन नहीं लगता—यह दोष नहीं है, खुद आप नहीं लगते—यह दोष है। जिसको अपना मानोगे, मन उसमें लगेगा। **आप प्रेम करते हो संसारसे और चाहते हो कि मन भगवान्में लग जाय, यह कैसे होगा?** जैसे रेलगाड़ी वहीं जाती है, जहाँ लाइन बिछी है। जहाँ लाइन है ही नहीं, वहाँ रेलगाड़ी कैसे जायगी? ऐसे ही मन वहीं जाता है, जहाँ आपने सम्बन्ध जोड़ा है। जहाँ आपने सम्बन्ध जोड़ा ही नहीं, वहाँ मन कैसे जायगा?

**‘हे मेरे नाथ! हे मेरे नाथ!!’ कहते रहो तो कभी पट काम हो जायगा! जो काम वर्षोंमें नहीं होता, वह एकाएक हो जाता है, पर आप लगे रहो।** भगवान्की कृपा कब होती है, कैसे होती है—इसको हम जानते नहीं, पर इतना जानते हैं कि आप लगे रहो। कभी पट कृपा हो जायगी।

**भगवान् आचरणको नहीं देखते, प्रत्युत यह देखते हैं कि ‘यह मेरा है’।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

केवल परमात्मप्राप्तिकी इच्छाको बढ़ा लो तो परमात्मा सुगमतासे मिल जायँगे; क्योंकि वे सब जगह, सब समय मौजूद हैं।

जीवमात्र भगवान्का पुत्र है। चौरासी लाख योनियाँ और उनके सिवाय देव, राक्षस, असुर, भूत, प्रेत, पिशाच आदि जितनी योनियाँ हैं, वे भी भगवान्के पुत्र हैं। आप केवल स्वीकार कर लें कि हम भगवान्के पुत्र हैं तो क्या बाधा है? इतना स्वीकार कर लें तो बहुत काम हो गया! वर्षोंतक साधन करनेसे जो स्थिति नहीं बनती, वह स्थिति इतना स्वीकार करनेसे बन जायगी। आप भले ही सपूत न हों, कपूत हों, तो भी अपनेको भगवान्का बेटा माननेमें क्या हर्ज है? कपूत बेटा क्या बेटा नहीं होता? भगवान्को याद करनेसे कपूतपना भी मिट जायगा।

उद्धारके लिये मुझे सबसे बढ़िया यह बात मालूम दी कि **‘हम भगवान्के हैं’। हम भगवान्के हैं—ऐसा मान लो तो इसको मैं सबसे बढ़िया भिक्षा मानता हूँ। आप उग्रभर मुझे भिक्षा दो तो उसमें इतना फायदा नहीं है, जितना इस एक बातको माननेमें है कि ‘मैं भगवान्का हूँ’।**

**श्रोता—**हम भगवान्के हैं—यह बात माननेमें हमें कठिनाई क्यों हो रही है?

**स्वामीजी**—भगवान्को अपना माननेमें खास बाधा यह है कि आप संसारके सम्बन्धसे सुख चाहते हैं। भीतरमें सुखकी इच्छाके कारण उस सुखको छोड़नेमें कठिनाई हो रही है। सुखकी इच्छा आपको कमजोर बना रही है। जैसे बालक माँको अपना मानता है, ऐसे आप भगवान्को अपना मान लो तो नुकसान कोई नहीं होगा और फायदा वर्तमानसे ज्यादा होगा, संसारका सुख भी ज्यादा मिलेगा।

मेरे मनमें कई बार आई है कि सेठजी जानकार होते हुए भी यह क्यों नहीं बता देते कि आप भगवान्के हैं। अन्य जानकार सन्त-महात्मा भी यह बात क्यों नहीं बताते कि आप परमात्माके अंश हैं? जबकि लोगोंके उद्धारकी मेहनत वे भी करते हैं। उनकी नीयतमें कोई कमी नहीं है। अकेले सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ने लोगोंको परमात्मामें लगानेकी जितनी चेष्टा की है, उतनी चेष्टा करनेवाला इतिहासमें एक भी नहीं मिलता। जीवोंके उद्धारके लिये उन्होंने अपने उद्योगमें कमी नहीं रखी। इसके लिये उन्होंने गीताप्रेस, गोविन्दभवन, गीताभवन, चुरु ब्रह्मचर्याश्रम खोला! सेठजीके कहनेसे ही मैंने व्याख्यान देना शुरू किया।

**भगवान् हमारे हैं, उनके सिवाय कोई हमारा नहीं है—ऐसा मान लो तो आप जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ, महात्मा हो जाओगे।** भगवान्के सिवाय अगर गुरुको भी अपना मान लिया तो बाधा लगी है, फायदा नहीं हुआ है।

● संसार न्याय कर देगा—इसकी आशा मत रखो। वह अन्याय न करे—यही उसका न्याय है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**परमात्माका अंश जीवात्मा सत्तारूपसे है। उस सत्ताके पास शरीर आदि जो भी सामग्री है, वह उसकी नहीं है, प्रत्युत संसारकी है।** संसारकी सामग्री संसारको ही दे दो तो मुक्ति स्वतःसिद्ध है। संसारको देनेका अर्थ है—उस वस्तुको अपना न मानकर संसारका ही मानो। संसारकी वस्तुको अपना मान लेना बेईमानी है। बेईमानी ही बन्धन है। बेईमानी छोड़ी तो मौज हो गयी! बेसमझी और बेईमानीसे ही मनुष्य दुःख पाता है।

शरीर मैं नहीं, मेरा नहीं और मेरे लिये भी नहीं है—इसका अनुभव कैसे हो, इस बातकी लगन लगनी चाहिये।

**श्रोता**—भगवत्प्राप्तिकी लगन किसको कहते हैं?

**स्वामीजी**—लगनका अर्थ है—एकके सिवाय दूसरी बात सुहाये नहीं। लगन लगनेपर संसारका सब काम करते हुए भी मन कहीं नहीं लगता, मनमें बेचैनी रहती है, अन्न-जल अच्छा नहीं लगता।

लगन लगन सब ही कहैं, लगन कहावै सोय।

नारायन जिस लगन में, तन मन दीजै खोय॥

मन में लागी चटपटी, कब निरखूँ घनस्याम।

नारायन भूल्यौ सभी, खान पान बिश्राम॥

नारायन हरि लगन में, यह पाँचों न सुहात।

विषय-भोग, निद्रा, हँसी, जगत-प्रीत, बहु बात॥

आपको किसी कामकी लगन लगती है तो नींद नहीं आती।

**श्रोता**—हठ करना भी लगन है क्या?

**स्वामीजी**—दोनों बातें हैं, लगनमें भी हठ होता है और लगनके बिना भी हठ होता है। **लगनके बिना हठ कामका नहीं है। लगनयुक्त हठ होना चाहिये।** केवल हठ करनेसे मर जाओ तो भी कुछ नहीं होगा। तत्त्वकी प्राप्ति मुख्य बात है, अन्न-जल छोड़ना, नींद न लेना मुख्य बात नहीं है। ताकत लगनमें है, भूखे-प्यासे रहनेमें नहीं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*



**श्रोता**—जीते-जी मर जाना क्या है?

**स्वामीजी**—जैसे आदमी मर जाता है तो उसपर अनुकूलता-प्रतिकूलताका असर नहीं पड़ता। कोई उसकी सेवा करे तो उसको प्रसन्नता नहीं होती, और तिरस्कार-अपमान करे तो उसको दुःख नहीं होता। इसी तरह जीते-जी कोई आदर करे या निरादर करे, नफा हो या नुकसान हो, अनुकूलता हो या प्रतिकूलता हो, उसका अपनेपर कोई असर नहीं पड़े तो वह जीते-जी मर गया। अपनेमें समता आ जाय, राग-द्वेष और हर्ष-शोक न हों।

**श्रोता**—मेरा इष्ट तो है बालगोपालका, पर मुँहसे हरदम सीताराम-सीताराम निकलता रहता है, इससे कोई नुकसान तो नहीं है ?

**स्वामीजी**—कोई नुकसान नहीं है। भीतरमें एक बातकी दृढ़ता होनी चाहिये कि राम और कृष्ण एक ही हैं। उनका पुराना नाम 'राम' है और नया नाम 'कृष्ण' है। राम त्रेतायुगमें हुए, कृष्ण द्वापरयुगमें हुए। राम ही कृष्ण हैं और कृष्ण ही राम हैं—ऐसी दृढ़ता हो तो हर्ज नहीं है। अगर दोनोंमें फर्क दीखे तो फिर इष्टका ही नाम लेना चाहिये।

**श्रोता**—सहज साधना क्या है?

**स्वामीजी**—जो अपने-आप हो, करनी नहीं पड़े, वह सहज साधना होती है। जैसे श्वास स्वाभाविक चलते हैं, ऐसे स्वाभाविक भगवान्का चिन्तन, भजन-स्मरण, नामजप आदि होते रहें, करने नहीं पड़ें, करनेका अभिमान भी न हो—यह सहज साधना है।

● मूलमें ज्ञान कठोर है, प्रेम कोमल है। तेजीका वैराग्य रहनेसे ज्ञानीका बर्ताव रूखा होता है। भक्तका हृदय कोमल होता है। इसलिये गीतामें भक्तके लक्षणोंमें तो 'मैत्रः करुण एव च'—ये पद आये हैं (१२/१३), पर ज्ञानीके लक्षणोंमें ये नहीं आये।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

'हम भगवान्के हैं'—यह इतनी बढ़िया बात मिल गयी, अब और क्या चाहिये? अगर हम इस बातको न भूलें कि हम भगवान्के हैं तो सब काम ठीक हो जायगा, 'चेतन अमल सहज सुख रासी' का अनुभव हो जायगा। हमें साधन करना नहीं पड़ेगा, होने लग जायगा। 'हम भगवान्के हैं'—इस बातको याद रखें तो अवगुण नजदीक नहीं आयेंगे, भाग जायँगे। भूल जायँगे तो अवगुण घेर लेंगे।

अगर माँ बालकके दोषोंकी तरफ देखे तो क्या बालकका पालन हो सकता है? बालक रोता है तो अपनी मूर्खतासे रोता है। भगवान् कृपा करते हैं तो नीयत देखते हैं, गलती नहीं देखते—

**रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥**

(मानस, बाल.२९/३)

भगवान् भाव देखते हैं, क्रिया नहीं। अगर भगवान्के इस कृपालु स्वभावकी तरफ दृष्टि जाय तो कभी चिन्ता हो ही नहीं सकती। अगर चिन्ता होती है तो भगवान्की कृपाकी तरफ दृष्टि नहीं गयी। भगवान् बिना कारण कृपा करनेवाले हैं—यह बात हरदम याद रहे। अपनेमें कमीको देखकर हमें दुःख तब होता है, जब यह भूल जाते हैं कि भगवान् 'कारणरहित कृपालु' हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—'जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ। पायो परम बिश्रामु' (मानस, उत्तर.१३०)। 'परम विश्राम' तब होता है, जब कुछ करना, जानना और पाना बाकी नहीं रहे। ऐसा होनेसे ही मनुष्यजन्म पूर्ण होता है। सेवा करनेसे 'करना' बाकी नहीं रहता, अपने स्वरूपको जाननेसे 'जानना' बाकी नहीं

रहता, और परमात्माको प्राप्त करनेपर 'पाना' बाकी नहीं रहता। करना, जानना और पाना जिसमें है, वह जीव है।

भोगोंकी 'कामना', तत्त्वकी 'जिज्ञासा' और प्रेमकी 'लालसा'—ये तीनों जिसमें रहते हैं, वह 'मैं' अर्थात् जीव है। भोगोंकी कामनाका त्याग करनेपर 'साधक' होता है। अन्तिम चीज है—प्रेम। प्रेमके आगे कुछ नहीं है। प्रेमकी भूख भगवान्में भी है। **प्रेम एक अलौकिक तत्त्व है, जो देनेसे कभी घटता नहीं और पानेसे कभी तृप्ति नहीं होती। संसार कर्तव्य (सेवा) से तृप्त होता है, प्रेमसे नहीं। इसलिये कर्तव्य संसारके लिये है और प्रेम भगवान्के लिये है।**

● हमारा कुछ है ही नहीं—यह त्याग है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आप विचार करो कि साक्षात् परमात्माके आप अंश होते हुए परमात्माको अपना नहीं मानोगे तो किसको अपना मानोगे? शरीर तो माँके पेटमें बना है और यहीं छूट जायगा, फिर यह अपना कैसे हुआ? तीनों शरीर और इनमें जो बल, विद्या, योग्यता आदि जो कुछ है, वह सब प्रकृतिका है। हमसे भूल भूल यह हुई है कि शरीरको तो अपना मान लिया और परमात्माको भूल गये।

एक आदमी तिलक करता है, एक कौएने बीठ कर दी, दोनोंमें बड़ा फर्क है। तिलकको तो रखना चाहते हैं, पर बीठको कोई रखना नहीं चाहता। तिलक तो आपको सुहाता है, पर बीठ नहीं सुहाती। **जैसे कौएकी बीठ नहीं सुहाती, ऐसे ही जड़ शरीर भी नहीं सुहाना चाहिये।**

शरीर जितना अपना लगता है, उतने भगवान् अपने नहीं लगते। शरीरको तो एक दिन जला देंगे, पर भगवान्को जलायेंगे क्या? संसार अनन्त है, पर वह आपके काम नहीं आ सकता; परन्तु आप संसारके काम आ सकते हो। अरबों-खरबों रुपये हों, पर मनुष्यके बिना वे किसी कामके नहीं हैं। फिर रुपये बड़े हुए कि मनुष्य बड़ा हुआ? **अकेले आपका जो मूल्य है, वह सम्पूर्ण संसारका भी नहीं है।** सब-का-सब संसार मिलकर भी आपकी पूर्ति नहीं कर सकता, पर आप अकेले संसारकी पूर्ति कर सकते हो। आज आपने अन्नको मूल्य दे दिया कि अन्न नहीं मिलेगा तो हम मर जायँगे। क्या अन्न खानेसे नहीं मरोगे? अन्न खाते-खाते ही आप मरते हो। अन्न आपको बचा नहीं सकता, पर आप अन्नको बचा सकते हो। आपके बिना अन्न सड़ जायगा। अतः आपसे ही अन्न सफल होता है, मकान सफल होता है, रुपये सफल होते हैं। आपके बिना कोई भी वस्तु कामकी नहीं है। अतः आपको चेत करना चाहिये कि आपका मूल्य संसारमात्रसे अधिक है। **एक व्यक्तिके बराबर भी संसारका मूल्य नहीं है।** संसार सब-का-सब जड़ है, पर आप चेतन हो।

**अन्नके बिना भूखे मर जानेसे आप नरकोंमें नहीं जाओगे, पर झूठ, कपट, बेईमानी करके रुपये कमानेसे आप नरकोंमें जाओगे। आप स्वयं नीचा बनते हो, तब नीचे जाते हो। भोगोंकी इच्छा है तो भोगयोनि मिलेगी, मनुष्यशरीर नहीं मिलेगा।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

शरीर और उसकी क्रियासे कल्याण नहीं होगा। कल्याण संसारकी सेवासे होगा, भगवान्के सम्बन्धसे होगा, निष्कामभावसे होगा, त्यागके भावसे होगा। **श्रवण, मनन, निदिध्यासन, ध्यान, समाधिसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी।** परमात्माकी प्राप्ति जड़ताके त्यागसे होगी, जड़ताके द्वारा नहीं। कल्याण न तो करनेसे होता है, न नहीं करनेसे होता है, प्रत्युत सम्बन्ध-विच्छेदसे होता है।

जड़ता बाँधनेवाली नहीं है, जड़ताका सम्बन्ध ही बाँधनेवाला है। जड़ अलग है, चेतन अलग है, फिर बन्धन कैसे हो गया? आपने जड़के साथ सम्बन्ध जोड़ लिया, इसलिये बन्धन हो गया। विदेशमें एक व्यक्तिको नफा हो

गया और एक व्यक्तिको नुकसान हो गया, दोनों बातें हमने सुनीं तो हमें नफा-नुकसानका ज्ञान हो गया, पर उसका हमारेपर असर नहीं हुआ, हम राजी-नाराज नहीं हुए; क्योंकि उससे हमारा सम्बन्ध नहीं है। जहाँ हमने संसारसे सम्बन्ध जोड़ा कि फँसे, चाहे रागसे सम्बन्ध जोड़ें, चाहे द्वेषसे सम्बन्ध जोड़ें। राक्षसोंका भी कल्याण हो गया; क्योंकि उन्होंने भगवान्से द्वेषपूर्वक सम्बन्ध जोड़ा। **कल्याण न रागसे होता है, न द्वेषसे, प्रत्युत भगवान्के सम्बन्धसे होता है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आपको राम, कृष्ण, दुर्गा आदि जो श्रेष्ठ मालूम दे, वह एक इष्टदेव रखो। एककी ही उपासना ठीक रहती है। जैसे कन्याका जबतक सम्बन्ध न हो, तबतक वह अनेक लड़कोंकी बातें सुनती है। परन्तु जब सम्बन्ध हो जाता है, तब वह अनेककी बातें नहीं सुनेगी। एकसे सगाई हो गयी तो अब दूसरोंकी बात सुननेसे क्या मतलब? ऐसे ही आपको भगवान्का जो रूप अच्छा लगे, उस एकके साथ सम्बन्ध जोड़ लो कि मैं भगवान्का हूँ, भगवान् मेरे हैं। अनेक सम्बन्ध जोड़ते हो तो अभी सगाई नहीं हुई है!

आप संसारसे कई सम्बन्ध जोड़ते हो तो वे कई सम्बन्ध कुछ कामके नहीं हैं। एक भगवान्के साथ सम्बन्ध जोड़ लो तो सब काम ठीक हो जायगा। आप व्यर्थ दूसरोंकी तरफ जाते हो। भगवान्के समान आपका हित करनेवाला, प्रेम करनेवाला, आदर करनेवाला, महत्त्व देनेवाला दूसरा कोई नहीं है—

**उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥**

(मानस, किष्किन्धा. १२/१)

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**जब ध्यान करने बैठते हैं, तब काम-सम्बन्धी विचार बहुत पैदा होते हैं। क्या उपाय करें?

**स्वामीजी—**पैदा नहीं होते हैं। जब भगवान्का ध्यान करते हैं, तब भीतर जो कई तरहके भाव भरे हुए हैं, वे बाहर निकलते हैं नष्ट होनेके लिये। मनुष्य समझता है कि नये भाव आते हैं, पर वास्तवमें पुराने भाव नष्ट होते हैं। उनको खुला निकलने दो, रोको मत। दो-चार दिनमें, एक-दो महीनेमें निकल जायँगे। जितना खुला छोड़ोगे, उतना अन्तःकरण साफ हो जायगा। दरवाजेपर आदमी आता हुआ भी दीखता है और जाता हुआ भी दीखता है। इसलिये भाव आया है, यह मत मानो। वह जा रहा है। भगवान्का ध्यान, चिन्तन आपके अन्तःकरणको साफ कर रहा है। इसलिये प्रसन्न होना चाहिये, घबराना नहीं चाहिये।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**हम बच्चोंको अपनी संस्कृतिकी शिक्षा कैसे दें?

**स्वामीजी—**छोटे बच्चोंको भगवान्के, उनकी लीलाओंके चित्र (चित्रावलि) दिखाओ कि देखो, रामजी यह कर रहे हैं, अब रामजी यह कर रहे हैं। उनको भगवान्के चरित्र सुनाओ। वे थोड़े बड़े हो जायँ तो उनको भगवान्के चरित्र पढ़ाओ। उसके बाद गीता और रामायण पढ़ाओ। खास बात है, आपका खुदका चरित्र अच्छा होगा तो उसका बालकोंपर भी अच्छा असर पड़ेगा। आप खुद अच्छे बनो। आपके भाव और आचरण अच्छे होंगे तो आपको भी लाभ होगा, दूसरोंको भी लाभ होगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अपनेको कोई दुःख दे तो उसके प्रति हमारा बुरा भाव नहीं होना चाहिये। दुःख देनेवाला खुद दुःखी होता है, तब दुःख देता है। **दुःखी आदमी ही दुःख देता है, सुखी आदमी दुःख नहीं देता।** अतः दुःख देनेवालेका दुःख न रहे, वह सुखी हो जाय—इस तरफ ध्यान दो। वास्तवमें हमारा बुरा कोई कर ही नहीं सकता, यह निश्चित

बात है। हम भगवान्‌के हैं, भगवान्‌ सबकी रक्षा करते हैं, फिर कोई हमारा बुरा कैसे कर देगा? हमारा बुरा होता है तो वह हमारे ही भाग्यसे होता है। हमारा भाव तो यह होना चाहिये—

**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।**

**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभागभवेत्॥**

‘सभी सुखी हो जायँ, सभी नीरोग हो जायँ, सभीका कल्याण हो जाय, किसीको किंचिन्मात्र भी दुःख न हो।’

किसीको बुरा मत समझो, किसीका बुरा मत चाहो और किसीका बुरा मत करो—ये तीन बातें अगर आप मान लो तो तो आपका अन्तःकरण शुद्ध, निर्मल हो जायगा। जब सब जीव भगवान्‌के अंश हैं, तो फिर खराब कौन है? भगवान्‌ स्वयं कहते हैं—‘**सब मम प्रिय सब मम उपजाए**’ (मानस, उत्तर. ८६/२)। **खराब कोई है ही नहीं।** हमारा अन्तःकरण खराब होता है, इसलिए दूसरे खराब दीखते हैं। मूलमें सब परमात्माके अंश होनेसे शुद्ध हैं, बुराई आगन्तुक है, ऊपरसे आयी हुई है।

**सबको ठीक बनानेका उपाय है—अपनेको ठीक बनाओ।** आप ठीक हो जाओगे तो स्वाभाविक आपका प्रचार होगा, स्वाभाविक लोग आपको आदर देंगे। बुराईके बदले बुराई करनेसे बुराई नहीं मिटती, प्रत्युत बुराई डबल होती है। जो परमात्मप्राप्ति चाहते हैं, उन साधकोंको चाहिये कि वे बुराई करनेवालेकी भी सेवा करें—

**उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥**

(मानस, सुन्दर. ४१/४)

कोई खराब काम करता है तो समझो कि अभी कलियुग है, इसलिये भगवान्‌ कलियुगकी लीला कर रहे हैं। कलियुगकी लीला तो कलियुगकी तरह ही होगी। उसको नमस्कार करो और कहो कि ‘कृपा करो कृपानाथ! यह कलियुगकी लीला मत करो। अपनी लीला बदल दो। हम इसके पात्र नहीं हैं’। रामायणमें अयोध्याकाण्ड भी आता है, लंकाकाण्ड भी आता है। दोनों ही भगवान्‌की लीलाएँ हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

रामायणमें आया है—

**निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।**

**सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥**

(मानस, उत्तर. ७३ ख)

**ग्यान पंथ कृपान कै धारा।**

(मानस, उत्तर. ११९/१)

**भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥**

(अरण्य. १६/३)

तात्पर्य यह हुआ कि निर्गुणका रूप सुगम है, पर मार्ग कठिन है। भक्तिका मार्ग सुगम है, पर रूप कठिन है। भगवान्‌ मेरे हैं—यह भक्तिका पंथ (मार्ग) है। परमात्मतत्त्व सब जगह परिपूर्ण है—इस निर्गुण रूपको जाननेमें क्या जोर आया? पर अनुभव करना हो तो मार्गपर चलो। सगुणका रूप कठिन है; इसलिये कृष्णका चरित्र देखकर ब्रह्माजीको और रामका चरित्र देखकर सतीजी और गरुड़जीको भी मोह हो गया। बातें बनानेमें निर्गुण रूप सुगम है, इसलिये कलियुगके वर्णनमें आया है—

**ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।**

## कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात ॥

(मानस, उत्तर. ९९ क)

हिरण्यकशिपुने भी हिरण्याक्षके मरनेपर अपनी भौजाईको निर्गुण (आत्मतत्त्व) का उपदेश दिया है। कंसने भी आत्माका उपदेश दिया। पर सगुणके साथ उन्होंने वैर किया! इस प्रकार निर्गुणका उपदेश और सगुणसे वैर—यह राक्षसोंका काम है।

**श्रोता**—मेरा देहसे सम्बन्ध कैसे छूटे?

**स्वामीजी**—‘सम्बन्ध कैसे छूटे’—ऐसी लगन लग जाय तो छूट जायगा। परन्तु देह-देहीका विवेचन करते-करते पूरी उम्र बीत जायगी तो भी सम्बन्ध नहीं छूटेगा। आज दुःख हो जाय तो आज छूट जायगा, नहीं तो ग्रन्थ-के-ग्रन्थ पढ़ जाओ, बोध नहीं होगा। एक केश जितना भी फर्क नहीं पड़ेगा। मैंने वेदान्तकी पढ़ाई की है, इसलिये जानता हूँ।

पहले वेदान्त पढ़कर फिर गीता पढ़ोगे तो गीता बिल्कुल समझमें नहीं आयेगी। वहम पड़ जायगा कि हम समझते हैं। अगर गीताको समझना चाहो तो वेदान्त मत पढ़ो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—आपने लिखा है कि कभी अनुचित कर्म भी हो जाय तो आपमें क्या फर्क पड़ा। यदि अनुचित कर्म होता है तो वह साधक क्या हुआ?

**स्वामीजी**—समय-समयपर जो बात कही जाती है, वह किस दृष्टिसे कही जाती है और किस अवस्थामें कही जाती है—इसको देखना चाहिये। साधकके लिये कसौटी न लगानेकी बात तब कही जाती है, जब कसौटी आगे बढ़नेमें बाधक हो रही हो। आप दुर्गुण-दुराचारको आदर दे रहे हो, भगवत्सम्बन्धी बातको आदर ही नहीं देते। इसीलिये कसौटी न लगानेकी बात कही जाती है, जिससे आपकी जल्दी उन्नति हो। इससे साधकोंको लाभ भी हुआ है। नहीं तो दोषोंसे डरते-डरते उम्र निकल जायगी। दोष आगन्तुक हैं, उनकी उपेक्षा करके भगवत्सम्बन्धी बातोंको आदर दो।

आपको कसौटी लगानी हो तो उल्टी मत लगाओ, सुल्टी लगाओ कि हम भजन-स्मरण करनेवाले हैं, हमारेमें काम-क्रोध कैसे आ गये? आपको काम-क्रोधादि दोषोंको हटाना है या भजनको हटाना है? यदि दोषोंको हटाना है तो फिर दोषोंको क्यों आदर देते हो? भगवान्‌के भजनको आदर दो। भजनको आदर दो तो दोष टिकेंगे नहीं, टिक सकते नहीं। लोग बुरा कहते हैं तो वे समझते नहीं। उनकी बातपर विचार मत करो। आप अपनेको देखो कि हमारी नीयत खराब है क्या? हम खराब काम करना चाहते हैं क्या? लोग तो कुछ-न-कुछ कहेंगे ही।

एक बार भगवान्‌ शंकर, पार्वती और गणेश—तीनों नन्दीपर चढ़कर जा रहे थे। लोगोंने देखा तो बोले कि देखो, कितने निर्दयी हैं, सब-के-सब बैलपर चढ़ गये! तीनों बैलसे उतर गये। लोग बोले कि बैलपर किसीको बैठना नहीं था तो साथमें बैल रखा ही क्यों? सब बेअक्ल हैं! शंकर बैलपर चढ़ गये। लोग बोले कि खुद तो बैलपर चढ़ा है, पत्नी और पुत्र पैदल चल रहे हैं, दया ही नहीं आती! फिर पार्वतीको बैलपर बैठा दिया। लोग बोले कि देखो, स्त्रीपर कितना मोह है, उसको बैलपर चढ़ा दिया, आप पैदल चल रहे हैं! गणेशको बैलपर बैठाया तो लोग बोले कि देखो, बेटेपर कितना मोह है! बेटा बैलपर चढ़ा है, माँ-बाप पैदल चल रहे हैं! अब आप बताओ कि वे क्या करें? सब लोग ठीक कह दें, यह असम्भव बात है।

राग-द्वेष, काम-क्रोध अन्तःकरणके आगन्तुक विकार हैं, धर्म नहीं। वास्तवमें दोषोंकी सत्ता है ही नहीं।

परमात्माका अंश नित्य है, इसलिये वह किसी दोषको नित्य मान लेगा तो वह दोष दूर नहीं होगा।

भगवान्को अपना मानो तो सब काम ठीक हो जायगा। ज्यों-ज्यों आपको भगवान् नजदीक मालूम देंगे, त्यों-ही-त्यों विकार अपने-आप दूर हो जायेंगे, हटाने नहीं पड़ेंगे। सूर्यके पास अँधेरा आ ही नहीं सकता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—भगवान्का विरह कैसे पैदा हो?

**स्वामीजी**—भगवान्का विरह प्रेमसे पैदा होता है। प्रेममें संयोग (मिलन) और वियोग (विरह) दोनों होते हैं, तभी प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता है। संयोगमें प्रेमका आस्वादन होता है और वियोगमें प्रेमकी वृद्धि होती है।

**श्रोता**—हर समय भगवान्की याद कैसे रहे?

**स्वामीजी**—अगर भगवान्को याद रखना चाहो तो केवल भगवान्को ही अपना मानो, और किसीको भी अपना मत मानो। भगवान्का हो जानेपर भगवान्की याद स्वतः आती है, करनी नहीं पड़ती। आप भगवान्के हो, यह मैं कोई नयी बात नहीं कहता हूँ, प्रत्युत आपको पुरानी बातकी याद (स्मृति) दिलाता हूँ। आप भगवान्के अपना मान लो तो स्मृति जाग्रत् हो जायगी।

**हिन्दू संस्कृति ही यह बात कहती है कि 'तुम परमात्माके हो'; 'तुम परमात्माके बन जाओ'—यह नहीं कहती।** आप सदासे ही भगवान्के हैं। मैं यह नहीं कहता हूँ कि आप मेरे चेले बन जाओ, प्रत्युत यह कहता हूँ कि आप भगवान्के हैं। वही बात कहता हूँ, जो भगवान्ने कही है—'ममैवांशो जीवलोके' (गीता १५/७)। मनुष्य चेला तो नया बनता है, पर भगवान्का सदासे है।

आपने भगवान्से मुँह मोड़ा है, भगवान्ने आपसे मुँह नहीं मोड़ा है। भगवान्ने यह तो कहा है कि 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' (गीता ४/११) 'जो जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ'। परन्तु भगवान्ने यह कहीं नहीं कहा कि जो मुझसे विमुख हो जाते हैं, मैं उनसे विमुख हो जाता हूँ अथवा जो मुझे भूल जाते हैं, मैं उन्हें भूल जाता हूँ। भगवान् हमसे कभी विमुख हुए ही नहीं। वे कभी हमें भूले ही नहीं। हम ही भगवान्से विमुख हुए हैं, इसीलिये हमें भजन करनेकी जरूरत है। अगर विमुख न होते तो भजन करनेकी जरूरत नहीं थी। **भगवान्ने हमें सदासे ही स्वीकार कर रखा है। उन्होंने कभी जीवका त्याग किया ही नहीं।** भगवान्के बिना कोई जगह खाली है ही नहीं, वे सबके हृदयमें विद्यमान हैं, फिर वे हमसे दूर कैसे हो सकते हैं?

**श्रोता**—आपकी बात समझमें आती है, पर मन मानने नहीं देता।

**स्वामीजी**—यह बात है ही नहीं, सोलह आना गलत है! मन तो करण है, आप कर्ता हो। मनको दोष देना बिल्कुल अनुचित है। आप जिसको अपना मानोगे, मन उसको अपना मानने लग जायगा। मन आपके पीछे है, आप मनके पीछे नहीं हो। दोष आपका है, दीखता मनमें है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान्को याद रखना तीन तरहसे होता है—काम करते हुए भगवान्को याद रखना, भगवान्को याद रखते हुए काम करना, और भगवान्का ही समझकर काम करना। **काम करते हुए भगवान्को याद रखनेसे बढ़िया है—भगवान्को याद रखते हुए काम करना, और इससे भी बढ़िया है—भगवान्का ही काम करना।** अगर हम खाना-पीना, नहाना-धोना, सोना-जगना आदि सब काम भगवान्के लिये ही करते हैं तो सब-का-सब काम भजन हो जायगा। जैसे पतिव्रता स्त्री छोटा-बड़ा सब काम पतिके लिये ही करती है, उससे भी बढ़कर हमें सब काम भगवान्के लिये ही करना है। ऐसा करनेसे आप सभी कर्मोंसे मुक्त हो जायेंगे। ऐसा तब सिद्ध होगा,



जब आप मान लेंगे कि हम भगवान्‌के हैं।

आप यहाँ सत्संगमें आते हो, मेरी बात सुनते हो तो भगवान्‌के सिवाय आपका-हमारा क्या सम्बन्ध है? भगवान्‌की बात कहने-सुननेके सिवाय आपसे क्या लेना-देना? न आपको मेरेसे कुछ लेना है, न मेरेको आपसे कुछ लेना है। एक भगवान्‌के सिवाय आपसे क्या मतलब? भगवान्‌के लिये ही हम यहाँ इकट्ठे होते हैं। इसी तरह भगवान्‌के लिये ही संसारमें रहो। हरेक काम भगवान्‌के लिये ही करो। फिर आपकी मात्र क्रिया भजन हो जायगी।

संसारमें कोई वस्तु हमारी व्यक्तिगत नहीं है। आपके पिताजी कहते थे कि हमारा घर है, उसको आप कहने लगे कि हमारा घर है, फिर आपका बेटा-पोता कहेगा कि हमारा घर है, तो घर किसका रहा? किसीका नहीं रहा। वस्तुकी रक्षा करो, उसका सदुपयोग करो; क्योंकि सब वस्तुएँ भगवान्‌की हैं।

सम्पूर्ण सृष्टि भगवान्‌की है। कुत्तेको रोटी डालो तो यह भाव रखो कि यह भगवान्‌का है। जीवमात्र भगवान्‌का अंश है। सब-के-सब भगवान्‌के हैं—ऐसा मानकर मस्त हो जाओ! इससे सहजावस्था हो जायगी। कोई और नहीं है, कोई गैर नहीं है—यह सिद्धान्त है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान् मेरे हैं—ऐसा माननेके लिये किसी विद्याकी, बुद्धिमानीकी, चतुराईकी जरूरत नहीं है। बालक माँको अपनी मानता है तो उसने कौन-सी पढ़ाई की है? कौन-सी विद्या सीखी है? आप हृदयसे मान लो कि भगवान् मेरे हैं तो सब काम बन जायगा। जैसे विवाह होनेके बाद कन्या इस घरको अपना नहीं मानती, पिताका घर मानती है, ऐसे सब भाई-बहन कृपा करके यह मान लें कि हम भगवान्‌के हैं, यह घर हमारा नहीं है। भगवान्‌ने यहाँ रखा है, इसलिये यहाँ रहना है, पर यह हमारा घर नहीं है।

कर्मयोग, ज्ञानयोग, लययोग, राजयोग, हठयोग, मन्त्रयोग आदि कई तरहके योग हैं और उनपर चलनेवाले कई हुए हैं; परन्तु भगवान्‌को मेरा कहनेवाले बहुत कम हुए हैं। उसमें भी 'शरीर अपना नहीं है, भगवान् अपने हैं'—इस बातको जाननेवाले बहुत कम हुए हैं। वे शरीरके साथ एकता मानते हुए भगवान्‌को अपना मानते हैं। जितने सन्त-महात्मा हुए हैं, उनमें 'शरीर मैं नहीं हूँ, मैं भगवान्‌का हूँ'—ऐसा माननेवाले कम हुए हैं। '**मेरे तो गिरधर गोपाल**'—यह आधी बात तो कह देंगे, पर '**दूसरो न कोई**'—यह बात नहीं कहेंगे; कहेंगे तो नकली कहेंगे, असली भीतरसे नहीं कहेंगे। मैं भगवान्‌का हूँ—यह तो कहते हैं, पर 'शरीर मैं हूँ, शरीर मेरा है'—यह साथ रहता है।

वास्तवमें जड़ता नामकी कोई चीज ही नहीं है। जड़ता अज्ञानसे दीखती है। **जितनी जड़ता दीखती है, उतनी हमारी कमी है।** वास्तवमें सब कुछ साक्षात् परमात्मा ही हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**'। परन्तु इस बातका ठीक अनुभव करनेवाले बहुत कम हुए हैं।

भक्तमें दो तरहकी वृत्तियाँ आती हैं। जब उसकी दृष्टि भगवान्‌की तरफ जाती है, तब यह वृत्ति आती है कि केवल भगवान् ही हैं, मैं हूँ ही नहीं। जब अपनी तरफ दृष्टि जाती है, तब यह वृत्ति आती है कि मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं। इन दोनों तरहकी वृत्तियोंसे प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता है। इस प्रेममें जो आनन्द है, वह ब्रह्मानन्दमें भी नहीं है। ऐसे प्रतिक्षण वर्धमान प्रेमका अनुभव करनेवाले महात्मा बहुत कम हुए हैं। हम अपनी शक्तिसे ऐसे नहीं हो सकते, प्रत्युत भगवान्‌की कृपासे ही हो सकते हैं। भगवान्‌की कृपासे कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**साधक वास्तवमें शरीर नहीं होता। साधक निराकार होता है।** मैं साधक हूँ—यह भाव है, शरीर नहीं। यदि साधकको शरीर मानें तो शरीरके मरनेपर साधक भी मर जायगा, फिर साधन करनेका क्या लाभ हुआ?

साधनकी बात दूर रही, हिंसा करनेवाला मनुष्य भी शरीरसे हिंसा करता है। यदि वह मर जाय तो शरीर यहीं रह जायगा, फिर उस हिंसाका फल कौन भोगेगा? आप स्वयं शरीर-रहित हैं। शरीर तो भोगायतन है। जैसे हम रसोईघरमें जाकर भोजन करते हैं, ऐसे ही हम शरीरमें आकर कर्मफल भोगते हैं। मोटरसे दुर्घटना हुई, एक आदमी मोटरके नीचे आकर मर गया। ड्राइवरने उस आदमीको छुआ ही नहीं। पर दण्ड ड्राइवरको होता है, मोटरको नहीं। तलवार चलानेका दण्ड तलवार चलानेवालेको भोगना पड़ता है, तलवारको नहीं। जो शरीरका मालिक होता है, वही पाप-पुण्यका फल भोगता है। **साधन करो या असाधन करो, कोई भी काम करो, उसका फल मालिकको भोगना पड़ेगा।** इसलिये साधन करनेवालेको चाहिये कि वह अपनेको शरीर न मानकर भगवान्का अंश माने।

मुक्त होनेपर स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीर छूट जाते हैं। शास्त्रमें आया है कि वैकुण्ठ जानेसे पहले जब जीव विरजा नदीमें स्नान करता है, तब उसका भौतिक (सूक्ष्म और कारण) शरीर छूट जाता है और उसे दिव्य शरीरकी प्राप्ति हो जाती है; क्योंकि वैकुण्ठमें सभी प्राणी-पदार्थ (वृक्ष, पशु-पक्षी आदि) दिव्य होते हैं। यह शरीर भी दिव्य हो सकता है। जैसे, गीतामें आया है कि भगवान्ने अर्जुनको दिव्यचक्षु दिये तो अलगसे निकालकर दिव्यचक्षु नहीं दिये, प्रत्युत इन्हीं चक्षुओंमें शक्ति देकर उन्हें दिव्य कर दिया।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अन्तकालमें किसी भी तरहसे भगवान्की याद आ जाय तो कल्याण हो जायगा। अन्तकालमें मनुष्य कितना ही अचेत (बेहोश) क्यों न हो, पर मरनेसे पहले, प्राण छूटते समय उसको चेत होता ही है। अगर चेत होते ही वह भगवन्नाम सुन ले तो उसका कल्याण हो जायगा।

**श्रोता**—मान लें कि मैं मुँहसे नामजप कर रहा हूँ, पर मेरा मन स्त्रीमें, बेटेमें है, उस समय यदि मैं अचानक मर जाऊँ तो मेरी गति क्या होगी?

**स्वामीजी**—अन्तकालमें यह छूट है कि चिन्तन किसीका भी हो रहा हो, पर भगवन्नाम लेनेमात्रसे कल्याण हो जायगा।

**श्रोता**—यदि नामजप करते हुए कोई मूर्च्छित हो जाय और बेहोशीमें ही वह मर जाय तो उसकी क्या गति होगी?

**स्वामीजी**—यदि कोई नामजप करते हुए मूर्च्छित हो जाय तो मूर्च्छा खुलते ही उसके द्वारा नामजप होगा। आप जिस बातका चिन्तन करते हुए सोयेंगे, जगते समय सबसे पहले उसी बातका चिन्तन होगा।

गति भावके अनुसार होती है। यदि भाव ऊँचा है, कल्याणका भाव है तो कल्याण हो जायगा, अन्यथा ऊँची गति हो जायगी, यमदूत नहीं आयेंगे। जहाँ कीर्तन होता है, वहाँ यमराजके दूत नहीं आते। यदि नाम लेनेवालेका भाव नहीं है तो नाम सुनानेवालेका भाव काम करेगा।

**श्रोता**—नामजपकी जो इतनी महिमा कही जाती है, वह वास्तवमें है या नामजपमें लगानेके लिये कही जाती है?

**स्वामीजी**—वह महिमा वास्तवमें है। जो यह मानता है कि नामजपमें लगानेके लिये महिमा कही है, उसकी मुक्ति नहीं होगी; क्योंकि उसने दुर्भावना कर ली। हरेक मरनेवालेको नाम सुनाना चाहिये, पर जो सुनना न चाहे, नामका निरादर करे, उसे नाम नहीं सुनाना चाहिये।

उग्रभर पाप करनेवाला व्यक्ति अन्तसमयमें भगवान्का नाम ले ले, यह हाथकी बात नहीं है। काशीमें उग्रभर रहनेवाले व्यक्ति भी अन्त समयमें बाहर चले गये और वहीं मर गये।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

हमारे भगवान् हैं—इस प्रकार जो भगवान्का आश्रय ले लेता है, उसको परतन्त्रता नहीं भोगनी पड़ती अर्थात् वह क्रिया और पदार्थके परतन्त्र नहीं रहता। वह स्वतन्त्र हो जाता है। भगवान् हमारे हैं—इसमें न कुछ करनेकी जरूरत है, न पदार्थकी जरूरत है। करनेकी और पदार्थकी जरूरत कुटुम्ब, समाज और संसारके लिये है। हमें संसारसे मिले हुए शरीरके द्वारा संसारकी सेवा करनी है। संसारसे हमें कुछ नहीं चाहिये; क्योंकि **नाशवान् संसारके पास हमें देनेके लिये कुछ नहीं है।** संसारकी चीज संसारको दे दो और भगवान्की चीज भगवान्को दे दो अर्थात् अपने-आपको भगवान्के अर्पण कर दो। कैसी मौजकी बात है!

केवल भगवान् ही पूर्ण हैं, शेष सभी अपूर्ण हैं, अधूरे हैं। संसारमें केवल घाटा-ही-घाटा है। करोड़पति-अरबपति हो जायँ, त्रिलोकीका राज्य मिल जाय तो भी घाटा रहता है। भगवान्को अपना मान लो तो तृप्ति हो जायगी, न वस्तुकी जरूरत रहेगी, न क्रियाकी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**जो सच्चे होते हैं, वे चेला नहीं बनाते और जो चेला बनाते हैं, वे सच्चे नहीं होते।** सती शाप देती नहीं, असतीका शाप लगता नहीं। द्रौपदीपर कितनी आफतें आयीं, पर उसने शाप देकर अपना तप खर्च नहीं किया। वह शाप देकर भस्म कर सकती थी।

**श्रोता—**जिस गुरुमें श्रद्धा हो जाय, उसको तो गुरु मान सकते हैं?

**स्वामीजी—**आप उसकी बात मानो। जो बात मानता है, वही असली चेला होता है। आप ध्यान नहीं देते, जब मैं कहता हूँ कि 'आप मेरे कहनेसे मान लो' तो मैं गुरु हो गया कि नहीं? आप हमारी बात मान लो तो हम गुरु हो गये!! गुरु बनानेपर बात नहीं मानो तो पाप लगेगा, पर मेरी बात नहीं मानो तो पाप नहीं लगेगा और बात मानो तो कल्याण हो जायगा। आप चाहे हमें गुरु मान लो, चाहे हमारे गुरु बन जाओ, पर हमारी बात मानो तो कल्याण हो जायगा। बात भी हमारी नहीं है, प्रत्युत भगवान्की है, सन्तोंकी है।

**जो अपना उद्धार कर लेता है, उसको दुनियामात्रका उद्धार करनेका फल मिलता है।** मैं आपसे यही चाहता हूँ कि आप सच्चे हृदयसे भगवान्में लग जाओ, रात-दिन नामजपमें लग जाओ। इसके सिवाय मैं आपसे कुछ नहीं चाहता। न भेंट-पूजा करनेकी जरूरत है, न कान फुँकवानेकी जरूरत है, न आँख-कान बन्द करनेकी जरूरत है! केवल 'हे नाथ! हे नाथ!!' करके भगवान्में लग जाओ।

**श्रोता—**आजसे पहले जो जीवन था, अनजानमें जो पाप बन गये, उसके लिये क्या उपाय करें?

**स्वामीजी—**'हे नाथ! हे नाथ!!' पुकारो, मिट जायगा। अनजानपनेसे जो होता है, उसको भगवान् माफ कर देते हैं। आप 'हे नाथ! हे प्रभो!!' मैं आपके शरण हूँ—इस प्रकार सच्चे हृदयसे भगवान्के शरण हो जाओ तो भगवान् जाने-अनजाने किये हुए सब पाप माफ कर देंगे।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**स्वार्थ और अभिमान बहुत पतन करनेवाली चीज है। इनका त्याग कर दें तो अभी आपको महान् आनन्दकी प्राप्ति हो जायगी।** इनका त्याग करनेमें आप पराधीन नहीं हैं। अगर इनका त्याग नहीं करोगे तो बार-बार दुःख पाओगे, इसमें सन्देह नहीं है। यहाँ भी दुःख पाओगे और मरनेके बाद भी दुःख पाओगे, दुःखका अन्त नहीं आयेगा! आप साक्षात् परमात्माके अंश हो, पर स्वार्थ और अभिमानके कारण आपका पतन हो रहा है। **स्वार्थ और अभिमानका त्याग नहीं करोगे तो भगवान्का अंश होते हुए भी दुःख पाओगे, पाओगे, पाओगे। इसमें सन्देह नहीं है! किसीकी ताकत नहीं है कि आपको दुःखसे छुड़ा ले!**

मैं वस्तुओंका, धन-सम्पत्तिका, कुटुम्बका त्याग करनेके लिये नहीं कहता हूँ, प्रत्युत केवल अभिमान और

स्वार्थबुद्धिका त्याग करनेके लिये कहता हूँ।

मेरेको ऐसी-ऐसी बातें मिली हैं, जिनसे बहुत जल्दी कल्याण हो जाय। मैं वे बातें बता सकता हूँ। परन्तु केवल बातें पूछो और अभिमान तथा स्वार्थबुद्धिका त्याग नहीं करो तो कुछ नहीं होगा। भगवान् इतनी कृपा करते हैं, जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। मेरी बात मैं कह सकता हूँ कि कितनी कृपा करते हैं कि मैं अपना जोर लगाकर जिन वृत्तियोंको ठीक नहीं कर सका, भगवान्ने क्षणभरमें ठीक कर दिया! वे सबके लिये एकदम तैयार हैं। आप अभिमान और स्वार्थबुद्धिका त्याग करो, और दूसरेका हित कैसे हो, दूसरेको सुख कैसे पहुँचे, दूसरेका भला कल्याण कैसे हो—ऐसा भाव बनाओ। **हरेक काममें 'मेरेको क्या लाभ होगा'—इसको छोड़कर यह सोचो कि इससे दूसरोंको क्या लाभ होगा?** मैं यह काम करता हूँ, सत्संग-भजन करता हूँ तो दूसरोंको क्या लाभ होगा? यह सोचो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**अशुद्ध आचरण, बुरे कर्म भगवान् नहीं कराते, प्रत्युत कामना कराती है।** अर्जुनने भी भगवान्से पूछा कि न चाहते हुए भी मनुष्य किससे प्रेरित होकर पाप करता है, तो भगवान्ने उत्तर दिया कि कामना ही सम्पूर्ण पापोंका कारण है (गीता ३/३६-३७)। न भगवान् पाप कराते हैं, न प्रारब्ध पाप कराता है। कुछ-न-कुछ कामना होती है, लेनेकी इच्छा होती है, तभी पाप होते हैं। **कामना न हो तो पाप होता ही नहीं—यह निश्चित किया हुआ पक्का सिद्धान्त है।** आप खुद विचार करें कि बिना कामनाके कोई पाप क्यों करेगा? कामना ही पतनका, जन्म-मरणरूप बन्धनका, दुःखोंका कारण है। इसके सिवाय और कोई कारण नहीं है।

भोग भोगना और संग्रह करना—ये दो इच्छाएँ मुख्य हैं। अन्य इच्छाएँ इसीके अन्तर्गत आ जाती हैं। कोई भी बुरा काम बिना इच्छाके नहीं होता, और हो जाय तो उसका पाप नहीं लगता। **कामनावाले आदमीसे अच्छे काम (यज्ञ, दान, तप, व्रत, तीर्थ आदि) नहीं होते, यदि होते हैं तो वे बन्धनकारक होते हैं।** कोई भी इच्छा मत रखो तो आपसे पाप होगा ही नहीं। कोई भी इच्छा मत रखो तो आपका कल्याण हो जायगा, मुक्ति हो जायगी, तत्त्वज्ञान हो जायगा।

कामना छोड़ दो तो आपकी उन्नति हो जायगी, आप सन्त-महात्मा हो जाओगे, आपको किसी चीजकी कमी नहीं रहेगी, बिना प्रारब्धके चीज मिलेगी। कामना रखनेसे प्रारब्धवाली चीज भी कठिनतासे मिलेगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

यह नियम ले लो कि किसीको बुरा नहीं समझेंगे, किसीका बुरा नहीं चाहेंगे और किसीका बुरा नहीं करेंगे। इन तीन बातोंसे आपका अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा, आप सन्त-महात्मा बन जाओगे। कोई कितना ही बुरा काम करे, पर भीतरसे उसको बुरा मत समझो; क्योंकि भीतरसे वह परमात्माका अंश है।

भलाई करनेके लिये आप करोड़ों-अरबों रुपये लगा दो तो भी सीमित भलाई होगी, पर बुराई छोड़ दो तो असीम भलाई होगी, त्रिलोकीमात्रकी भलाई होगी। आपकी बड़ी भारी उन्नति होगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**परिवार-नियोजन, गर्भपात करना महापाप है, पर आजकल अधिक बच्चोंका पालन-पोषण करना बड़ा कठिन हो गया है, ऐसी स्थितिमें क्या करें?

**स्वामीजी—**आजतक रामायण, महाभारत आदि इतिहासमें कहीं भी परिवार-नियोजन करनेकी बात नहीं आयी है। यह कलियुगकी बात है। यह केवल भोगेच्छा है, और कुछ नहीं। केवल बहानेबाजी है। आपका, हमारा पालन कैसे हुआ? क्या पालन करनेका ठेका आपका है? भगवान्की मददके बिना क्या आप बच्चोंका पालन कर लोगे?

भगवान्की कृपासे सबका पालन होता है। कैसे होगा, यह हम नहीं जानते, पर पालन हो जायगा। आप निमित्त बन जाओ। अपने उद्योगमें कमी मत रखो।

संसारकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली तीन शक्तियाँ हैं। ब्रह्मा सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, विष्णु सबका पालन करनेवाले हैं और शंकर सबका संहार करनेवाले हैं। आप क्या इन तीनोंसे बड़े हो गये और चिन्ता करने लग गये! अगर आप पैदा करते हो तो ब्रह्मा निरर्थक हैं! आप पालन करते हो तो विष्णु निरर्थक हैं! आप संहार करते हो तो शंकर निरर्थक हैं! रामतीर्थ और उनकी स्त्री बच्चोंको सड़कपर छोड़कर चले गये तो उन बच्चोंका पालन कैसे हुआ? उनको श्रेष्ठ किसने बनाया? अतः हम पालन करते हैं—यह आपका कोरा अभिमान है, कोरी मूर्खता है।

**श्रोता**—आप साधु बने तो आपके जीवनका अनुभव क्या है?

**स्वामीजी**—हमारी माँने साधु बनाया, मैं साधु बना ही नहीं! तब मैं चार वर्षका था। माँने बड़ी भारी कृपा की, मेरेको निहाल कर दिया! हमारी माँ-जैसी माँ मिलेगी नहीं! जो साधु बनता है, उसपर जिम्मेवारी होती है। पर मैं साधु बना ही नहीं; अतः मेरेपर जिम्मेवारी है ही नहीं!

**श्रोता**—आप अपनी जीवनी सुनाओ।

**स्वामीजी**—मेरी जीवनी यही है कि आप कष्ट सहो। मैंने भी कष्ट सहा है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्य भगवान्के शरण हो जाय तो बड़ी सुगमतासे कल्याण हो जाय; क्योंकि शरण होनेके बाद भगवान्की शक्ति काम करती है। भगवान्के शरण होकर साधन करनेसे साधन सुगम हो जाता है और अपना अभिमान भी नहीं आता। भगवान्ने गीतामें ज्ञानयोग, कर्मयोग, ध्यानयोग आदि सब योग बताकर अन्तमें शरणागति बतायी है। शरण लेनेसे बहुत सुगमतासे परमात्मप्राप्ति होती है। तटस्थ होकर देखा जाय तो परमात्मप्राप्तिके, तत्त्वज्ञानके, जीवन्मुक्त होनेके जितने उपाय हैं, उन सबसे बढ़िया उपाय भगवान्की शरणागति है। शरणागति किसी भी सिद्धान्तके अथवा साधनके विरुद्ध नहीं पड़ती। इसलिये साधक किसी भी मार्गपर चले, पर जब घबराहट हो, तब वह भगवान्को पुकारे।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

लोग इधर-उधर रोटी माँगते फिरते हैं, फिर भी पेट नहीं भरता और दुःख पाते हैं। वे यदि बैठकर राम-राम करने लग जायें तो उन्हें रोटी, कपड़े आदिकी कमी नहीं रहेगी। आरम्भमें कुछ दिन तकलीफ भोगनी पड़ेगी, फिर अन्न आदिका ढेर लग जायगा, कड़्योंका पेट भरने लगेगा!

**श्रोता**—भगवन्नामका उच्चारण शुद्ध होना चाहिये या कैसे ही भगवन्नाम लें?

**स्वामीजी**—बालकको प्यास लगती है तो वह 'बू-बू-बू' कहता है, पर माँ उसको पानी देती है तो 'बू' नाम पानीका कहाँ लिखा है? माँ बच्चेका भाव समझती है। उच्चारण शुद्ध होना चाहिये, यह बात ठीक है, पर आपका ध्येय भगवान्का है तो चाहे किसी तरहसे कहो। भगवान् माँकी तरह भावग्राही हैं। जहाँ भाव उत्पन्न होता है, वहाँ भगवान् विराजमान हैं। नामका उच्चारण तो पीछे होता है, पर भगवान् पहले सुनते हैं!

भगवान् आपकी नीयत, भाव, विचार देखते हैं। आपका भाव भगवान्का होगा तो जो कुछ करो, वह भजन हो जायगा। भक्तोंका अनजानपना भगवान्को जितना प्यारा है, उतनी पण्डिताई प्यारी नहीं है—  
'जों बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥' (मानस, बाल. ८/५)। भगवान् और उनके प्यारे भक्त भावग्राही होते हैं। वे वस्तुओंसे राजी नहीं होते, भावसे राजी होते हैं।

**श्रोता**—मैं शरीर नहीं हूँ, मैं परमात्माका अंश हूँ, परमात्माका स्वरूप हूँ, फिर मैं भजन क्यों करूँ? भजनकी क्या जरूरत है?

**स्वामीजी**—कोई जरूरत नहीं; भजन न करनेसे नरकरूपी भगवान् मिलेंगे! सब कुछ भगवान्का स्वरूप है तो क्या नरक भगवान् नहीं हैं?

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—पवित्रता क्या है?

**स्वामीजी**—जीव स्वयं परमात्माका अंश होनेसे पवित्र है। कुछ कामना होनेसे, प्रकृतिका सम्बन्ध होनेसे ही अपवित्रता, अशुद्धि आती है। प्रकृतिकी चीजोंको अपना मानना ही अशुद्धिका मूल कारण है। प्रकृतिसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर महान् पवित्रता आ जाती है। प्रकृतिसे सम्बन्ध-विच्छेदके समान दूसरी पवित्रता कोई है ही नहीं।

**श्रोता**—हनुमान्जीने कहा है कि *‘प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥’* (मानस, सुन्दर.७/४) तो सुबह हनुमान्जीका नाम लें या नहीं लें?

**स्वामीजी**—यह हनुमान्जी महाराजकी नम्रता है। हनुमान्जीका नाम लेनेसे भण्डार भर जायगा, कमी कोई नहीं रहेगी। यह सन्तोंका सन्तपना है। सन्तमें दो बात होती है—उनको अपनेमें गुण तो दीखता नहीं, अवगुण उनमें रहता नहीं। चीज वह दीखती है, जो आँखसे थोड़ी दूर होती है। आँखमें लगाया हुआ अंजन (सुरमा) दीखता है क्या? सन्त और गुण एक होनेसे गुण अत्यन्त नजदीक होता है, इसलिये उनको गुण दीखता ही नहीं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

शास्त्रोंमें बहुत-सी बातें मिलती हैं, पर सार बात है—भगवान्के शरण होना। सच्ची बात है कि सिवाय भगवान्के अपना कोई नहीं है। मेरा हरेक भाई-बहनसे यह कहना है कि भगवान्को अपना समझो। भगवान्के शरण होनेसे जो फायदा है, वह औरसे नहीं है। यह मैं ठीक समझकर बात कह रहा हूँ। आपको धनुषवाला प्यारा लगे, मुरलीवाला प्यारा लगे, खप्परवाली प्यारी लगे, त्रिशूलवाला प्यारा लगे, सूँड़वाला प्यारा लगे, जो प्यारा लगे, उस एकको मानकर उसके शरण हो जाओ। मूलमें वे सब एक हैं, केवल उपासना करनेके लिये अलग-अलग हैं।

जैसे वृक्षके मूलमें जल डालनेसे वृक्षके सम्पूर्ण अंग तृप्त हो जाते हैं, ऐसे ही एक भगवान्का भजन करनेसे त्रिलोकीको शान्ति मिलती है। इसके सिवाय ऐसी कोई औषधि, उपाय, अनुष्ठान नहीं है, जिससे संसारको शान्ति मिले। अतः ‘हे नाथ, हे नाथ!’ कहकर भगवान्को पुकारो। इसके सिवाय विपत्ति, दुःख मिटानेके लिये कोई उपाय, अनुष्ठान करनेकी जरूरत नहीं है। एक भगवान्में लगनेसे सब काम सिद्ध हो जाता है, कोई काम बाकी नहीं रहता। इसलिये आप भगवान्में लगे रहो, घबराओ मत कि इतना समय हो गया, कुछ दीखा नहीं। जल्दबाजी मत करो कि मेरेको जल्दी मिल जाय। जल्दी करके करोगे क्या? हमें तो उग्रभर भगवान्में लगना है। कोई आपको कष्ट दे तो भी आप अपनी तरफसे उसका बुरा मत चाहो। जो आपका बुरा करना चाहेगा, उसके द्वारा भी आपका भला होगा। वह दुःख देगा तो उसके द्वारा आपके पापोंका नाश होगा। दुःख सहनेमें कठिनता होती है, पर उससे फायदा होता है।

‘हे नाथ, मैं आपका हूँ’—ऐसा कहकर निश्चिन्त हो जाओ। फिर मनमें कोई अच्छी-बुरी बात आये, कोई भय लगे, कोई चिन्ता आये तो भगवान्से कह दो; जैसे—बालकके मनमें जो बात आती है, वह माँसे कह देता है। आप जितनी चिन्ता करोगे, भगवान्को उतनी कम चिन्ता होगी। आप निश्चिन्त हो जाओ तो भगवान् आपकी चिन्ता करेंगे।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*



‘चातुर्मास्य’ एक अनुष्ठान है। शास्त्रमें इसके बहुत-से नियम बताये गये हैं; जैसे ब्रह्मचर्य-पालन, भूमि-शयन, एक समय भोजन आदि। चातुर्मास्य तीन तरहसे होता है—चार महीनोंका, तीन महीनोंका और दो महीनोंका। हमारी परम्परामें दो महीनोंका चातुर्मास्य आया है, इसलिये हम श्रावण और भाद्रपद—दो महीनोंका ही चातुर्मास्य करते हैं।

चातुर्मास्य रखनेमें सन्तोंका तात्पर्य था कि इस समय वर्षा होने उद्भिज्ज जन्तु बहुत पैदा होते हैं। घूमने-फिरनेसे वे मरते हैं। इसलिये चातुर्मास्यमें सन्त एक जगह रहते हैं। दूसरी बात, वर्षामें अंकुर ज्यादा पैदा होते हैं, जो पैरोंके नीचे आनेपर नष्ट हो जाते हैं। इसका भी दोष लगता है। सन्त-महात्मा विचार करते हैं कि हमारे द्वारा किसीको दुःख न हो, किसीकी हानि न हो, किसीका अहित न हो।

हमारा जीवन सबके हितके लिये होना चाहिये। हमें जो कुछ मिला है, दूसरोंके हितके लिये ही मिला है।  
**संसार तो कर्मोंका फल है, पर मानवशरीर कृपाका फल है।**

जितने वेद, पुराण, स्मृति आदि सब ग्रन्थ हैं, उन सबमें ‘सत्संग’ और ‘भगवन्नाम’ की बहुत महिमा आयी है। इन दोनोंके द्वारा बहुत लाभ होता है। परन्तु सत्संगमें इतनी स्वतन्त्रता नहीं है, जितनी भगवन्नाममें स्वतन्त्रता है। कारण कि अभी सन्त-महात्मा बहुत कम हो गये हैं। पहले जितनी गहरी समझके आदमी थे, उतनी गहरी समझके विद्वान् आदमी आज बहुत कम रह गये हैं। भजन-स्मरण करनेवाले कम रह गये हैं। साधुओंमें बनावटीपन बहुत ज्यादा आ गया है। असलियत बहुत कम रह गयी है। इसलिये भगवन्नामका जप विशेषतासे करना चाहिये।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

हम जिस परमात्माको मानते हैं, वह परमात्मा सब जगह, सब समय समान रीतिसे परिपूर्ण है, केवल यह विश्वास कर लें। परमात्मा विश्वाससे मिलते हैं—

**मोको कहाँ ढूँढ़े बन्दा, मैं तो तेरे पास में॥**

.....

**खोजी होय तुरत मिल जाऊँ, पलभर की तलास में।**

**कहत कबीर सुनो भाई साधो, मैं तो हूँ विश्वास में॥**

अगर हम यह मान लें, विश्वास कर लें, स्वीकार कर लें, निश्चय कर लें, धारणा कर लें कि परमात्मा सब जगह हैं तो बहुत सुगमतासे परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। संसारकी प्राप्ति परिश्रम करनेसे होती है, पर परमात्माकी प्राप्ति बिना परिश्रमके, स्वतः—स्वाभाविक होती है; क्योंकि परमात्माकी अप्राप्ति नहीं है। नित्यप्राप्तकी ही प्राप्ति करनी है। परमात्मा अप्राप्त हैं—इस मान्यताको मिटाना ही नित्यप्राप्तकी प्राप्ति है। माननेके लायक एक परमात्मा ही हैं, और कोई माननेके लायक नहीं है। संसार जाना जाता है, माना नहीं जाता। संसारको जानना यही है कि हमारी कोई चीज नहीं है। जैसे बिजलीकी तारमें बिजली रहते हुए भी नहीं दीखती, पर नहीं दीखनेपर भी हम मान लेते हैं कि बिजली है, ऐसे ही आप कृपा करके मान लें कि परमात्मा सब जगह हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

एक ‘भौतिक शरीर’ होता है, एक ‘भावशरीर’ होता है। भगवत्प्राप्ति चाहनेवाला साधक शरीरधारी नहीं होता। कारण कि शरीरधारी परमात्माको प्राप्त नहीं हो सकता। परमात्माकी प्राप्ति शरीरको नहीं होती, प्रत्युत स्वयंको होती है। स्वयं तीनों शरीरोंसे अतीत होता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—ये तीनों शरीर प्रकृतिके हैं। परमात्माकी प्राप्ति प्रकृतिसे नहीं होती, प्रत्युत प्रकृतिके त्यागसे होती है। इस तरफ साधकोंका भी बहुत कम ध्यान है, फिर साधारण लोग तो समझें ही क्या! जो सिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं, ऐसे पुरुषोंका भी इस तरफ ध्यान नहीं है!! परमात्मा और उसका अंश स्वयं—दोनों ही प्रकृतिसे अतीत हैं।

परमात्मप्राप्ति स्वयंको होती है। स्वयंमें अहंकार नहीं है; क्योंकि अहंकार अपरा प्रकृति है। अतः परमात्मप्राप्ति अहम्के त्यागसे होती है—‘निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति’ (गीता २/७१)। जिसमें अपने वर्ण और आश्रमका अहंकार है कि ‘मैं साधु हूँ, मैं गृहस्थ हूँ आदि’, उसको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। स्त्रीको, पुरुषको, ब्राह्मणको, क्षत्रियको, वैश्यको, शूद्रको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। **परमात्माकी प्राप्ति ‘भक्त’ को होती है। जो भक्त होता है, वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, संन्यासी, वानप्रस्थ नहीं होता।** भक्तका सम्बन्ध केवल भगवान्के साथ होता है, जबकि ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिका सम्बन्ध संसारके साथ होता है। संसारके साथ ‘वर्ण’ का सम्बन्ध स्थूलरूपसे है, आश्रम’ का सम्बन्ध अपेक्षाकृत सूक्ष्मरूपसे है। जिसका सम्बन्ध भगवान्के साथ होता है, उसको भगवान्की प्राप्ति होती है। यह गहरी बात है! ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि बने हुए और ब्रह्मचारी, गृहस्थ आदि बने हुए परमात्माको कैसे प्राप्त कर लेंगे? परमात्माको प्राप्त करेंगे भक्त! भक्त किसी वर्ण-आश्रमका नहीं होता। भक्तमें वर्ण-आश्रमका, स्त्री-पुरुषका भेद नहीं होता। भगवान् भक्तको मिलते हैं, चाहे वह मेहतर हो या ब्राह्मण हो।

**जो अपनेको किसी वर्ण-आश्रमका समझता है, उसको परमात्माकी प्राप्ति कैसे होगी? परमात्माकी प्राप्ति उसको होगी, जो अपनेको परमात्माका समझता है।** जिसके भीतर यह अभिमान है कि मैं साधु हूँ, मैं संन्यासी हूँ, मैं दण्डी स्वामी हूँ, उसको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। अगर परमात्माकी प्राप्ति चाहते हो तो अपने वर्ण और आश्रमका अभिमान छोड़ो।

भगवान्की प्राप्ति चाहते हो तो मनमें समझो कि ‘मैं भगवान्का हूँ’—‘**देवो भूत्वा यजेद्देवम्।**’ ‘मैं भगवान्का हूँ’—ऐसा माननेसे भगवान्के साथ सम्बन्ध होगा, और भगवान्के साथ सम्बन्ध होनेसे भगवान्की प्राप्ति होती है, चाहे वह शूद्र क्यों न हो!

मीराबाईने एकमात्र भगवान्को अपना माना तो उसका शरीर भगवान्के विग्रहमें लीन हो गया। अगर वह शरीरको अपना मानती तो क्या शरीर भगवान्में लीन होता? साधक शरीर नहीं होता, प्रत्युत भगवान्का होता है। ‘मैं भगवान्का हूँ’—यह तत्काल सिद्धि करनेवाली बात है। इसलिये अगर आप परमात्मप्राप्ति चाहते हैं तो हृदयसे मान लो कि ‘मैं जैसा हूँ, भगवान्का हूँ। मेरा सम्बन्ध भगवान्के साथ है’।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—भक्तकी अभिलाषा होते हुए भी भगवान् दर्शन नहीं देते तो क्या भगवान् समयसे बँधे हुए हैं? मैं भगवान्के लिये खूब रोता हूँ, फिर भी भगवान् दर्शन नहीं देते, क्या कारण है?

**स्वामीजी**—भगवान् किसीसे बँधे हुए नहीं हैं। भगवान् भक्तका भाव देखते हैं। हम अपने भावोंको उतना नहीं पहचानते, जितना भगवान् पहचानते हैं। भगवान् जहाँ उचित समझते हैं, जल्दी दर्शन देते हैं। भावके अनुसार वे देरी करते हैं। इस विषयमें हमारी बुद्धि काम नहीं करती। भगवान् जो करते हैं, ठीक करते हैं। हमारी समझ बहुत तुच्छ है, पर भगवान्की समझ असीम है। भगवान् भक्तका जैसा भाव होता है, वैसा ही काम करते हैं—‘**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**’ (गीता ४/११)। साधकको ऐसा कभी नहीं मानना चाहिये कि मैं बहुत कर रहा हूँ। बहुत कर रहे हैं या कम कर रहे हैं—इस बातको भगवान् समझते हैं, हम नहीं समझते। हमें ज्यादा दीखता है, पर थोड़ा होता है, और बहुत थोड़ा दीखता है, पर ज्यादा हो जाता है।

जबतक साधकका यह भाव होता है कि मैंने बहुत भजन किया, तबतक भजन शुरू नहीं हुआ। भजन शुरू होनेपर यह मालूम नहीं होगा कि मैंने भजन किया है। **भगवान्का भजन करनेवालेको यह पता ही नहीं लगता कि हम भजन करनेवाले हैं।** भक्तमें अवगुण तो रहता नहीं और गुण अपनेमें दीखता नहीं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—काम-क्रोध आदि दोषोंके कारण 'सब कुछ वासुदेव है' यह भाव नहीं बन रहा है। ये दोष कैसे दूर हों, जिससे 'सब कुछ वासुदेव है' यह भाव बने?

**स्वामीजी**—यह भाव भगवान्की कृपासे बनता है। काम, क्रोध आदि दोष प्रायः सबमें रहते हैं, पर भगवद्भाव बन सकता है। भगवान्की प्राप्तिके लिये 'मानना' मुख्य है और तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये 'जानना' मुख्य है। पहले विश्वासपूर्वक यह मान लें कि भगवान् सब जगह समान रीतिसे परिपूर्ण हैं। संसार प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है, एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता, पर परमात्मा ज्यों-के-त्यों रहते हैं, यह मान लें। यह आप काम-क्रोधके रहते हुए भी मान सकते हैं। यह विभाग अलग है, वह विभाग अलग है। अतः **केवल यह मान लें कि परमात्मा सब जगह हैं। यह मानना जितना जोरदार होगा, उतने ही काम-क्रोधादि दोष कम हो जायँगे और फिर नष्ट हो जायँगे। अन्तमें यह मानना नहीं रहेगा, परमात्मा दीखने लग जायँगे।** परन्तु सबसे पहले केवल इतना मान लो कि परमात्मा सब जगह हैं। ऐसा माननेमें काम-क्रोधादि बाधा नहीं दे सकते।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—भगवान् दुष्टोंका विनाश क्यों करते हैं—'विनाशाय च दुष्कृताम्'। क्या उनका नाश किये बिना धर्मकी स्थापना नहीं हो सकती?

**स्वामीजी**—भगवान् क्यों करते हैं—यह बात वह पूछे, जो भगवान्से ऊपर हो! आपको—हमें यह अधिकार नहीं है। भगवान् कुछ भी करें, उससे धर्मकी स्थापना होगी, नुकसान नहीं होगा। भगवान्की चाल अलग है, भक्तोंकी चाल अलग है। जैसे बड़े ऑपरेशन करनेका काम सिविल सर्जनका होता है, कम्पाउण्डरका नहीं, ऐसे ही दुष्टोंका नाश करनेका काम भगवान्का है, भक्तका काम नहीं है। भक्तका काम है—दुष्टोंकी दुष्टताका नाश करना, खराब स्वभावका नाश करना। सत्संगके द्वारा खराब स्वभावका नाश होता है और स्वभाव शुद्ध होता है। सत्संग, नामजप, कीर्तन आदिसे पापोंका नाश होता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—आप कहते हैं कि किसीको बुरा न समझें; परन्तु जो प्रत्यक्षमें बुराई कर रहा है, उसे बुरा कैसे नहीं समझें?

**स्वामीजी**—किसीको बुरा समझनेसे आपको क्या लाभ है इस बातपर विचार करें। मैं आपके कल्याणके लिये बात कहता हूँ। आपको वह काम करना है, जिससे आपका कल्याण हो। बुराई मिटानेमें तो फायदा है, पर बुरा माननेमें रत्तीमात्र भी फायदा नहीं है। दूसरेको बुरा माननेसे आपमें बुराई आयेगी, आपका अन्तःकरण मैला होगा, इसमें सन्देह नहीं है।

मैं अभिमानसे नहीं कहता हूँ, मेरेको ऐसी बातें मिली हैं, जिनसे बहुत जल्दी पारमार्थिक उन्नति हो सकती है।

किसीको बुरा मत समझो, किसीका बुरा मत चाहो और किसीका बुरा मत करो—ये तीन बातें मान लें। ऐसे ही जो नहीं करना चाहिये, वह मत करो और जो नहीं कर सकते, उसको करनेकी चेष्टा मत करो—ये दो बातें मान लें। फिर आप अवश्य ही 'कर्मयोगी' हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

कन्या पीहरकी होती है, फिर भी विवाह होनेपर वह ससुरालकी हो जाती है। परन्तु आप सदासे भगवान्के हैं, फिर भगवान्का होनेमें (अपनेको भगवान्का माननेमें) आपको क्या कठिनाई है? कन्या माँके दूधसे ही पली है, माँका ही अन्न खाकर बड़ी हुई है, पर उसका विवाह होनेके बाद माँ-बाप, बड़ा भाई उसके घरका अन्न-जल

नहीं लेते। परन्तु जब उसका पुत्र हो जाता है, तब माँ-बाप उसके घरका अन्न-जल ले सकते हैं, उसकी माँ चाहे तो उग्रभर उसके घरमें रह सकती है, पितर भी (नानाश्राद्धमें) उसके घरका पिण्ड ले सकते हैं। जब कन्या ससुरालकी हो सकती है तो आप भगवान्‌के क्यों नहीं हो सकते? जैसे सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) और भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) गृहस्थमें रहते हुए भी सन्त थे, ऐसे ही 'हम भगवान्‌के हैं'—ऐसा मानकर आप सब-के-सब जहाँ हैं, वहीं रहते हुए सन्त हो सकते हैं। इसमें कोई आपको बाधा नहीं दे सकता।

अब तो हम भगवान्‌के हो गये—ऐसा मानकर आप तत्काल निश्चिन्त, निर्भय, निःशंक, निःशोक हो जाओ। भगवान्‌का होनेके बाद भगवान्‌की याद अपने-आप आयेगी, करनी नहीं पड़ेगी। जैसे बेटा स्वतः, बिना पढ़े-लिखे बापकी सम्पत्तिका मालिक होता है, ऐसे ही भगवान्‌का होनेपर आप भगवान्‌की सम्पत्तिके मालिक हो जाओगे। लौकिक सम्पत्ति आपके अधीन नहीं है, पर अलौकिक सम्पत्ति आपके अधीन है।

मान लो, एक आदमीके सिरपर बहुत कर्जा चढ़ा हुआ है। लोग उसको बहुत तंग करते हैं। उसकी नीयत कर्जा चुकानेकी है, पर चुका नहीं पाता। वह यदि एक करोड़पति-अरबपति सेठका नौकर हो जाय तो फिर लोग उसको तंग नहीं करते। लोग खुश हो जाते हैं कि अब यह कर्जा चुका देगा। ऐसे ही आप भगवान्‌के हो जाओ तो धर्मराजतक सब खुश हो जायेंगे कि यह कितना ही पापी हो, अब यह भगवान्‌का हो गया, अब इसको तंग मत करो, यह सब चुका देगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

महाभारतको देखें तो भगवान्‌ने पाण्डवोंके अनुकूल भी बहुत बातें कीं और प्रतिकूल भी बहुत बातें कीं। पर पाण्डवोंमें यह विलक्षणता थी कि उन्होंने भगवान्‌पर अश्रद्धा नहीं की। पाण्डवोंमें भीमसेन मुँहफट था, पर उसने भी भगवान्‌के विरुद्ध बात नहीं की। भगवान्‌पर श्रद्धा हो तो ऐसी हो ! परन्तु दुर्योधनकी भगवान्‌पर श्रद्धा नहीं हुई। वह भगवान्‌को एक चालाक, चतुर आदमी मानता था। पाण्डवोंमें यह विशेषता थी कि वे मनके विरुद्ध बात होनेपर भी समझते थे कि भगवान्‌ अपने हैं। इसी तरह हमारे मनके विरुद्ध घटना होनेपर भी भगवान्‌ अपने दीखने चाहिये।

हम भगवान्‌के विधानको समझते नहीं। हमारे प्रतिकूल बहुत-सी बातें होती हैं, उनके पीछे भगवान्‌का विधान होता है, जो हमारे लिये सदा मंगलमय होता है। जैसे माँपर विश्वास होता है, ऐसे ही भगवान्‌पर विश्वास होना चाहिये। माँको भी हम मानते हैं, जानते नहीं।

भगवान्‌को हम मान ही सकते हैं, जान नहीं सकते। उनको मानना ही उनको जानना है। भगवान्‌को न माननेपर भी भगवान्‌में कुछ फर्क नहीं पड़ता। फर्क न माननेवालेपर पड़ता है। वह भगवान्‌से लाभ नहीं उठा सकता, जबकि भगवान्‌को माननेवालेको विशेष लाभ होता है। कोई भगवान्‌को माने चाहे न माने, भगवान्‌ सबपर समान कृपा करते हैं।

संसारका काम करते हुए भगवान्‌को याद रखना—इसमें संसारका काम मुख्य है, भगवान्‌की याद गौण है। भगवान्‌को याद रखते हुए संसारका काम करना—इसमें भगवान्‌की याद मुख्य है, संसारका काम गौण है। इन दोनोंसे श्रेष्ठ बात है—भगवान्‌का ही काम करना अर्थात् कामको भगवान्‌का ही काम समझकर करना। भगवान्‌का काम समझकर करनेसे सब समय भगवान्‌की याद ही मुख्य रहेगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अनुकूलतामें सभी राजी होते हैं, पर प्रतिकूलतामें वे राजी होते हैं, जिन्होंने सत्संग किया है। सत्संगमें हम सुनते हैं कि अनुकूलतामें पुण्य नष्ट होते हैं और प्रतिकूलतामें पाप नष्ट होते हैं। हमारे पुण्य नष्ट होने चाहिये या पाप नष्ट होने चाहिये? सब अपने पाप नष्ट करना चाहते हैं। दूसरी बात, प्रतिकूलतामें आदमीकी जितनी

उन्नति होती है, उतनी अनुकूलतामें नहीं होती। जितने अच्छे सन्त-महात्मा हुए हैं, उनकी पहली अवस्था प्रायः कठिनतासे बीती है। अतः **प्रतिकूलतामें पुराने पाप नष्ट होते हैं और नयी उन्नति होती है।** मनुष्यको अनुकूलता अच्छी लगती है, पर प्रतिकूलतामें लाभ ज्यादा होता है।

**प्रतिकूलता आये बिना आदमीकी परीक्षा नहीं होती, उसके भावोंका पता नहीं लगता।** रामजीके सामने ज्यों-ज्यों प्रतिकूलता आती है, त्यों-त्यों उनका तेज बढ़ता है। जैसे, जबतक रामजीको वनवासका समाचार नहीं मिला, तबतक वे 'रघुकुलदीप' अर्थात् दीपकके समान थे—

**निरखि बदन कहि भूप रजाई। रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई॥**

(मानस, अयोध्या. ३९/४)

जब वे दशरथजीके पास गये, तब वे 'रघुबंसमनि' अर्थात् मणिके समान हो गये—

**जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु।**

(अयोध्या. ३९)

और जब उनको वनवासमें जानेका समाचार मिला तब वे 'भानुकुल भानू' अर्थात् सूर्यके समान हो गये—

**मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। राम सहज आनंद निधानू॥**

(अयोध्या. ४१/३)

अगर रामजीको वनवास नहीं होता तो भरतजीका भाव, उनका प्रेम, उनका त्याग भी प्रकट नहीं होता; और रामायणमें इतनी विलक्षणता भी नहीं दीखती।

● **घरकी खटपटको चटपट मिटा देना चाहिये। खटपट ज्यादा हो जाय तो प्रेमसे अलग हो जायँ। अलग होनेमें पंचायती न पड़े, किसी दूसरे पंचको बुलाना न पड़े।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जब लगन लग जाती है कि हमें भगवत्प्राप्ति करनी है, तब साधन सुगम हो जाता है। लगन लगानेके लिये इस बातपर विशेष ध्यान दें कि यह मनुष्यशरीर केवल भगवत्प्राप्तिके लिये मिला है। संसारके भोग भोगने और संग्रह करनेके लिये मनुष्यशरीर है ही नहीं। **सभी मनुष्य चाहते हैं कि हम सदाके लिये सुखी हो जायँ और दुःख सदाके लिये मिट जाय। परन्तु इस चाहकी पूर्ति भगवान्के भजनके बिना नहीं होगी, नहीं होगी, नहीं होगी।** त्रिलोकीका राज्य, इन्द्रका पद अथवा ब्रह्माका पद भी मिल जाय तो भी इस चाहकी पूर्ति नहीं होगी। संसारके जितने भी सुख हैं, कोई भी सदा रहनेवाला नहीं है। इस विषयमें भारतके सन्त-महात्माओंने जितनी खोज की है, उतनी किसी देशमें नहीं हुई है। **पारमार्थिक उन्नति जितनी भारतमें हुई है, उतनी किसी देशमें नहीं हुई है।**

**भगवत्प्राप्तिमें बाहरका समय काम नहीं आता, भीतरकी लगन काम आती है।** लगन हो तो थोड़े समयमें भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**गीतामें भगवान्ने कहा है कि सात्त्विक, राजस और तामस भाव मुझसे ही होते हैं (७/१२), फिर हम कर्म करनेमें स्वतन्त्र कैसे हुए? हम जो सात्त्विक-राजस-तामस कर्म करते हैं, उनका फल हमें क्यों भोगना पड़ता है?

**स्वामीजी—**एक विभाग विधि-निषेध (करने और न करनेका) का है और एक विभाग ज्ञान (देखने) का है। ये दोनों विषय अलग-अलग हैं। 'क्या करें और क्या नहीं करें'—यह विधि-निषेध तो शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार करना चाहिये, और 'सब कुछ परमात्मा हैं'—यह देखना, समझना चाहिये। सब कर्म भगवान् कराते हैं—यह बात

है ही नहीं। करनेका विषय अलग है, देखनेका विषय अलग है।

मनुष्यसे पाप कामना कराती है, भगवान् नहीं—‘**काम एषः**’ (गीता ३/३७)। मनुष्य अपने सुखके लिये, अपने भोगके लिये, अपनी इच्छापूर्तिके लिये पाप करता है। अगर यह मानें कि पाप भी भगवान् हैं तो फिर उसके फल (दण्ड)—रूपमें मिलनेवाला दुःख, नरक भी भगवान् हैं, जिसको कोई नहीं चाहता! विचार करें, अगर सब कुछ भगवान् हैं तो क्या कुम्भीपाक, रौरव आदि नरक भगवान् नहीं हैं? तत्त्वसे सब परमात्मा होते हुए भी विधि-निषेध अलग चीज है। आप शुभ कर्म करेंगे तो आपको सुख मिलेगा और अशुभ कर्म करेंगे तो आपको दुःख मिलेगा। यह न्याययुक्त बात है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

हमें जहाँ भी कोई विलक्षणता दीखती है, वह वास्तवमें भगवान्की ही है (गीता १०/४१)। जैसे इतने पंखे चलते हैं, बत्तियाँ जलती हैं, इन सबमें शक्ति बिजलीकी है, ऐसे ही संसारमें जहाँ भी विलक्षणता, अलौकिकता, विचित्रता, श्रेष्ठता, महत्ता दीखती है, वह वास्तवमें भगवान्की ही है। उस विलक्षणताको भगवान्की न मानकर किसी व्यक्तिकी मान लेना गलती है। अच्छे-अच्छे सन्त-महात्माओंमें जो विलक्षणता दीखती है, वह भगवान्के सम्बन्धसे ही आती है। जो विशेषताको अपनी मान लेता है, उसमें वह विशेषता नहीं रहती।

लोग वक्ताको तो अपना मान लेते हैं, पर वक्ता जिसको श्रेष्ठ मानता है, उस भगवान्को अपना नहीं मानते। वक्ता श्रेष्ठ नहीं है, प्रत्युत वह जिनको श्रेष्ठ मानता है, वे भगवान् श्रेष्ठ हैं। अगर आप भगवान्को अपना मान लें तो आप श्रेष्ठ हो जाओगे। आपमें बहुत विलक्षणता, अलौकिकता आ जायगी। जो सबसे छोटा होता है, वह भगवान्का भजन करनेसे सबसे बड़ा हो जाता है।

- भगवान्को याद करनेवालेकी बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती। उसकी बुद्धि तेज होती है।
- आज कहते हैं कि एक होनेसे लड़ाई मिट जायगी, पर वास्तवमें लड़ाई बाहरसे एकता करनेसे नहीं मिटेगी, प्रत्युत स्वार्थके त्याग और परहितके भावसे मिटेगी। वास्तविक एकता स्वार्थके त्याग और दूसरेके हितके भावसे ही होगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जड़-चेतनका विभाग हमारी दृष्टिमें है। वास्तवमें सब कुछ परमात्मा ही हैं—‘**वासुदेवः सर्वम्**’। आपने एक सपना देखा, जिसमें एक बूढ़ा आदमी गायको लिये हुए है। गाय ब्यायी हुई है, उसके दो-तीन दिनका बछड़ा है। साठ वर्षका बूढ़ा, छः-सात वर्षकी गाय और दो-तीन दिनका बछड़ा—तीनों सपनेमें एक साथ ही पैदा हो गये! यह परमात्माकी माया है, जिसमें कुछ भी असम्भव नहीं है। जैसे सपनेमें हमारे सिवाय कुछ है ही नहीं, ऐसे ही संसारमें एक परमात्माके सिवाय कुछ है ही नहीं। जैसे सपनेमें बूढ़ा, गाय और बछड़ा—तीनों हमारेमें ही थे, ऐसे ही सब कुछ परमात्मामें ही है। जड़-चेतन अज्ञानीकी दृष्टिमें हैं। ज्ञान होनेपर सत्-असत्, जड़-चेतन सब कुछ परमात्मा ही हैं।

हम परमात्माके अंश हैं। हमारा सम्बन्ध परमात्माके साथ है। शरीरके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है। शरीर कुटुम्ब, समाज और संसारके काम आता है, हमारे काम नहीं आता। कुटुम्ब, समाज और संसारकी सेवाके लिये शरीर है, हमारे लिये नहीं है।

**श्रोता**—शरीरसे धर्मका पालन होता है—‘**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**’; अतः शरीर हमारे काम आया ?

**स्वामीजी**—शरीर धर्म-पालनके काम आया, आपके काम नहीं आया। नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्र—ये तीन हैं। इनमें मोक्षशास्त्र आपके काम आयेगा, नीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्र आपके काम नहीं आयेगा।



धर्म पुण्य है, जो भोगकर नष्ट हो जायगा, आपके साथ नहीं रहेगा। धर्मका फल है सुख और सुख है नाशवान्। अतः आपके साध्य परमात्मा हैं, धर्म नहीं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

दूसरेको बुरा समझनेसे हमें क्या फायदा होता है—इसका उत्तर किसीने मेरेको दिया नहीं है। दूसरेको बुरा समझनेसे आपको लेशमात्र भी फायदा नहीं होगा। दूसरेको बुरा समझनेवालेके भीतर बुराई आयेगी ही। गीतामें सबसे उत्तम बात यह बतायी है कि ‘सबको परमात्मस्वरूप देखनेवाला महात्मा संसारमें अत्यन्त दुर्लभ है—‘वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः’ (७/१९)। मैं चाहता हूँ कि आप सब भी ऐसे बन जायँ। सबको परमात्मस्वरूप न समझ सको तो कम-से-कम, कम-से-कम दूसरेको बुरा समझना, दूसरेका बुरा चाहना और दूसरेका बुरा करना तो छोड़ दो। बुराईसे अपनेको बचाओ। इन तीन बातोंको माननेसे आप भले हो ही जाओगे, यह नियम है।

संसारमें आकर किसीका हित न कर सको तो कम-से-कम किसीका अहित तो मत करो। केवल किसीका बुरा न करनेमात्रसे आपके द्वारा ‘कर्मयोग’ का अनुष्ठान हो जायगा; आप कर्मयोगके आचार्य बन जाओगे, महात्मा बन जाओगे। किसीका भला करोगे तो सीमित भला होगा, पर किसीका बुरा नहीं करोगे तो असीम भला होगा। जो किसीको बुरा मानेगा नहीं, किसीका बुरा चाहेगा नहीं, किसीका बुरा करेगा नहीं, वह खुद बुरा कैसे रहेगा? वह भला आदमी हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है।

एक बार नारदजीने भगवान् कृष्णसे कहा कि आप पाण्डवोंका बड़ा पक्षपात करते हैं! भगवान्ने कहा कि मैं पाण्डवोंका पक्षपाती क्यों हूँ, आप परीक्षा करके देख लो। भगवान्ने युधिष्ठिरको बुलाया और कहा कि तुम शहरमें जाओ और किसी एक बुरे आदमीको लेकर आओ। युधिष्ठिर पूरा शहर घूम आये, पर उन्हें एक भी बुरा आदमी नहीं मिला। फिर भगवान्ने दुर्योधनको बुलाया और कहा कि तुम शहरमें जाकर किसी एक भले आदमीको लेकर आओ। दुर्योधन पूरा शहर घूम आया, पर उसे कोई भला आदमी मिला ही नहीं। जिसके भीतर बुराई नहीं है, उसको बुरा आदमी कैसे मिलेगा? और जिसके भीतर भलाई नहीं है, उसको भला आदमी कैसे मिलेगा?

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**दूसरा बुराई करता हो तो उसको बुरा नहीं समझें तो क्या समझें?

**स्वामीजी—**आप यह समझो कि भगवान् हैं और कलियुगकी लीला कर रहे हैं। उसको बुरा समझनेसे आपको क्या भला होता है, बताओ। वह कुछ भी करे, आपको समझनेकी क्या जरूरत है? नहीं समझो तो आपकी क्या हानि है?

दूसरा बुराई करता हुआ दीखे तो उसपर दया आनी चाहिये, मनमें दुःख होना चाहिये, उसके हितका भाव होना चाहिये। कारण कि जिसका बुरा हो रहा है, वह तो अपने पुराने कर्मोंका फल भोग रहा है, पर बुरा करनेवाला नया पाप कर रहा है। इसलिये उसके प्रति यह भाव आना चाहिये कि यह पापसे कैसे छूटे? भगवान्से प्रार्थना करे कि ‘हे नाथ! यह बुराईसे छूट जाय’। ऐसा करनेसे वह बुराईसे छूट जायगा, भला हो जायगा।

बुरा करनेवालेको देखकर आपको गुस्सा आयेगा तो उसको भी गुस्सा आ जायगा। वह कहेगा कि मैं कुछ भी करूँ, तू कहनेवाला कौन है? परन्तु आपके मनमें उसके हितका भाव होकर दुःख होगा तो आप उसको थप्पड़ भी मार दोगे तो वह चुप रहेगा। उसके भीतर यह असर पड़ेगा कि ये मेरे भलेके लिये थप्पड़ मारते हैं। मैं आपको कड़ी-कड़ी बातें भी कह देता हूँ तो आप गुस्सा नहीं करते; क्योंकि मैं हृदयसे आपका भला चाहता हूँ, बुरा नहीं चाहता। भावका बड़ा असर पड़ता है। आप एकान्तमें बैठकर भी अगर हृदयमें यह भाव रखें कि किसीका बुरा न हो तो आप सन्त बन जाओगे।

भलाईकी जड़ हैं भगवान् और बुराईकी जड़ हैं आप! आप बुराई छोड़ दें तो बुराई रहेगी ही नहीं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्य अपनेको बड़ा शूरवीर मानता है कि मैंने इतना बड़ा काम किया, पर वास्तवमें होता वही है, जो भगवान्ने पहलेसे रचकर रख दिया है—

**होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥**

(मानस, बाल. ५२/४)

**करी गोपाल की सब सोइ।**

**जो अपनों पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोइ॥**

(सूर-विनयपत्रिका २७६)

अनन्त ब्रह्माण्ड हैं और उनमें छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी जो बात होती है, वह सब भगवान्की ही की गयी होती है। जैसे, सिनेमामें वही दीखता है, जो उसमें पहलेसे ही भरा हुआ है। सिनेमाकी फिल्ममें भूत-भविष्य-वर्तमान नहीं है, उसमें सब-का-सब वर्तमान है। मनुष्य अपना पतन और उत्थान कर सकता है, यह उसके हाथकी बात है; परन्तु संसारमें वह कुछ कर सके, यह उसके हाथकी बात नहीं है। संसारमें वही होगा, जो होनेवाला है। हम ऐसा कर लेंगे, वैसा कर लेंगे—ऐसा अभिमान करनेवाले कई मर गये, पर काम कुछ हुआ नहीं। परन्तु भगवान्के भक्त निश्चिन्त रहते हैं और जो होता है, उसको भगवान्का विधान मानकर उसीमें आनन्द मनाते हैं।

भगवान्के विषयमें बहुत-सी बातें आती हैं। परन्तु जो अपना कल्याण चाहता है, उसको 'भगवान् कैसे हैं, कैसे नहीं हैं'—इन बातोंमें नहीं पड़ना चाहिये। कल्याण करनेवाली बात यह है कि 'भगवान् हैं और वे जैसे भी हैं, हमारे हैं'। खास बात यह है कि 'हम सनाथ हैं, अनाथ नहीं हैं'—इस बातको पकड़ लेना चाहिये।

सच्ची बातको स्वीकार कर लेनेमात्रसे कल्याण हो जाता है। सच्ची बात है—संसार अपना नहीं है, परमात्मा अपने हैं। संसार हमारा नहीं है, हम संसारके नहीं हैं—यह सच्ची बात है। हम भगवान्के हैं, भगवान् हमारे हैं—यह सच्ची बात है। संसारकी ताकत नहीं कि हमारे साथ रह सके और हमारी ताकत नहीं कि संसारके साथ रह सके। भगवान्की ताकत नहीं कि हमें छोड़ सकें और हमारी ताकत नहीं कि भगवान्को छोड़ सकें।

**संसारको अपना मानोगे तो रोना छूटेगा नहीं और अपना नहीं मानोगे तो रोना पड़ेगा नहीं।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

हमारेमें जो अच्छे गुण, अच्छे भाव आदि आते हैं, वे भगवान्की कृपासे ही आते हैं। जो कुछ भी अच्छा होता है, वह भगवान्की कृपासे होता है। उसको अपना मान लेना गलती है। भगवान्के भक्त गुणोंको भगवान्का और दोषोंको अपना मानते हैं—'गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा' (मानस, अयोध्या. १३१/२)। यह सच्ची बात है। पर सच्ची बात तब समझमें आती है, जब अन्तःकरण सरल, सीधा, नम्र होता है।

सत्संग, सद्बुद्धि, सद्भाव आदि सब भगवान्की कृपासे मिलते हैं। कृपासे ही भगवान्की तरफ चलना होता है, भगवान्का भजन होता है। सच्चे हृदयसे भगवान्को पुकारो तो भगवान्की कृपासे अवगुण दूर हो जायँगे, सद्गुण आ जायँगे। केवल भगवान्की कृपा माननेसे अपनेमें बहुत जल्दी विलक्षणता आ जाती है। इसलिये सदा कृपापर दृष्टि रखो—'तत्तेनुकम्पां सुसमीक्षमाणः' (श्रीमद्भागवत १०/१४/८)। आप सबको यह मान लेना चाहिये कि जो कुछ अच्छा हुआ है, भगवान्की कृपासे हुआ है; जो कुछ अच्छा हो रहा है, भगवान्की कृपासे हो रहा है; और जो कुछ अच्छा होगा, भगवान्की कृपासे होगा। कृपा माननेसे आश्चर्य होता है कि मेरे द्वारा ऐसी-ऐसी बात कैसे हो गयी! हरदम भगवान्की कृपाको मानते रहनेसे अपना जीवन महान् सफल हो जायगा, महान्

पवित्र हो जायगा। बीचमें जो अभिमान आ जाता है, उससे सावधान रहो और हर समय 'हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो!!' पुकारते रहो। चलते-फिरते कहते रहो कि 'हे नाथ, मैं आपको भूलूँ नहीं'!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जबतक भगवत्प्राप्ति नहीं होती, तत्त्वज्ञान नहीं होता, तबतक सब मनुष्य बालक ही हैं—'साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः' (गीता ५/४)।

आज विद्यार्थी पढ़ाई क्यों करते हैं? पढ़ाईका उद्देश्य क्या है?—इसका बढ़िया उत्तर मुझे अभीतक मिला नहीं है। मनुष्यके पास तीन शक्तियाँ हैं—करनेकी शक्ति, जाननेकी शक्ति और माननेकी शक्ति। करनेकी शक्तिका पूरा उपयोग होनेपर मनुष्य 'कृतकृत्य' हो जाता है अर्थात् उसके लिये कुछ करना बाकी नहीं रहता। जाननेकी शक्तिका पूरा उपयोग होनेपर मनुष्य 'ज्ञातज्ञातव्य' हो जाता है अर्थात् उसके लिये कुछ जानना बाकी नहीं रहता। माननेकी शक्तिका पूरा उपयोग होनेपर मनुष्य 'प्राप्तप्राप्तव्य' हो जाता है अर्थात् उसके लिये कुछ पाना बाकी नहीं रहता। करनेकी शक्तिका उपयोग है—सेवा करना। जाननेकी शक्तिका उपयोग है—स्वरूपको जानना। माननेकी शक्तिका उपयोग है—भगवान्को प्राप्त करना। इन तीनोंसे मनुष्यजीवन सफल हो जाता है।

आजकल विद्यार्थीमें उद्वण्डता, उच्छ्रंखलता देखनेमें आती है। यह विद्यार्थीका लक्षण नहीं है। विद्यार्थीमें नम्रता, सरलता होनी चाहिये। विद्या वहाँ आती है और सफल होती है, जहाँ नम्रता, सरलता होती है। **बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञाका पालन करनेसे, उनकी सेवा करनेसे विद्या आती है।**

विद्यार्थीको विद्याके लिये परीक्षा देनी चाहिये, परीक्षाके लिये नहीं पढ़ना चाहिये। विद्यार्थीमें विद्याध्ययनकी मुख्यता होनी चाहिये, खेल-कूदकी मुख्यता नहीं। **विद्यार्थीके जीवनमें जितना आराम कम होता है, उतना ही वह अच्छा विद्वान् बनता है।** आजकल विद्यालयोंमें आराम तो ज्यादा हो गया है, पर विद्या खोखली हो गयी है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मैं अपनी तरफसे अच्छी बात कहनेका उद्योग करता हूँ, पर अच्छी बात कह दूँ—यह मेरे हाथकी बात नहीं है। वास्तवमें अच्छी बातें भगवान्की कृपासे आती हैं। यह मनुष्यका बल, योग्यता, अधिकार नहीं है; और अच्छी बात कहनेकी स्वतन्त्रता भी नहीं है। यह मेरी देखी हुई बात है। मैंने अच्छे महात्माओंसे भी यह बात सुनी है कि मैं गहरी बात नहीं कहना चाहता, पर सुननेवालेका भाव होनेसे वह मेरेसे जबर्दस्ती वह बात कहला लेता है, और मेरेको कहनी पड़ती है। सुननेवालेका भाव होनेसे कहनेवालेके भीतर अच्छी बातें पैदा हो जाती हैं। वह अच्छी बातें जानता है या नहीं जानता, यह कायदा नहीं है। इसलिये सुननेवालेकी अपेक्षा कहनेवालेको लाभ ज्यादा होता है।

अच्छे महात्माओंके संगसे आदमीका कल्याण सुगमतासे होता है। परन्तु महात्माका संग मिलना दुर्लभ है। परमात्मा सुलभ हैं—'तस्याहं सुलभः पार्थ' (गीता ८/१४); परन्तु परमात्मतत्त्वको जाननेवाला महात्मा दुर्लभ है—'स महात्मा सुदुर्लभः' (गीता ७/१९)। महात्माओंके हृदयमें बिना कारण दया होती है। सबका कल्याण कैसे हो—ऐसी लगनवाले महात्मा बहुत कम होते हैं। उनकी बातोंकी तरफ ध्यान देनेवाले, उसके अनुसार चलनेवाले भी बहुत कम होते हैं। **उन महात्माओंकी बातोंका असर सब जीवोंपर पड़ता है, पर उसमें फर्क रहता है।** रेत, जमीन, दीवार, खम्भे, तम्बू आदि जड़ चीजोंपर भी उनका असर पड़ता है, पर जो दुष्ट हृदय होते हैं, उनपर असर नहीं पड़ता; क्योंकि वे आड़ लगा देते हैं।

चन्दनके संगसे दूसरी लकड़ी भी चन्दन बन जाती है, पर बाँस चन्दन नहीं बनता; क्योंकि उसमें चार विकार होते हैं—अति ऊँचापन, भीतरमें अग्नि, भीतरसे पोला और गाँठ। इसी तरह अपनेमें वर्ण-आश्रम, विद्या, बुद्धि

आदिका अभिमान होना, भीतरमें काम-क्रोधादिका होना, भीतरमें पोल (समझकी कमी) और छल-कपट—ये चार बातें होनेपर सत्संगका असर कम होता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

एक मार्मिक बात है कि सभी सद्गुण-सदाचार स्वाभाविक हैं। हम समझते हैं कि अवगुणोंको मिटाना और गुणोंको लाना—ये दो काम हमें करने हैं, पर वास्तवमें काम एक ही है, और वह है—अवगुणोंको मिटाना। अवगुण मिटनेपर अच्छे गुण (दैवी सम्पत्ति) अपने-आप आ जायेंगे; क्योंकि जीव परमात्माका अंश है। जैसे बीमारी छूटनेसे नीरोगता स्वतः आती है, ऐसे ही अवगुण छूटनेसे गुण स्वतः आते हैं। गुणोंको लानेसे उनका अभिमान आयेगा, पर अवगुणोंको छोड़नेसे सद्गुण स्वाभाविक आयेंगे, पर उनका अभिमान नहीं आयेगा। अभिमानकी छायामें सभी अवगुण रहते हैं। दैवी सम्पत्तिके अभिमानसे आसुरी सम्पत्ति पैदा होती है और आसुरी सम्पत्तिके त्यागसे दैवी सम्पत्ति पुष्ट होती है।

जबतक दूसरोंकी अपेक्षा अपनेमें विशेषता दीखती है, तबतक समझना चाहिये कि अपनेमें गुणोंका अभिमान है।

भगवान्को याद करनेसे अन्तःकरण स्वाभाविक निर्मल होता है और अच्छी बातें पैदा होती हैं। थोड़ी-थोड़ी देरमें कहते रहो कि 'हे नाथ, मैं आपको भूलूँ नहीं! 'हे मेरे प्रभो, मैं आपको भूलूँ नहीं'!! फिर अपने-आप सद्गुण आयेंगे। भगवान्को याद करनेसे, उनकी चर्चा करनेसे सद्गुण-सदाचार स्वाभाविक आते हैं।

सन्त-महात्माओंके संगसे स्वाभाविक सद्गुण-सदाचार आते हैं, भगवान्को पानेकी भूख लगती है, भगवान् प्यारे लगते हैं, भगवान्की लीला अच्छी लगती है, गंगाजल अच्छा लगता है, भगवान्से सम्बन्ध रखनेवाली सब चीजें अच्छी लगती हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान्की कृपासे जो बात समझमें आती है, वैसी बात साधनोंसे समझमें नहीं आती। मूल्य देकर जो चीज मिलती है, वह मूल्यसे कमजोर होती है। परन्तु कृपासे जो चीज मिलती है, वह अमूल्य होती है। भगवान् अपने द्वारा भी कृपा करते हैं, और सन्त, गुरु, माता-पिता आदिके द्वारा भी कृपा करते हैं। परन्तु वह कृपा लोगोंको दीखती नहीं। जो धर्मका पालन करते हैं, माता-पिता, गुरु आदिकी आज्ञाका पालन करते हैं, ऋषि-मुनियोंकी वाणीके अनुसार अपना जीवन पवित्र बनाते हैं, उनमें जो योग्यता आती है, वह योग्यता सकामभावसे किये हुए व्रत, तप, दान आदिसे नहीं आती। वह योग्यता कृपासे आती है। कृपासे अलौकिक, विलक्षण चीज मिलती है।

पतिव्रता स्त्रीपर पतिकी कृपा होती है, भले ही पतिको इसका पता न हो; क्योंकि वह कृपा भगवान्की तरफसे होती है। इसलिये पतिव्रतामें वह शक्ति आ जाती है, जो पतिमें भी नहीं होती। जैसे मन्दोदरी अपने पातिव्रत-धर्मके प्रभावसे भगवान्के स्वरूपको जैसा जानती है, वैसा रावण भी नहीं जानता। ऐसे ही जो सन्त-महात्मा, माता-पिता, गुरु आदिकी आज्ञाका पालन करते हैं, उनमें विलक्षण योग्यता, शक्ति आ जाती है। वह योग्यता भगवान्की तरफसे आती है, व्यक्तियोंकी तरफसे नहीं।

भक्तिसे जो विलक्षण चीज मिलती है, वह शक्तिसे नहीं मिलती। रावणमें वह शक्ति नहीं है, जो मन्दोदरीमें आ गयी। बालिमें वह शक्ति नहीं है, जो तारामें आ गयी। द्रोणाचार्यमें वह शक्ति नहीं है, जो एकलव्यमें आ गयी। कारण कि उन्होंने अपने धर्म, कर्तव्यका पालन किया था। इसलिये आप सबसे प्रार्थना है कि अपने कर्तव्य, धर्मका ठीक तरहसे पालन करें तो जिनकी आप आज्ञा मानेंगे, उन (माता-पिता, गुरु आदि)-से भी विलक्षण शक्ति आपमें आ जायगी। जो धर्मका नाश करता है, धर्म उसका नाश करता है। और जो धर्मका रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है—'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः' (मनुस्मृति ८/१५; महाभारत, वन.

३१३/१२८।

अन्य युगोंकी अपेक्षा आज कलियुगमें धर्मका पालन करनेसे, भगवान्का भजन करनेसे जल्दी उन्नति होती है, जल्दी विलक्षणता आती है। जैसे, जिस विद्यालयमें विद्यार्थी ज्यादा बैठते हैं, वहाँ एक नम्बर पाना कठिन होता है; परन्तु जहाँ विद्यार्थी कम बैठते हैं, वहाँ एक नम्बर पाना सुगम होता है। इसलिये कलियुगमें थोड़ी भक्ति भी बहुत विशेष होती है।

अपनी योग्यतासे, शक्तिसे परमात्माको प्राप्त नहीं कर सकते। जैसे, बच्चेको माँकी गोद किसी ताकतसे नहीं मिलती, प्रत्युत रोनेसे मिलती है। रोनेमें बहुत विलक्षण शक्ति है। रोनेमें शक्ति कारण नहीं है। रोना तब आता है, जब अपनेमें शक्तिहीनताका अनुभव होता है। शक्तिसे जो चीज प्राप्त नहीं होती, वह चीज रोनेसे प्राप्त हो जाती है। सर्वथा सामर्थ्यरहित हो जाय तो भगवान् प्रकट हो जाते हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आप स्वयं परमात्माके अंश हैं—इस बातको आप सुनो, समझो और स्वीकार कर लो। आपका सम्बन्ध परमात्माके साथ है, शरीरके साथ नहीं। शरीर संसारकी कन्या है। जैसे एक कन्याके साथ सम्बन्ध (विवाह) होनेसे उसके पूरे कुटुम्ब (ससुराल) के साथ सम्बन्ध हो जाता है, ऐसे ही एक शरीरके साथ सम्बन्ध होनेसे संसारमात्रके साथ सम्बन्ध हो जाता है। शरीरसे सम्बन्ध छूटते ही संसारमात्रसे सम्बन्ध छूट जाता है।

शरीरमें स्थिति मानते हुए भी वास्तवमें आप शरीरसे लिप्त नहीं होते—‘शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते’ (गीता ३/३१)। कारण कि आप एक शरीरमें स्थित नहीं हैं, प्रत्युत आकाशकी तरह सब जगह स्थित हैं—‘सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते’ (गीता १३/३२), ‘नित्यः सर्वगतः’ (गीता २/२४)। शरीरमें जो मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, प्राण आदि हैं, और इनके सिवाय जो तरह-तरहकी योग्यता, विद्या आदि है, वह सब आपमें नहीं है। आप केवल ‘है’-रूप अर्थात् सत्तामात्र हैं। यह जान लें तो आपमें चिन्ता, शोक, दुःख, विकार आदि हो ही नहीं सकते।

जैसे आपका हाथ कट जाय तो उस कटे हुए हाथमें आप नहीं हैं, ऐसे ही इस पूरे शरीरमें भी आप नहीं हैं। हाथ आपके शरीरसे लगा था, तब भी आपका था और कटकर अलग हो गया, तब भी आपका है, पर अब आप उसको अपना नहीं मानते। अब उसको जलाओ, चाहे कुछ भी करो। अपना माननेसे ही दुःख होता है। अपना न मानें तो दुःख होता ही नहीं। जैसे वह हाथ आपका नहीं है, ऐसे ही यह पूरा शरीर भी आपका नहीं है। दोनों एक ही धातुसे बने हुए हैं।

ऋषिकेशके पास जंगलमें एक सन्त रहते थे—मथुरादासजी अवधूत। वे निर्वस्त्र रहते थे, पर जब भिक्षाके लिये जाते, तब चिथड़ेकी लँगोटी बनाकर पहन लेते थे। एक दिन जंगलमें एक अँग्रेज आया और उसने एक सिंहको मार दिया। सिंहके मरनेसे सिंहनी जोर-जोरसे दहाड़ती हुई बाबाजीकी तरफ आयी। वे उस समय लेटे हुए थे। सिंहनीको आते हुए देखकर वे ज्यों-के-त्यों लेटे रहे कि सिंहनी आकर खा जायगी तो उसका भोजन हो जायगा, हमें क्या हर्ज है! सिंहनी पासमें आ गयी और उसने बाबाजीके शरीरको सूँघा और फिर चुपचाप उनके सामने बैठ गयी। फिर थोड़ी देरमें उठकर चली गयी। उसका दहाड़ना बन्द हो गया, शोक मिट गया, दुःख मिट गया। कारण यह था कि बाबाजी शरीरमें स्थित नहीं थे।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

एक जड़ है और एक चेतन है। परमात्मा और उसका अंश जीवात्मा ‘चेतन’ है और उसके सिवाय जो कुछ (प्रकृति और उसका कार्य) है, वह सब ‘जड़’ है। आपके पास जो विद्या, बल, बुद्धि, योग्यता आदि है, वह भी जड़ है। तात्पर्य है कि शरीर और शरीरी (शरीरवाला अर्थात् जीवात्मा)—दोनों अलग-अलग हैं।



संसारमें जैसे धन और धनी (धनवाला) दोनों एक जातिके होते हैं, ऐसे शरीर और शरीरी एक जातिके नहीं हैं—यह समझनेकी बात है। गीतामें जीवात्माके लिये ‘शरीरी’ शब्द केवल समझानेकी दृष्टिसे कहा गया है। शरीर जड़ तथा नाशवान् है और शरीरी चेतन तथा अविनाशी है। धन नहीं रहनेपर धनीकी सत्ता नहीं रहती, पर शरीर न रहनेपर भी शरीरीकी सत्ता रहती है। धनीकी धनके साथ लिप्तता होती है, पर शरीरीकी शरीरके साथ लिप्तता नहीं होती—‘शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते’ (गीता ३/३१)। धनका विकार धनीमें आता है, पर शरीरका विकार शरीरीमें नहीं आता। धनसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर धनी मुक्त नहीं होता, पर शरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर शरीरी मुक्त हो जाता है। धनीमें विवेक नहीं होता, पर शरीरीमें विवेक होता है। धन और धनीके विवेकसे मुक्ति नहीं होती, पर शरीर और शरीरीके विवेकसे मुक्ति हो जाती है। धनसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर धनी रोयेगा, पर शरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर मौज हो जायगी!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

हम जो भी कार्य करते हैं, स्वार्थको लेकर करते हैं—यही खास बन्धन है। जितना अपना स्वार्थ चाहते हैं, उतना ही हमारा पतन होता है। आप रुपयोंके लिये काम करते हैं तो आपकी इज्जत रुपयोंसे कम होती है। जिसकी आप इच्छा करते हैं, वह वस्तु बड़ी हो जाती है और आप छोटे हो जाते हैं। परमात्माके अंश होनेसे आप संसारमात्रसे बड़े हैं। यदि आप स्वार्थभाव छोड़ दें तो रत्तीभर भी स्वार्थमें कमी नहीं आयेगी। जितना रुपया आना है, जरूर आयेगा।

आपकी इज्जत धनसे ज्यादा है। धनको आप कमाते हो, धन आपको नहीं कमाता है। आप धनको खर्च करते हो, धन आपको खर्च नहीं कर सकता। आप धनका उपयोग करते हो, धन आपका उपयोग नहीं कर सकता। आप धनके मालिक (धनी) कहलाते हो, धन आपका मालिक नहीं कहलाता। आपके काम वस्तु आती है, रुपया नहीं। रुपयोंसे अभिमान बढ़ता है। आप सर्वोपरि परमात्माके अंश हो। संसारमात्रसे आपका मूल्य ज्यादा है। रुपयोंसे अपनी इज्जत मानना बुद्धि भ्रष्ट होनेका लक्षण है। आप खुद अपनी इज्जत खो रहे हो।

देखनेमें विरक्त और दरिद्र—दोनोंकी एक दशा है, दोनोंके पास रुपये नहीं हैं; परन्तु दरिद्र रोता है और विरक्त आनन्दमें रहता है। वैराग्यमें जो आनन्द है, मस्ती है, वह रुपयोंमें नहीं है। रुपयोंवालेमें ऐसी मस्ती कभी आ नहीं सकती।

ज्यों-ज्यों रुपयोंका महत्त्व बढ़ेगा, त्यों-त्यों आपकी दरिद्रता बढ़ेगी। ज्यों-ज्यों रुपये बढ़ेंगे, त्यों-त्यों घाटा बढ़ेगा और भगवान्‌के भजनमें लग जाओ तो घाटा दूर हो जायगा; आपका ही नहीं, आपके दर्शन करनेवालेका घाटा दूर हो जायगा!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अन्न और जलके बिना प्राण नहीं रहते, पर क्या नशा किये बिना प्राण नहीं रहते? अन्न और जल लिये बिना तो आप मर जाओगे, पर क्या चाय, बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि पिये बिना भी आप मर जाओगे? क्या मांस, अण्डा, मछली आदि खाये बिना आप मर जाओगे? अन्न-जल तो आवश्यक हैं, पर बीड़ी-सिगरेट, मांस-मदिरा आदि बिलकुल निरर्थक हैं। इसलिये आप शुद्ध अन्न और जलके सिवाय कोई चीज सेवन मत करो। व्यसन करनेसे आप पराधीन हो जाओगे—‘पराधीन सपनेहुँ सुखु नाही’ (मानस, बाल. १०२/३)। पहले पेप्सी, कोकाकोला आदि पीये बिना भी लोग जीते थे, पर अब इनका सेवन करके कितना समय नष्ट करते हो, पैसा बरबाद करते हो, अपने शरीरका नुकसान करते हो, देशका नुकसान करते हो! इसका आपको बड़ा भारी पाप लगेगा। सौंफ-सुपारी निषिद्ध वस्तु नहीं हैं, पर उनका व्यसन भी नहीं होना चाहिये। व्यसनोंसे लाभ कुछ नहीं होता, पर नुकसान जरूर होता है। व्यसन करोगे तो तरह-तरहकी बीमारियाँ होंगी और आपकी उम्र भी घटेगी। पैसे खर्च करके नरकमें



जाना क्या बुद्धिमानी है!

मदिरापानको शास्त्रोंमें महापाप बताया गया है। एक सन्तने कहा था कि अगर एक तरफ अपने-आप मरी हुई गायका मांस हो और एक तरफ मदिरा हो तो मांस खा लो, पर मदिरा मत पियो। मदिरापानसे अन्तःकरणमें स्थित धर्मके अंकुर, संस्कार नष्ट हो जाते हैं। जिस पात्रमें मदिरा रखी जाती है, वह पात्र भी इतना अशुद्ध हो जाता है कि गंगाजीमें डालनेपर भी शुद्ध नहीं होता।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**कल्याण करना आपके हककी, अधिकारकी चीज है। इसपर आपका पूरा हक लगता है। आप तो बिना हककी (दूसरोंके हककी) चीज भी ले लेते हो, फिर अपने हककी चीज लेनेमें क्या बाधा है?** इस जन्ममें परमात्माकी प्राप्ति नहीं करोगे तो किस जन्ममें करोगे? परमात्माकी प्राप्ति सबको हो सकती है। हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, यहूदी हो, पारसी हो, कोई क्यों न हो, सबके लिये परमात्मा हरदम तैयार हैं। ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो शूद्र हो, अन्त्यज हो, सबको परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। आप किसी वर्णके हों, किसी आश्रमके हों, किसी देशके हों, किसी वेशमें हों, परमात्मा सबके लिये तैयार हैं। परमात्मापर सब मनुष्योंका पूरा हक लगता है। किसीके लिये ऐसा नहीं है कि इसको भगवान् नहीं मिलेंगे। गुरु बनानेकी बिलकुल जरूरत नहीं है। केवल आपकी लगन चाहिये। केवल लगन, चाहनासे संसार नहीं मिलता, पर भगवान् मिलते हैं।

गुरु बनाओगे तो बड़ी भारी आफत होगी; ठीक ठिकानेपर आप पहुँच सकोगे नहीं। इस विषयमें एक पुस्तक लिखवायी है—‘**क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?**’। उसको पढ़ो, आपका वहम मिट जायगा। आजकल बड़ी ठगाई हो रही है। आप कैसे ही हों, किसी जाति, वर्ण आदिके हों, कितने ही पापी-तापी हों, हृदयसे कहते रहो ‘हे नाथ! हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो!’ **कोई गुरुकी जरूरत नहीं, कोई शास्त्रकी जरूरत नहीं, कहीं जानेकी जरूरत नहीं, केवल ‘हे नाथ! हे नाथ!!’ पुकारो।** गुरुकी जरूरत नहीं है, केवल लगनकी जरूरत है। आप सच्चे हृदयसे ‘हे नाथ! हे नाथ! पुकारो तो आपकी योग्यताके अनुसार आपको गुरु मिल जायगा, सन्त-महात्मा मिल जायँगे, उपदेश मिल जायगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—आप कहते हैं कि गुरुके बिना भी जीवका कल्याण हो सकता है, पर स्वयं भगवान् राम और कृष्णने भी तो गुरु बनाया है?

**स्वामीजी**—आप विचार करें कि भगवान् राम और कृष्णने क्या मुक्ति, कल्याणके लिये गुरु बनाया है? हमारा कल्याण हमारी इच्छासे होगा, नहीं तो हजारों-लाखों गुरु हो गये, पर अभीतक हमारी मुक्ति क्यों नहीं हुई? आपको आज चेले बने हुए सैकड़ों आदमी मिल जायँगे, पर एक भी आदमी बताओ, जिसकी गुरु बनानेसे मुक्ति हो गयी हो। **जो गुरु मुक्ति कर दे, उसका चेला बननेके लिये हम भी तैयार हैं!** मेरा गुरु बनाने या नहीं बनानेका कोई आग्रह नहीं है। मेरा खास कहना यह है कि आप पाखण्डियोंसे बचो, नहीं तो बड़ी दुर्दशा होगी। आपको वहम हो जायगा कि गुरु बना लिया और निश्चिन्त हो जाओगे, पर नरकोंमें जाओगे। आजकल सब चीजें नकली मिल रही हैं तो गुरु असली कैसे मिल जायगा?

मुक्तिके लिये लोग तरसते हैं, पर मुक्तिका रास्ता बतानेवाला मिलना मुश्किल है और मुक्तिकी असली चाहना करनेवाला मिलना भी मुश्किल है। आजकल अपने कल्याणकी सच्ची इच्छावाला व्यक्ति नहीं मिलता। जो गुरु कल्याण कर सकता है, वह कभी नहीं कहेगा कि पहले गुरु बनाओ, फिर बताऊँगा। जो ऐसा कहेगा, वह कल्याण नहीं कर सकेगा। **सच्चा गुरु चेला बनाये बिना भी कल्याण कर देगा, ऐसी मेरी धारणा है।** गुरुकी बातसे,

उसके ज्ञानसे कल्याण होता है, उसके शरीरसे नहीं। गुरुमें शरीरबुद्धि और शरीरमें गुरुबुद्धि करना पाप बताया गया है।

आपको गुरु बनानेकी जरूरत नहीं। जो कहते हैं कि गुरु बनाओ तब बतायेंगे, वे ठगाई करते हैं। गुरु आपको जो बातें बतायेगा, उससे मैं कम नहीं बताऊँगा। मैं अभिमान नहीं करता हूँ। आपको किसी भी विषयकी बात गुरुसे पूछनी हो, वह मेरेसे पूछो। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, लययोग, हठयोग, राजयोग, मन्त्रयोग, तन्त्रयोग आदिकी जो बात पूछनी हो, पूछो। मैं बिना गुरु बने पूरी बात बताता हूँ, एक कौड़ी भी आपसे लेता नहीं; आपको मुफ्तमें बात मिले तो क्या हर्ज है? आपको कल्याण करना है कि गुरु करना है? कल्याण करना है तो आ जाओ, गुरु करना है तो चले जाओ!!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—नामजप करते समय मन संसारमें चला जाता है, एकाग्र नहीं होता, उसके लिये क्या करें?

**स्वामीजी**—आप मनसे नामजप करो और मनसे ही उसकी गिनती करो। माला, अँगुली आदिसे गिनती मत करो। इस प्रकार कम-से-कम एक माला रोजाना फेर लिया करो। बीचमें भूल हो जाय तो पुनः एकसे शुरू करो। यह मन लगानेका बहुत बढ़िया उपाय है।

**श्रोता**—हमें तत्त्वज्ञान हो गया, इस बातकी क्या पहचान है?

**स्वामीजी**—हमने भोजन कर लिया, भूख मिट गयी, इसकी क्या पहचान है? बताओ। एक भोली-भाली स्त्री गर्भवती हुई तो उसने माँसे कहा कि 'माँ, मेरा बच्चा हो तो मेरेको जगा देना'। माँने कहा कि 'मैं तेरेको क्या जगाऊँगी, तू दुनियाको जगा देगी'! हमें तत्त्वज्ञान हो जायगा तो बिना कहे, अपने-आप दूसरोंको पता लग जायगा।

**श्रोता**—आप कहते हैं कि दूसरोंको सुख दो, तो जो सुखी है, उसको क्या सुख देंगे?

**स्वामीजी**—ऐसा एक भी आदमी बताओ, जो सुखी हो। ऐसा कोई आदमी बताओ, जिसको भूख नहीं लगती, प्यास नहीं लगती, सरदी नहीं लगती, भय नहीं लगता। जिस विषयमें वह दुःखी हो, उस विषयमें उसको सुख पहुँचाओ। सब दुःखी-ही-दुःखी मिलते हैं। मेरेको तो अभीतक एक भी सुखी मिला नहीं, जो कहे कि मैं सब तरहसे सुखी हूँ।

आपको जो दुःखी, अभावग्रस्त मिले, उसकी सेवा करो। कोई दुःखी न मिले तो एकान्तमें बैठकर आठों पहर कहते रहो कि 'हे नाथ! सब सुखी हो जायँ, सब नीरोग हो जायँ, सबका मंगल-ही-मंगल हो, किसीको किंचिन्मात्र भी दुःख न हो'—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभागभवेत्॥

फिर देखो कि आपको लाभ होता है कि नहीं! जरूर लाभ होगा।

**श्रोता**—ऐसा आया है कि 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' (बुरेके साथ बुरा व्यवहार करे)?

**स्वामीजी**—यह नीतिकी बात है, कल्याणकी बात नहीं है, नहीं है, नहीं है। नीतिसे धर्म ऊँचा है और धर्मसे कल्याण ऊँचा है। यह धर्मकी बात भी नहीं है, कल्याण होना तो दूर रहा !

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—पहले हमने आपकी बातें सुनी नहीं थीं, हमसे कुछ गलतियाँ हो गयीं। अब हमें क्या करना चाहिये, जिससे उन गलतियोंका प्रायश्चित्त हो जाय?

**स्वामीजी**—सच्चे हृदयसे उग्रभर परमात्मा में लग जाय तो दूसरे प्रायश्चित्तकी जरूरत ही नहीं है। भगवान्‌के भजनमें लग जाओ तो सब काम ठीक हो जायगा। दूसरी बात, जो गलती पहले हो गयी, उसको दुहराओ मत तो प्रायश्चित्त हो गया। बुराईको दुहराओ मत तो आप भले हो ही जाओगे, इसमें सन्देह नहीं।

**श्रोता**—आपकी बात सुनते हैं तो ऐसा लगता है कि अब हमारा मन निर्विकार हो गया, लेकिन वापिस संसारमें जाते हैं तो वापिस मनमें विकार आ जाता है, क्या करें?

**स्वामीजी**—मन वापिस खराब हो गया—ऐसा न मानकर यह मानो कि हमारा मन तो ठीक है, पर कुसंगके कारण मन खराब हो गया। एक बहुत मार्मिक बात है कि **वास्तवमें मन खराब नहीं होता, आप स्वयं खराब होते हो**। मन तो एक करण है। खराबी कर्तामें होती है, करणमें नहीं। अतः खराबी स्वयंमें आती है, पर मनमें दीखती है। आप अपनेको मानते हैं कि ‘मैं हूँ’, उस आपमें खराबी आती है। ‘मैं हूँ’ ही कर्ता है। मैं किसीको बुरा समझूँगा नहीं, किसका बुरा चाहूँगा नहीं और किसीका बुरा करूँगा नहीं—ये तीन बातें आप मान लो तो आप बहुत जल्दी शुद्ध हो जाओगे।

परमात्माके अंश होनेसे आप स्वतः शुद्ध हैं—**‘ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी’** (मानस, उत्तर.११७/१)। बुराई आगन्तुक है। कोई खराबी दीखे तो ‘हे नाथ! हे मेरे नाथ!!’ पुकारो, आप शुद्ध हो जाओगे।

● **क्षमा माँगना और क्षमा कर देना**—ये दो मामूली बात नहीं हैं, बहुत ऊँचे दर्जेकी बात है। ‘क्षमा माँगना’ असली तब होता है, जब जिस कसूरके लिये क्षमा माँगी है, वह कसूर फिर उग्रभर कभी किसीके प्रति न करे। ऐसे ही ‘क्षमा करना’ असली तब होता है, जब सदाके लिये ही क्षमा कर दे। क्षमा माँगना और क्षमा करना बड़े शूरीरका काम है, मामूली आदमीका काम नहीं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान्‌की बात सर्वोपरि है; परन्तु भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंकी बात उससे भी श्रेष्ठ है। भगवान्‌ प्रेमी भक्तोंके वशमें हो जाते हैं। यद्यपि भगवान्‌ सर्वथा स्वतन्त्र हैं, तथापि उनको भक्तोंके वशमें होनेमें आनन्द आता है। जो छोटे होते हैं, उनको बड़ा बननेमें आनन्द आता है; परन्तु जो वास्तवमें बड़े होते हैं, उनको छोटा बननेमें आनन्द आता है; क्योंकि उनमें अभिमान नहीं होता। **बड़प्पनका अभिमान उनमें होता है, जो छोटे होते हैं। जो वास्तवमें बड़े होते हैं, उनमें बड़प्पनका अभिमान नहीं होता।** भर्तृहरिने कहा है—

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं-

तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिसं मम मनः।

यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं-

तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥

(भर्तृहरिनीतिशतक)

‘जब मैं थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्त करके हाथीके समान नशेमें चूर हो रहा था, उस समय ‘मैं ही सब कुछ जाननेवाला हूँ’ ऐसा सोचकर मेरा मन घमण्डसे भर गया था। परन्तु जब विद्वानोंके संगसे कुछ-कुछ ज्ञान होने लगा, तब ‘मैं तो मूर्ख हूँ’ ऐसा पता लगनेपर मेरा वह सारा घमण्ड ज्वरकी तरह उतर गया।’

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

राधाजी भगवान्‌ श्रीकृष्णसे एक वर्ष पहले प्रकट हुई थी। अतः वे भगवान्‌से साढ़े ग्यारह महीने बड़ी थीं। भगवान्‌के प्रेमी भगवान्‌से बड़े होते हैं। भगवान्‌ राधाजीके वशमें हैं और राधाजी भगवान्‌के वशमें। राधाजीको देखकर भगवान्‌का प्रेम बढ़ता है और भगवान्‌को देखकर राधाजीका प्रेम बढ़ता है। **राधा-कृष्णको मनुष्योंकी तरह**

**स्त्री-पुरुष नहीं समझना चाहिये।** राधाजी प्रेमस्वरूपा हैं। इसलिये **जहाँ प्रेम होता है, वहाँ भगवान् स्वतः आते हैं, उनको आना पड़ता है।** जिनके हृदयमें राधाजीके प्रति पूज्यभाव है, प्रेमभाव है, वहाँ भगवान् अपने-आप आते हैं। भगवान् भक्तोंके वशमें हैं। भक्तोंके जो प्रेमी होते हैं, वे भगवान्के असली प्रेमी होते हैं। **भगवान्के प्रेमी भक्तोंसे आप प्रेम करो तो भगवान्में स्वाभाविक प्रेम होगा।**

भगवान् अपने भक्तोंसे ज्यादा राजी होते हैं। इसलिये भगवान् राधाजीसे बहुत प्रसन्न होते हैं, राधाजीका चिन्तन करते हैं, राधाजीका ध्यान करते हैं, बंसीमें भी राधा-राधा बोलते हैं। राधाजी भगवान्की भक्ति हैं, जिसके वशमें भगवान् हो जाते हैं। राधाजीका चिन्तन करनेसे भगवान् बड़े प्रसन्न होते हैं। इसलिये भक्तलोग राधे-राधे गाया करते हैं।

राधा और कृष्ण कहनेमें दो हैं, पर वास्तवमें दो नहीं हैं, एकस्वरूप हैं। राधाका स्वरूप कृष्ण है, कृष्णका स्वरूप राधा है। उनके प्रेमकी बात प्रेमी ही समझते हैं, दूसरे नहीं समझते। लोग उनमें स्त्री-पुरुषकी कल्पना करते हैं, पर स्त्री-पुरुषमें परस्पर मोह होता है, प्रेम नहीं। मोहमें स्त्री पुरुषसे और पुरुष स्त्रीसे सुख लेता है। परन्तु प्रेममें कृष्ण राधाजीको और राधाजी कृष्णको सुख देती हैं; उनमें अपने सुखकी चाह है ही नहीं—‘तत्सुखसुखित्वम्’ (नारदभक्तिसूत्र २४)।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

संसारमें सिवाय भगवान्के अपना कोई नहीं है। कुटुम्ब देखा जाय तो आप सब-के-सब भगवान्के बेटे हैं। आप सब भगवान्को प्यारे हैं—‘**सब मम प्रिय सब मम उपजाए**’ (मानस, उत्तर. ८६/२)। सन्तोंसे मिलीं **ये पाँच बातें आप याद कर लें—१. भगवान् अपने हैं। २. भगवान् अपनेमें हैं। ३. भगवान् अभी हैं। ४. भगवान् सर्वसमर्थ हैं और ५. भगवान् अद्वितीय हैं। ये पाँच बातें मान लें तो आपसे अपने-आप भजन होगा।**

यह शरीर भी अपना नहीं है। यह मिला है और छूट जायगा। परन्तु भगवान् छूटेंगे नहीं। आप नरकोंमें चले जाओ, स्वर्गमें चले जाओ, वैकुण्ठमें चले जाओ, जहाँ चले जाओ भगवान् आपके साथ रहेंगे। ऐसा सदा साथ रहनेवाला दूसरा कौन है? कोई है नहीं, हुआ नहीं, हो सकता नहीं। भगवान्को अपना मानो तो अपने हैं, अपना नहीं मानो तो अपने हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जैसे आदमी दूर विदेशमें चला जाता है, ऐसे आप खास भगवान्के बेटे होते हुए भी दूर चले गये हैं। इसलिये सभी भाई-बहनोंसे मेरी प्रार्थना है कि आप कृपा करके स्वीकार कर लें कि हम भगवान्के बेटा-बेटी हैं। हम कपूत-सपूत, अच्छे-मन्दे, भले-बुरे जैसे भी हैं, भगवान्के हैं। अब केवल भगवान्की तरफ चलना ही हमारा काम है। भगवत्प्राप्तिके समान दूसरा कोई काम है ही नहीं। इसलिये भगवान्के भजनमें लग जाओ। चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय भगवान्को याद रखो। भगवान्का होकर भगवान्के नामका जप करो।

**बिगरी जनम अनेक की, सुधरै अबहीं आजु।**

**होहि रामको नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाजु॥**

(दोहावली २२)

इसमें तीन बातें बतायी हैं—कुसंग छोड़ दो, भगवान्के हो जाओ, और भगवान्के नामका जप करो। जैसे सत्संगसे महान् लाभ होता है, ऐसे ही कुसंगसे महान् हानि होती है। **सांसारिक भोग और संग्रहको श्रेष्ठ माननेवाले और उनमें आसक्त पुरुषोंका संग कुसंग है।** भगवान्की चर्चा हो, भगवान्का चिन्तन हो, वह सत्संग है।

आजकल कुसंग बहुत मिलता है, उससे सावधान रहो, अपनेको बचाओ।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

दो बातें मैं कहा करता हूँ, एक भगवान्‌को याद रखना और दूसरी, दीन-दुःखियोंकी, बड़े-बूढ़ोंकी, रोगियोंकी, अपाहिजोंकी, अरक्षितोंकी, गायोंकी सेवा करना। इन दो बातोंके पालनमें ही मनुष्यता है। सेवाके लिये कहीं जानेकी, किसीको ढूँढ़नेकी जरूरत नहीं है। जो सामने आ जाय, उसकी यथाशक्ति सेवा कर दो।

आप भजनमें लग जाओ और भगवान्‌की कृपापर भरोसा रखो। उनकी कृपासे हमारा कल्याण होगा, हमारी करनीसे नहीं। हमें मनुष्यशरीर मिला है और सत्संग मिला है तो इसका अर्थ है कि हमारा कल्याण जरूर होगा। आप हृदयमें ऐसा भाव रखो कि भगवान्‌की कृपासे हमारा कल्याण होगा....होगा....होगा! हमें सत्संग मिल गया, यह भगवान्‌की कृपाकी पहचान है। अगर भगवान्‌की कृपा नहीं होती तो सत्संगका ऐसा मौका नहीं मिलता।

आप अर्जुनकी तरह निमित्तमात्र बन जाओ—‘निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्’ (गीता ११/३३)। अर्जुनने अपनी शक्तिसे युद्ध किया, पर विजय भगवान्‌की कृपासे हुई, अर्जुनके बलसे नहीं। अगर अर्जुनका बल होता तो वे कभी निर्बल नहीं होते—‘काबाँ लूटी गोपिका, वे अर्जुन वे बान’। भगवान्‌की कृपाके समान कोई कृपा नहीं है। इसलिये भगवान्‌के सिवाय अन्यकी कृपापर भरोसा मत रखो। अपनेपर भगवान्‌की कृपा मानकर आप हरदम प्रसन्न रहो। कभी चिन्ता, शोक, भय आ जाय तो ‘हे नाथ! हे मेरे नाथ!’ पुकारो। भगवान्‌को याद करनेमात्रसे सम्पूर्ण विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। जो सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाता है, उसके भीतर बिना पढ़े वेदों और शास्त्रोंका अर्थ, भाव आ जाता है।

● जो चीज रुपयोंसे मिलती है, वह रुपयोंसे रद्दी होती है। रुपयोंसे जो सत्संग मिलेगा, वह रुपयोंसे रद्दी होगा। रुपयोंसे जो सन्त मिलेगा, वह रुपयोंसे रद्दी होगा। सत्संग भले ही मत हो, पर सत्संगके लिये किसीसे रुपया मत माँगो, चन्दा मत माँगो। जो रुपयोंसे मिलता है, वह सत्संग नहीं होता।

● भगवान्‌का चित्र, उनका नाम पैरोंके नीचे नहीं आना चाहिये। अक्षर भी पैरोंके नीचे नहीं आने चाहिये। मैंने देखा है कि शौचालयकी सीटमें भी अक्षर लिखे हुए हैं, यह ठीक नहीं है। घरोंमें भगवान्‌के चित्रोंकी सजावट करो, भगवान्‌के नाम लिखो, जिससे भगवान्‌ याद आयें।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अपनेको जो भी चीज मिली है, वह अपने कामकी नहीं है—यह मार्मिक बात है। अपनेको जो शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि, पदार्थ, धन, जमीन, मकान, स्त्री-पुत्र, कुटुम्बी आदि मिले हुए हैं, वे सब बिछुड़नेवाले हैं। फिर मिले हुए व्यक्ति-वस्तुओंसे कितने दिन काम चलाओगे? जो मिलने-बिछुड़नेवाले हैं, उनकी सेवा कर दो। भरोसा उसपर करो, जो सदा साथ रहनेवाला हो। केवल भगवान्‌ ही ऐसे हैं, जो कभी बिछुड़ते नहीं, सदा साथ रहते हैं। नरकोंमें चले जाओ तो भी भगवान्‌ साथ रहते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि तुम्हारे भगवान्‌ नरकोंमें हैं, तो उनके बड़ेरे (बुजुर्ग) नरकोंमें गये हैं, इसलिये उनको वहाँका पता है। हमारे भगवान्‌ तो सब जगह रहते हैं। कोई जगह, कोई वस्तु ऐसी है ही नहीं, जिसमें परमात्मा न हों। तीखी सूईकी नोक जितनी जगह भी भगवान्‌से खाली नहीं है। सर्वसमर्थ परमात्मामें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि आपसे दूर हो जायँ। आप नहीं चाहो तो भी आपके साथ रहेंगे, चाहो तो भी साथ रहेंगे। आप चाहो तो निहाल हो जाओगे, नहीं चाहो तो भटकते रहोगे। परन्तु भगवान्‌ आपका पिण्ड छोड़ेंगे नहीं!

संसारको अपना मानना और भगवान्‌को अपना न मानना महान्‌ अनर्थ है, महान्‌ अनर्थ है,

**महान् अनर्थ है!!** मन मेरा है, बुद्धि मेरी है, शरीर मेरा है तो भगवान् कैसे मिलेंगे? आप भगवान्के बिना नहीं रह सके तो भगवान्की ताकत नहीं कि आपके बिना रह जायँ।

**श्रोता—**मोक्षप्राप्तिकी लगन कैसे हो?

**स्वामीजी—**मोक्षप्राप्तिकी लगन होगी संसारकी लगन छोड़नेसे।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

‘योग’ नाम समताका है। निष्काम कर्म करके समता रखना कर्मयोग है और जड़-चेतनके विभागको समझकर समता रखना ज्ञानयोग है। इन दोनोंसे ऊँचा भक्तियोग है। तीन ही चीजें हैं—जड़ (अपरा, क्षर), चेतन (परा, अक्षर) और परमात्मा। जड़को लेकर कर्मयोग, चेतनको लेकर ज्ञानयोग और परमात्माको लेकर भक्तियोग है। कर्मयोग तथा ज्ञानयोग साधन हैं और भक्तियोग साध्य है। भक्तियोगमें खास बात है—भगवान् हमारे हैं, हम भगवान्के हैं।

यह समझ लेना आवश्यक है कि जितना जड़-भाग (स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर) है, वह केवल सेवाके लिये है, अपने लिये नहीं। अपने लिये केवल परमात्मा हैं। **तेजीका वैराग्य न हो तो ज्ञानयोग कठिन है, पर भक्तियोग बहुत सुगम है।** एक ही बात है कि भगवन्नामका जप करो और प्रार्थना करो ‘हे नाथ, मैं आपको भूलूँ नहीं’। भगवान्की जितनी याद आयेगी, उतनी भक्ति होगी, भगवान्में प्रेम होगा। भगवान्को यादमात्र करनेसे कल्याण हो जायगा—‘**अच्युतः स्मृतिमात्रेण**’। भगवान्के साथ अपना सम्बन्ध मान लो। उनको अपनी माँ, बाप, बेटा, भाई, मित्र, गुरु, चेला आदि कुछ भी मान लो। सन्त प्रयागदासजी सीताजीको अपनी बहन मानते थे। वसिष्ठगोत्रीय उमापतिजी महाराज भगवान् रामको अपना चेला मानते थे। भगवान् चेला बनकर उनका काम करते थे। सम्बन्ध माननेसे भगवान् बहुत राजी होते हैं।

‘हम भगवान्के हैं, भगवान् हमारे हैं’—यह बात सभी भाई-बहनोंको मान लेनी चाहिये; क्योंकि मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-लता आदि जीवमात्र भगवान्का अंश है, भगवान्की सन्तान है। इसलिये भगवान्का बनाया हुआ अन्न सबकी भूख मिटाता है, भगवान्का बनाया हुआ जल सबकी प्यास मिटाता है, भगवान्की बनायी हुई पृथ्वी सबको स्थान देती है, भगवान्का बनाया हुआ आकाश सबको अवकाश देता है। ये चीजें सबको मुफ्तमें मिलती हैं, चाहे कोई भगवान्को माने या न माने। इतनेपर भी आप भगवान्को याद नहीं करते!

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जिसके हृदयमें परमात्मप्राप्तिकी लालसा है, उसको परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, चाहे वह किसी भी वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय, देश आदिका क्यों न हो। कोई ऊँचे-से-ऊँचा है, वेदों-शास्त्रोंका बड़ा ज्ञाता है, बड़ा विद्वान् है, पर उसमें भगवत्प्राप्तिकी लालसा नहीं है, तो उसको भगवान्की प्राप्ति नहीं होगी। परन्तु कोई नीचे-से-नीचा है, पढ़ा-लिखा नहीं है, पर उसमें भगवत्प्राप्तिकी लालसा है, तो उसको भगवान्की प्राप्ति हो जायगी। श्रीशंकराचार्यजी महाराजने कहा है—

**दुर्लभं**

**त्रयमेवैतद्देवानुग्रहेतुकम्।**

**मनुष्यत्वं**

**मुमुक्षुत्वं**

**महापुरुषसंश्रयम्॥**

(विवेकचूडामणि ३)

‘भगवत्कृपा ही जिनकी कृपाका कारण है, वे मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व (मुक्तिकी लालसा) और महापुरुषोंका संग—ये तीनों ही दुर्लभ हैं।’

मेरी समझसे शंकराचार्यजी महाराजके समय परमात्मप्राप्तिमें जितनी कठिनता थी, उतनी कठिनता आज नहीं है। केवल लालसा हो तो सुगमतासे परमात्मप्राप्ति हो सकती है। परमात्मप्राप्तिसे निराश कभी नहीं होना चाहिये।



मुझे दुःख होता है कि आप मनुष्य होते हुए भी दुःख पा रहे हैं। छू-मन्तर, सिद्धि तो मैं जानता नहीं, पर आपकी इच्छा हो तो उपाय बता सकता हूँ। अभी जो आपकी स्थिति है, इससे ऊँची स्थिति आपकी जरूर होगी, इसमें सन्देह नहीं है। दो बातें हैं—एक, ‘भगवान् हैं और मिलते हैं’ यह दृढ़ विश्वास हो और दूसरी, ‘भगवान् कैसे मिलें?’ यह लालसा हो। उपाय बहुत हैं, लेकिन आपकी लगन चाहिये। जितनी ज्यादा लगन होगी, उतना लाभ होगा।

आपने जोरसे भजन, जप, तप किया, परन्तु ‘भगवान् मिलते हैं कि नहीं मिलते’—यह सन्देह है तो भगवान् नहीं मिलेंगे। ‘मैं पापी हूँ, भगवान् नहीं मिलेंगे’ तो भगवान् नहीं मिलेंगे। ‘मैं अधिकारी नहीं हूँ’ तो भगवान् नहीं मिलेंगे। ‘मैं कैसा ही हूँ, पर भगवान् मिलने चाहिये’ तो भगवान् मिल जायेंगे। केवल अपनी चाहना बढ़ाओ।

कई ऐसा मानते हैं कि भगवत्प्राप्ति पुरुषको होती है, स्त्रीको नहीं होती। कई कहते हैं कि भगवत्प्राप्ति संन्यासीको होती है, गृहस्थको नहीं होती। कई कहते हैं कि इस समय भगवत्प्राप्ति नहीं होती, अभी आड़ लगी हुई है। कई कहते हैं कि भगवत्प्राप्ति त्यागी-वैरागीको ही होती है। ऐसी कई बातें मैंने सुनी हैं। परन्तु मेरा निश्चय यह है कि जो भगवत्प्राप्ति चाहता है, उसको जरूर भगवत्प्राप्ति होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

● गायोंके दर्शनका, उनकी रक्षाका, उनको घरमें रखनेका बड़ा माहात्म्य है। गायोंको सहलानेसे, हाथ फेरनेसे असाध्य रोग मिट जाते हैं। आप बारह महीनेतक करके देख लें। गायसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवत्प्राप्तिके बहुत साधन हैं। उन साधनोंमें आजकल मेरेको एक विचित्र साधन मिला है, जो देखनेमें नहीं आता है। वह है—‘हम भगवान्के हैं’। आपको यह साधारण दीखता होगा, पर मेरी दृष्टिमें बहुत विचित्र है। हम सब-के-सब भगवान्की सन्तान हैं—यह मामूली बात नहीं है। इससे भगवत्प्राप्ति बहुत सुगम हो जाती है। हमारे शरीर माता-पिता दोनोंके अंशसे बने हुए हैं, पर जीव केवल परमात्माका अंश है—‘ममैवांशः’ (गीता १५/७), इसमें प्रकृतिका अंश नहीं है। यह खास बात है। आप शरीर नहीं हैं। आपका शरीर प्रकृतिका है और आप खुद परमात्माके अंश हैं—इस तरफ आप कम ध्यान देते हैं। ‘मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई’—इसमें मीराबाई इतनी तल्लीन हो गयीं कि उनका जड़ शरीर भी चिन्मय हो गया और भगवान्में लीन हो गया! उनके शरीरकी दाह-क्रिया नहीं करनी पड़ी!

जड़-विभाग ( शरीर ) संसारकी सेवाके लिये है और चेतन-विभाग ( आप स्वयं ) भगवान्के लिये है। आप इस बातको जमा लें कि हम चाहे कैसे ही हों, हम भगवान्के हैं। कीचड़से भरा बालक भी माँकी गोदीमें जानेके लिये निःशंक होता है। अगर माँ निगाह न रखे तो वह वैसा ही जाकर माँकी कीमती रेशमी साड़ीमें बैठ जायगा! बालक यह नहीं सोचता कि अभी मैं माँकी गोदीमें बैठनेलायक हूँ ही नहीं। बस, मेरी माँ है। ऐसे ही भगवान् हमारे हैं। इसलिये भगवान्से संकोच करनेकी जरूरत नहीं है। आप जैसे हैं, वैसे ही उनके चरणोंमें जाकर बैठ जायें। हम भगवान्के हैं इस बातको पकड़ लो तो शुद्धि करनी नहीं पड़ेगी, अपने-आप शुद्धि होगी। आपको आश्चर्य आयेगा कि बिना कुछ किये इतनी शुद्धि, इतनी निर्मलता कैसे आ गयी! भगवान्के होनेसे जैसी शुद्धि होती है, वैसी शुद्धि कर्मोंसे नहीं होती।

समझमें नहीं आये तो भी भगवान्को अपना मान लो। उनको नकली भी अपना मान लो तो वह असली हो जायगा; क्योंकि असलमें वे अपने हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—यदि पति शराबी-कबाबी हो, मारपीट करनेवाला हो तो क्या पत्नीको उसे छोड़ देना चाहिये?

**स्वामीजी**—आप पतिके गुणोंकी तरफ देखती हैं, पर क्या अपनी तरफ भी देखती हैं? बहनोंको चाहिये कि वे अपनी तरफ भी देखें कि मैं कैसी हूँ। केवल दूसरोंकी तरफ न देखकर अपनी तरफ भी देखना चाहिये, यह बात सबके लिये है। मनुष्यका स्वभाव है कि वह दूसरोंकी तरफ देखता है—‘**पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्मयश्यति नान्तरात्मनम्**’ (कठोपनिषद् २/१/१)।

पापी पतिके त्यागकी बात भी आती है। श्रीमद्भागवत, रासपंचाध्यायीमें आया है कि स्त्री पापी पतिको छोड़कर और किसी प्रकारके पतिका त्याग न करे (१०/२९/२५)। शराब पीनेवाला महापापी है। परन्तु बहनें अपनी तरफ तो देखती नहीं, केवल पतिकी तरफ देखती हैं। यह बात उचित नहीं है। अपनी तरफ भी देखो कि आप कैसी हो? क्या आप पतिव्रता हो? त्यागकी बात मैं इसलिये नहीं कहता कि आजकल त्याग करने, तलाक देनेकी रीति चल पड़ी है। एक स्त्रीने पतिको इस कारण तलाक दे दिया कि वह रातको सोते समय खरटे मारता था, जिससे उसकी नींदमें विघ्न पड़ता था! आजकल लड़के अच्छी-अच्छी लड़कियोंका त्याग कर देते हैं। यह कोई तमाशा नहीं है। यह बहुत अन्याय, पापकी बात है!

जो पतिव्रता होती है, वह पतिका त्याग नहीं करती, प्रत्युत उसका सुधार करनेकी चेष्टा करती है। एक स्त्रीका पति अच्छा नहीं था, पर उसने पतिकी सेवा करके, उसको राजी करके उसका सुधार कर दिया, यह सच्ची घटना है। जो अपने धर्मका ठीक पालन करता है, उसमें एक शक्ति होती है। इसलिये सेवा करो, पर जहाँतक बने, त्याग मत करो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र आदि अपने नहीं हैं तो क्या उन्हें छोड़ देना चाहिये?

**स्वामीजी**—वे अपने नहीं हैं—इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनको छोड़ दें। यह शिक्षाकी बात है। सिवाय भगवान्के रत्तीभर भी कोई चीज आपकी नहीं है—यह भीतरसे माननेकी बात है, बाहर हल्ला करनेकी बात नहीं है। मनसे शरीरको भी अपना नहीं मानना चाहिये। शरीर संसारका है, अपना नहीं। इसलिये इसको संसारकी सेवामें लगाना है। अगर शरीर आपका है तो क्या आप शरीरको बीमार होनेसे रोक सकते हो? कमजोर होनेसे रोक सकते हो? बूढ़ा होनेसे रोक सकते हो? मरनेसे रोक सकते हो? शरीरपर आपका वश नहीं चलता तो क्या शरीरका त्याग कर दोगे? शरीर, धन-सम्पत्ति आदिकी रक्षा करो, उनका सदुपयोग करो, पर भीतरसे उनको अपना मत मानो। कर्मयोगकी दृष्टिसे वे संसारके हैं, ज्ञानयोगकी दृष्टिसे प्रकृतिके हैं और भक्तियोगकी दृष्टिसे भगवान्के हैं। इसलिये उनको चाहे संसारका मानो, चाहे प्रकृतिका मानो, चाहे भगवान्का मानो, पर अपना मत मानो। **मिली हुई और बिछुड़नेवाली चीज अपनी नहीं होती—यह सिद्धान्त सदा याद रखो।**

शरीरको अपना न मानकर उसकी भी सेवा करो तो जो माहात्म्य (पुण्य) दूसरोंकी सेवाका होता है, वही माहात्म्य अपने शरीरकी सेवाका भी होगा। शरीरको भोगोंमें लगाना उसके साथ अन्याय, अत्याचार है। शरीरसे गलत कार्य करना, मांस-मदिराका सेवन करना बड़ा भारी पाप है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—कभी-कभी व्यवहारमें झूठ बोलना पड़ता है, क्या करें?

**स्वामीजी**—झूठ न बोलकर चुप रह जाओ अथवा कह दो कि बात मैं बताऊँगा नहीं। थोड़ा-बहुत कष्ट होता हो तो उसको सहन करो। धर्मका पालन करनेसे रुपये ज्यादा आते और आराम ज्यादा मिलता तो सभी धर्मात्मा बन जाते। धर्मका पालन करनेमें थोड़ा कष्ट पाना पड़ता है। वह कष्ट आपके लिये ऊँचे दर्जेकी तपस्या है। उससे आपका अन्तःकरण शुद्ध होगा। अच्छे-अच्छे सन्त-महात्माओंने भी बहुत कष्ट उठाये हैं। कष्टसे आप घबराओ

मत। अनुकूलता-प्रतिकूलता संसारका स्वरूप है। इसलिये दिन और रातकी तरह अनुकूलता भी आयेगी, प्रतिकूलता भी आयेगी। कभी सुख और कभी दुःख लखपतियों-करोड़पतियोंको भी आता है, साधुओंको भी आता है, गृहस्थोंको भी आता है, सभीको आता है। **दुःख सहनेमें कठिन होता है, पर उससे नुकसान नहीं होता।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

जीवमात्र परमात्माका अंश है; परन्तु कल्याणकी जिम्मेवारी केवल मनुष्यपर है। परमात्माको प्राप्त करनेमें ही मनुष्यजीवनकी सफलता है। इसलिये कम-से-कम परमात्मप्राप्तिके मार्गमें तो लग ही जाना चाहिये। इसमें कोई विघ्न-बाधा आये तो प्रभुसे प्रार्थना करो कि 'हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो! बचाओ!' आप भगवान्के भजनमें लगते हैं तो इससे आपका भी हित है और दुनियामात्रका भी हित है।

अपना कल्याण चाहते हो तो तीन बातोंका नियम ले लें—किसीको बुरा नहीं समझेंगे, किसीका बुरा नहीं चाहेंगे और किसीका बुरा नहीं करेंगे। मूलमें सब परमात्माके अंश हैं। आपकी दृष्टि मूलकी तरफ रहनी चाहिये। साँप, बिच्छू आदि बड़े-बड़े जहरीले जीव भी परमात्माके अंश हैं। उनमें जो जहर है, वह भी दूसरोंके हितके लिये है। कारण कि वायुका जो जहरीला अंश है, उसको वे पी लेते हैं, जिससे दुनिया नीरोग होती है। तात्पर्य है कि **सभी जीव-जन्तु मनुष्योंका हित करनेवाले हैं।**

जो सत्संग करते हैं, उन भाईयों और बहनोँके मनमें किसीके प्रति भी द्वेष नहीं होना चाहिये। दूसरा भले ही द्वेष करे, पर बुराईका उत्तर भलाईसे दो। किसीकी बुराई न करना बहुत ऊँचा साधन है। **बुराई न करनेके समान कोई भला काम नहीं है।** आपके मनमें जँची हुई है कि दान करें, तीर्थ करें, व्रत करें, पाठ करें तो भला होगा, यह बात ठीक है, पर आप बुराई न करें—इसके समान वे नहीं हैं। दान, व्रत आदि लोगोंको दीखते हैं और उनका अभिमान भी आता है, पर बुराई न करनेका अभिमान नहीं आता। बुराई न करनेके लिये आपको न कहीं जाना पड़ेगा, न खर्चा करना पड़ेगा, न परिश्रम करना पड़ेगा। बुराई छोड़नेपर आपको भलाई करनी नहीं पड़ेगी, प्रत्युत स्वतः भलाई होगी। आपका जीवन महान् शुद्ध, निर्मल हो जायगा। आपके चित्तमें शान्ति आ जायगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

अगर आपका कोई जोरदार शुद्ध संकल्प है और वह पूरा नहीं हुआ तो जब आप उसको भूल जाते हो, तब वह पूरा हो जाता है, ऐसा एक नियम है। बढ़िया बात तो यह है कि अगर आपका कोई शुद्ध संकल्प हो और वह छूटे नहीं तो उसको भगवान्पर छोड़ दो। भगवान्से कह दो कि 'हे प्रभो! मेरेसे यह संकल्प छूटता नहीं' और निश्चिन्त हो जाओ। फिर या तो वह संकल्प (भगवान् उचित समझेंगे तो) पूरा हो जायगा अथवा छूट जायगा।

**सम्पूर्ण शास्त्रोंमें वेद श्रेष्ठ हैं। वेदोंका सार है—उपनिषद्, उपनिषदोंका सार है—गीता और गीताका सार है—भगवान्की शरणागति।** आप भगवान्के चरणोंके शरण हो जाओ तो आप शुद्ध हो जाओगे, आपका जीवन बदल जायगा, स्वभाव बदल जायगा। अगर आपका लड़का कहना नहीं मानता तो आप उसमें ममता छोड़कर, उसको अपना बेटा न मानकर सच्चे हृदयसे उसको भगवान्के अर्पण कर दो तो उसका स्वभाव सुधर जायगा। जो चीज भगवान्के अर्पण कर देते हैं, वह प्रसाद (शुद्ध, पवित्र) हो जाती है।

अपने सम्पूर्ण पापोंको भोगकर हम सन्त बन जायँ, यह हाथकी बात नहीं है। भगवान् कृपा करके पाप माफ करते हैं, तभी सन्त बनते हैं। भगवान्ने साफ कहा है—'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि' (गीता १८/६६)। इसलिये भगवान्के शरण होकर निश्चिन्त हो जाओ। भगवान्से दूसरेका दुःख सहा नहीं जाता। परन्तु कौन-सा दुःख? आप धन, पुत्र, स्त्री आदिके लिये रो-रोकर मर भी जाओ तो भगवान् परवाह नहीं करते; परन्तु भगवान्के लिये, अपने कल्याणके लिये आप दुःखी हो जाओ तो वह दुःख भगवान् नहीं सह सकते।

**पाप भगवान्से बलवान् नहीं हैं। आपके कितने ही पाप हों, भगवान् पापोंसे नहीं अटकते।**

वे अटकते हैं आपके भावकी कमी होनेसे।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनुष्यजन्म सफल करनेके लिये दो काम करो—भगवान्को याद रखना और सेवा करना। किसी भी वर्ण, आश्रम, धर्म, सम्प्रदाय आदिका कोई भी दीन-दुःखी हो, उसकी सेवा करो। **अपना कल्याण करना हो तो किसीके साथ वैर मत रखो, विधर्मीके साथ भी नहीं।** विधर्मी भी भूखा-प्यासा हो तो उसको भी निर्वाहमात्रके लिये अन्न-जल दे दो। यह मनुष्यता है। अन्न, जल, वस्त्र, मकान और औषध—ये चीजें अपनी शक्तिके अनुसार अभावग्रस्तोंको दो। ऐसा मत समझो कि हमारे पास पैसे कम हैं, इसलिये कम पुण्य कर सकेंगे। ज्यादा पैसोंवाला ज्यादा पुण्य नहीं कर सकता। **भगवान्के यहाँ पैसोंकी गिनती नहीं होती। भगवान् शक्ति देखते हैं कि आप कितना दान कर सकते हैं?**

सत्त सारु दत्त बाँटिये, नापो कहत नरां।

निपट नकारो न दीजिये, ऊणत देख घरां॥

‘नापो कवि लोगोंसे कहते हैं कि अपनी शक्तिके अनुसार दान दो। घरमें तंगी देखकर किसीको साफ ‘ना’ मत कहो (कुछ-न-कुछ दे ही दो)।’

साधारण आदमी जितना पुण्य कर सकते हैं, उतना धनी नहीं कर सकते। जिसके पास पाँच रुपये हैं, वह गायके लिये एक रुपया दे सकता है, पर लखपति दस हजार दे तो भी एक रुपयेके बराबर नहीं होता; क्योंकि एक रुपया देनेवालेके घरमें कमी आती है, जबकि दस हजार देनेपर लखपतिको कमी आती ही नहीं। उसके घरमें भी वैसी कमी आ जाय, तभी वह एक रुपया देनेवालेके बराबर होगा। इसलिये आप कभी मत साचो कि हमारे पास पैसे कम हैं। आपका उदारभाव कल्याण करनेवाला है, रुपया कल्याण करनेवाला नहीं है। **भावसे कल्याण होता है, वस्तुसे नहीं।** अगर वस्तुसे कल्याण होता हो तो बेचारे गरीबोंका, साधुओंका कल्याण कैसे होगा?

- कुछ भी कामना न रखकर जो प्रेम किया जाता है, वह परमात्माके साथ हो जाता है।

- अंकुरित अन्नको खाना मैं अच्छा नहीं मानता; क्योंकि उसमें हिंसा मानी जाती है। अंकुर पैदा होनेसे उसमें प्राणशक्ति आ जाती है, जिससे उसमें क्रिया आरम्भ हो जाती है। प्राणशक्ति आनेके कारण उसमें हिंसा मानते हैं। प्राणशक्ति आनेपर भी वृक्षादि स्थावरमें पीड़ा कम होती है। जैसे सुषुप्तिमें हो, ऐसी पीड़ा होती है। स्थावरकी अपेक्षा जंगममें पीड़ा ज्यादा होती है। जंगममें भी गाय आदिमें पीड़ा ज्यादा होती है। जो प्राणी जितना उपयोगी होता है, उसकी हिंसाका उतना ही पाप लगता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

हमारे भीतर यह बात बैठी हुई है कि हम संसारी आदमी हैं और हमें परमात्माको प्राप्त करना है। वास्तवमें यह बात नहीं है। परमात्माकी प्राप्ति नयी बात नहीं है, प्रत्युत जन्म-मरणमें पड़ना नयी बात है। हम तो पहलेसे ही भगवान्के खास अपने हैं। हम परमात्माके अंश हैं, परमात्माकी सन्तान हैं। हम जन्मने-मरनेवाले साधारण जीव नहीं हैं। अगर हम संसारके होते तो एक जगह टिककर रहते, चौरासी लाख योनियोंमें नहीं घूमते। परमात्माकी प्राप्ति होनेपर हम फिर लौटकर संसारमें नहीं आते; क्योंकि हम अपने घरपर पहुँच गये। अतः हम संसारके नहीं हैं। हम यहाँके रहनेवाले नहीं हैं। यह हमारा घर, देश नहीं है। हम परमात्माके पास रहनेवाले हैं। इसलिये परमात्माकी प्राप्तिसे हमें हताश नहीं होना चाहिये। यह हमारा असली काम है।

दूसरी खास बात यह है कि **हम शरीर नहीं हैं।** शरीर जड़ है, हम चेतन हैं। शरीर माँके पेटमें बना है और मरनेपर हम इसको छोड़ देते हैं। अतः हम शरीरमें आये हुए हैं। जो चीज मिली है और छूट जायगी, उसमें

मेरापन कैसे होगा? मेरापन तो उसमें करना चाहिये, जिसके साथ हम सदा रहें। हम परमात्माके साथी हैं, संसारके साथी नहीं हैं। **एक मार्मिक बात है कि सब-का-सब संसार मिलकर भी हमें कुछ नहीं दे सकता, हमें मुक्ति नहीं दे सकता।** हम संसारको मुक्त कर सकते हैं। संसारभरसे हमारा मूल्य अधिक है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

ग्रन्थोंमें मनुष्यशरीरकी जो महिमा कही गयी है, वह वास्तवमें विवेकशक्तिकी महिमा है, हाड़-मांसके शरीरकी महिमा नहीं। मनुष्यमें जो विवेकशक्ति है, वह अन्य शरीरोंमें नहीं है। जड़ क्या है? चेतन क्या है? हम क्या हैं? संसार क्या है? कर्तव्य क्या है? अकर्तव्य क्या है?—इन बातोंको जाननेकी शक्तिके कारण मनुष्यशरीरकी महिमा है। हम परमात्माके हैं, संसारके नहीं हैं—इसको समझनेकी शक्ति मनुष्यमें है। विवेकशक्तिका दुरुपयोग करके मनुष्य अपना महान् पतन कर सकता है, और सदुपयोग करके अपना महान् उत्थान कर सकता है, कल्याण कर सकता है। सन्त-महात्माओंमें जो विलक्षणता आयी है, वह विवेकशक्तिके सदुपयोगसे ही आयी है। यह विवेक सत्संगसे जाग्रत् होता है। पर वह तब जाग्रत् होगा, जब आप सत्संगकी बात मानोगे।

आज अपने विवेकका दुरुपयोग करके मनुष्यने अपना कितना पतन कर लिया है! परिवार-नियोजनसे कितना नुकसान हुआ है, कितना व्यभिचार बढ़ा है, मनुष्योंकी वृत्तियाँ कितनी खराब हुई हैं! लोगोंका आचरण इतना भ्रष्ट हुआ है कि अच्छा ईमानदार आदमी मिलना मुश्किल हो गया है। गर्भपात, गोहत्या आदि बड़े-बड़े भयंकर पाप हो रहे हैं। ज्यों-ज्यों पाप बढ़ेंगे, त्यों-त्यों नये-नये दुःख आयेंगे। पापोंके बढ़नेसे ही आज अन्न और जलकी कमी हो रही है। जल जमीनके नीचे जा रहा है। कितने वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं, फिर भी शान्ति नहीं हो रही है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता—**आजकल ज्यादा दूधके लिये गायोंको सुई लगाते हैं!

**स्वामीजी—**यह गोहत्यासे भी बड़ा पाप है। हत्या करनेसे तो गाय एक बार दुःख पाती है, पर सुई लगानेसे बार-बार दुःख पाती है। यह घोर पापकी, अन्यायकी बात है। जो सुई बेचते हैं, वे भी घोर पाप करते हैं। परन्तु बुद्धि भ्रष्ट होनेके कारण आदमीको पाप दीखता नहीं। सुई लगाकर निकाला गया दूध गायके खूनके बराबर है। सबको ऐसे दूधसे बचना चाहिये।

दीवालीमें पटाखा छोड़कर जो निकम्मा खर्च करते हो, उसको बन्द करके उन पैसोंको गायोंकी सेवामें लगाओ।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मनमें उत्साह हो और तीव्र उत्कण्ठा हो तो बहुत जल्दी परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। परमात्मप्राप्ति कर्मोंका फल नहीं है, इसलिये इसके लिये कर्मोंकी जरूरत नहीं है। कर्मोंका फल नाशवान् होता है। परमात्मा अपने हैं। बालक माँकी गोदीमें अपनेपनके कारण जाता है, कर्मोंके कारण नहीं। यह वहम मत रखो कि हम कर्मोंसे बँधे हुए हैं। **परमात्माकी प्राप्तिमें कर्म बाधक नहीं होते। बाधक तब होते हैं, जब आपमें उत्कण्ठाकी कमी होती है।** कितने ही पापकर्म हों, उनसे भगवान् अटकते नहीं।

एक परमात्माके सिवाय दूसरी सत्ता है ही नहीं—यह बात जँच जाय तो बहुत जल्दी परमात्मप्राप्ति हो जाय। केवल हमारी उत्कट अभिलाषाकी कमी है। वह उत्कट अभिलाषा सत्संगसे, विचारसे जाग्रत् हो सकती है। उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हो जाय तो फिर परमात्मप्राप्तिमें कोई बाधा नहीं है।

साधक वह है, जो साध्यके बिना न रह सके। जब साधक साध्यके बिना नहीं रहेगा तो फिर साध्य साधकके बिना कैसे रहेगा? मच्छर यदि गरुड़से मिलना चाहे तो उसको गरुड़के पास जानेमें देर लग सकती है, पर गरुड़को मच्छरके पास आनेमें कितनी देर लगेगी?

दरिया दूषण दास में, नहीं राम में दोष।

जन चाले इक पाँवड़ो, हरि चाले सौ कोस॥

परमात्मा तो सब जगह मौजूद हैं, फिर उनके आनेमें देर कैसी! देर केवल हमारी उत्कट अभिलाषाकी कमीके कारण है। परमात्मा सब जगह रहते हुए भी केवल हमारी उत्कट अभिलाषा न होनेके कारण छिपे हुए हैं।

हमारे अवगुणोंको कोई जान लेता है तो हमारे प्रति उसके भावमें फर्क पड़ जाता है, उसकी हमारेसे वृत्ति हट जाती है। हमारी गलती मालूम होनेपर सन्तोंके भी हृदयमें फर्क पड़ जाता है। परन्तु भगवान् हमारे सब अवगुण, दुर्भाव जानते ही हैं, पर जानते हुए भी वे उसकी परवाह नहीं करते, प्रत्युत हमारेमें जो सद्गुण हैं, उसकी तरफ देखते हैं। अगर वे हमारे अवगुणोंको देखें तो अनेक जन्मोंतक हमारा कल्याण होना मुश्किल हो जाय! भगवत्प्राप्त सन्त-महात्माओंकी कृपा तो भगवान्से भी विलक्षण होती है; क्योंकि वे दुःख पा चुके हैं; वे भुक्तभोगी हैं।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

सत्संगमें हमने वक्ताकी मुख्यता मान रखी है, पर वास्तवमें श्रोता मुख्य होता है, वक्ता मुख्य नहीं होता। वक्ताका स्थान गौण होता है। श्रोताका यह भाव होता है कि वक्ता अधिक जानता है, मैं कम जानता हूँ; अतः वक्तासे सुनना और सुने हुँको काममें लाना श्रोताका काम है। वक्ताके लिये श्रोता नहीं होता, प्रत्युत श्रोताके लिये वक्ता होता है। श्रोता स्वतन्त्र होता है, इसलिये वह कहीं भी जाकर सुन सकता है। पर वक्ता परतन्त्र (श्रोताके अधीन) होता है। यदि श्रोता न हो तो वक्ता क्या करेगा? श्रोता मालिक है, वक्ता नौकर है। इसलिये श्रोता आये या न आये अथवा देरसे आये, पर वक्ताको तो समयपर आना ही पड़ता है। वक्ता मनमें भले ही अपनेको बड़ा मान ले, पर वास्तवमें वह नौकर है। वक्ता बड़ा होनेके कारण ऊँचा बैठता है, यह बात नहीं है। ऊँचा इसलिये बैठता है कि सबको ठीक सुनायी दे सके। जो अपनी विद्वत्ता और श्रेष्ठता बतानेके लिये, अपनी विशेष जानकारी बतानेके लिये बोलता है, वह वक्ता नहीं होता।

वक्ताको जितना लाभ होता है, उतना लाभ श्रोताको नहीं होता। कारण कि पहले वक्ताकी बुद्धिमें बात आती है, फिर वह बात मनमें आती है, फिर वह वाणीमें आती है, फिर वह शब्दोंमें आती है, और फिर वह बात क्रमशः श्रोताके कानमें, मनमें और बुद्धिमें जाती है। फिर श्रोता उस बातको काममें लाता है। इतना अन्तर होनेपर भी जब श्रोताको लाभ होता है, फिर वक्ताको तो बहुत ज्यादा लाभ होगा। वक्ताकी बुद्धिमें जितनी बात आती है, उतनी मनमें नहीं आती। मनमें जितनी बात आती है, उतनी शब्दोंमें नहीं आती। शब्दोंमें जितनी बात आती है, उतनी श्रोताके कानोंतक नहीं पहुँचती। कानोंतक जितनी बात पहुँचती है, उतनी मन-बुद्धिमें नहीं आती। जितनी मन-बुद्धिमें आती है, उतनी आचरणमें नहीं आती। इतनेपर भी श्रोताको लाभ होता है, फिर वक्ताको लाभ क्यों नहीं होगा? इसलिये वास्तवमें श्रोता पढ़ता है और वक्ता पढ़ता है। वक्ताको ज्यादा लाभ होता है और श्रोताको ज्यादा लाभ उठाना चाहिये।

श्रोताकी मुख्यता होनेसे श्रोतापर जिम्मेवारी ज्यादा है। श्रोताका यह भाव होना चाहिये कि वक्ता मेरे लिये ही कह रहा है। ऐसा भाव होनेसे ही श्रोता वक्तासे लाभ उठा सकता है। वक्ताकी जिम्मेवारी है कि वह अपनी समझसे बढ़िया-से-बढ़िया बात कहे, जिससे श्रोताका कल्याण हो। श्रोताको वक्ताका आदर करना चाहिये और वक्ताको श्रोताका आदर करना चाहिये।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

श्रोता—कोई ऐसी युक्ति बता दें, जिससे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय।



**स्वामीजी**—परमात्माकी प्राप्तिमें युक्ति काम नहीं करती, लगन काम करती है। मेरे मन-बुद्धि भगवान्में लग जायँ—इसकी अपेक्षा भी 'मैं भगवान्में लग जाऊँ'—यह इच्छा जोरदार होनी चाहिये। अन्य साधक बननेमें तो योग्यता चाहिये, पर भगवान्का भक्त बननेके लिये योग्यताकी जरूरत नहीं है। पापी-से-पापी, दुराचारी-से-दुराचारी भी भक्त बन सकता है। इसका कारण यह है कि वास्तवमें हम भगवान्के हैं। आपके आचरण कैसे ही हों, भगवान्के पास जानेमें रुकावट नहीं है। बाधा हमारी बनायी हुई है, भगवान्की ओरसे कोई बाधा नहीं है। माँकी गोदीमें जानेके लिये किसी योग्यताकी जरूरत नहीं है। बालक माँकी गोदीमें इसलिये जा सकता है कि वह माँका है। माँ तो फिर भी नाराज हो सकती है, पर भगवान् नाराज नहीं होते। भगवान् दण्ड देते हैं तो भी प्यारसे देते हैं। माँ भी मारती है तो प्यारसे मारती है, द्वेषसे नहीं। भगवान्का हृदय माँके हृदयसे भी बढ़कर है। माँकी अपेक्षा भी भगवान्का स्नेह ज्यादा है; क्योंकि शरीर तो माँ-बाप दोनोंका अंश है, पर जीव अकेले भगवान्का अंश है। उसमें प्रकृतिका अंश नहीं है। भगवान् कृपा करनेके लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं! इसलिये भगवान्की तरफ चलनेमें आप उपाय मत पूछो। आप भगवान्के हैं, इसलिये भगवान्की गोदीमें जानेके लायक हैं। एक बात याद रखें कि मैं भगवान्का हूँ।

**भगवत्प्राप्तिकी सबसे बढ़िया युक्ति यही है कि 'मैं भगवान्का हूँ'। मन-बुद्धि प्रकृतिके हैं। अतः मन-बुद्धि ठीक नहीं हैं तो प्रकृतिके ठीक नहीं हैं, मैं तो भगवान्का हूँ। जैसे भगवान् अविनाशी हैं, ऐसे ही मैं भी अविनाशी हूँ। जब भगवान् नहीं मरते तो फिर मैं कैसे मरूँगा? इसलिये सन्तोंने कहा है—**

**राम मेरे तो मैं मरूँ, नहीं तो मेरे बलाय।**

**अविनाशी का बालका, मेरे न मारा जाय॥**

**'मैं भगवान्का हूँ, भगवान् मेरे हैं'—यह नामजपसे, भगवान्के स्मरणसे भी ऊँची बात है। यह असली भजन है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**साधन करनेवाले भाई-बहनोंको चाहिये कि वे अपनेको संसारी न मानें।** हमारा कुल, जाति अलग है और हम अलग हैं। हम संसारके आदमी नहीं हैं। हम भगवान्के हैं। जब व्यापार करनेवाले अपनेको व्यापारी मानते हैं तो फिर भजन-ध्यान करनेवाले संसारी कैसे हुए? हमारा सम्बन्ध इस मृत्युलोकके साथ नहीं है। हमारा सम्बन्ध भगवान्के साथ है। हम भगवान्की जातिके हैं। हमारा गोत्र 'अच्युतगोत्र' है। स्त्री पतिकी हो जाती है तो पतिका गोत्र ही उसका गोत्र हो जाता है। अतः भगवान्का गोत्र ही हमारा गोत्र है, भगवान्की जाति ही हमारी जाति है, भगवान्का लोक ही हमारा लोक है, भगवान्का घर ही हमारा घर है।

**अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥**

(मानस, अरण्य. ११/११)

**वास्तवमें भक्त वही है, जो भगवान्का है।** जो भगवान्का होता है, वह साधारण आदमी नहीं होता। संसारका आदमी साधारण होता है। पदार्थ और क्रियाका सम्बन्ध इस लोकसे है। हमारा इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। कोई काम करते समय यह सोच लो कि मैं भगवान्का हूँ तो यह काम किस ढंगसे करूँ, आपके मनमें स्वतः स्फुरणा हो जायगी। आप सच्चे हृदयसे भगवान्को चाहोगे तो भगवान्का भजन क्या करें, यह आपके मनमें स्वतः आ जायगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—इस जन्ममें और पिछले जन्ममें हमने जाने-अनजाने जो भी पाप किये हैं, क्या नामजप करनेसे सब पाप माफ हो जायँगे?

**स्वामीजी**—सब पाप नष्ट हो जायेंगे और इतना ही नहीं, आगे पाप करनेकी वृत्ति भी नष्ट हो जायगी।

**श्रोता**—पहले भूलसे कोई गलती, पाप हो गया हो तो उसका प्रायश्चित्त कैसे करें?

**स्वामीजी**—इसके लिये तीन बातें होनी चाहिये—सबसे पहले ‘हमने गलती की’ यह अनुभव होना चाहिये। दूसरी बात, इस बातका दुःख होना चाहिये कि हमारे जैसे समझदारने यह गलती कर दी! और तीसरी बात, यह निश्चय कर ले कि हम यह गलती दुबारा नहीं करेंगे।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—आप कहते हैं कि भगवान् दयालु हैं और सब जीवोंपर दया करते हैं, फिर आजकल सब लोग दुःखी हो रहे हैं, इसमें भगवान्की क्या दया है?

**स्वामीजी**—वैद्य रोगीको कड़वी दवा देता है तो क्या कड़वी दवा देनेमें उसकी दया नहीं होती? उसका रोग कैसे दूर हो, उसके पाप कैसे नष्ट हों, वह शुद्ध, निर्मल कैसे बने—ऐसा विचार करके जो विधान किया जाय, क्या उस विधानमें दया नहीं है? बालकको पढ़ाते हैं तो वह पढ़ाईको कैद समझता है तो क्या पढ़ानेवाला उसपर दया नहीं करता?

एक ‘दया’ होती है और एक ‘कृपा’ होती है। दया पोली होती है और कृपा ठोस होती है। दयामें कोमलता और कृपामें कठोरता होती है। प्रतिकूलतामें भगवान्की कृपा होती है। कृपा मनुष्यकी सामर्थ्य बढ़ाती है। कृपामें पुराने पाप नष्ट होते हैं और आगे नयी उन्नति होती है। दया तो दीखती है, पर कृपा दीखती नहीं।

भगवान्का मात्र विधान कृपासे परिपूर्ण है। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—‘**है तुलसिहिं परतीति एक प्रभु मूरति कृपामई है**’ (विनयपत्रिका १७०/७)। भगवान्का विधान हरेक प्राणीके लिये मंगलमय होता है। उस मंगलमय विधानको न समझनेके कारण ही हमें दुःख होता है, भय लगता है। अगर भगवान्का मंगलमय विधान समझमें आ जाय तो दुःख नहीं होगा, प्रत्युत सुख और दुःख दोनोंमें आनन्द होगा।

भगवान् पिताके समान और सन्त माँके समान होते हैं। माँका हृदय अधिक कोमल होता है। इसलिये सन्त-महात्मा अपने ऊपर आये दुःखको तो कठोरतासे सहन कर लेते हैं, पर दूसरेके दुःखको देखकर द्रवित हो जाते हैं।

जो भोगी होते हैं, वे सुख देखते हैं। योगी सुख नहीं देखते। कल्याण चाहनेवाला सुखके पीछे नहीं पड़ता। केवल सुखभोगकी इच्छाके कारण ही लोग कल्याणसे वंचित हो रहे हैं। साधक सुखलोलुप नहीं होता। उसकी दृष्टिमें भजनकी महत्ता होती है, सुखकी नहीं। आजतक सुखका भोगी एक भी आदमी साधक, योगी, ज्ञानी, भक्त, प्रेमी, सन्त-महात्मा नहीं हुआ। संसारमें भी सुखका भोगी कोई श्रेष्ठ पुरुष नहीं बना। सुखभोग चाहनेवालेकी उन्नति कभी नहीं हुई। सुखभोग चाहनेवाला सन्त-महात्मा, योगी, विद्वान्, नेता, श्रेष्ठ पुरुष नहीं हो सकता। आप देखो कि सुखके भोगी धनी आदमी कितने सत्संगमें आते हैं? सुखका भोगी पारमार्थिक बातको समझ ही नहीं सकता। इसलिये साधकमात्रको पहलेसे ही याद कर लेना चाहिये कि परमात्माकी प्राप्ति चाहिये तो सुखभोग, मान-बड़ाई, आदर-सत्कार, आराम मत चाहो और अगर ये चाहो तो परमात्माको मत चाहो। परमात्मप्राप्तिमें सुख बाधक नहीं है, प्रत्युत सुखकी इच्छा, लोलुपता बाधक है। सुखकी इच्छासे ही सब पाप होते हैं।

जिसमें भगवान्का भजन बने, वह सुख भी अच्छा है, दुःख भी अच्छा है। जिसमें भगवान्का भजन न बने, वह सुख भी बुरा है, दुःख भी बुरा है।

सुख अच्छा लगता है, पर सुखसे जितना पतन होता है, उतना दुःखसे पतन होता ही नहीं। सुखलोलुपता

जितनी बाधक है, उतनी बाधक संसारमें कोई चीज नहीं है।

● यदि एकान्तमें संसारका चिन्तन ज्यादा होता है और नींद ज्यादा आती है तो वह एकान्तका पात्र नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—सब जगह परमात्मा हैं—यह हम सुन लेते हैं, कह देते हैं और देखनेकी चेष्टा करते हैं, फिर भी परमात्मा दीखते नहीं। दीखता संसार ही है। हम क्या करें, जिससे परमात्मा दीखने लग जाय?

**स्वामीजी**—परमात्माकी प्राप्ति चाहते हो तो स्वार्थबुद्धि और अभिमानका त्याग करके दूसरोंकी सेवा करो। स्वार्थ और अभिमानसे ही बाधा लग रही है। इन दोनोंके त्यागसे ही 'वासुदेवः सर्वम्' का अनुभव होगा। सबके प्रति सेवाभाव रखो तो भगवद्बुद्धि हो जायगी। जब भगवान् दीखेंगे तो हम नम्र होंगे, उनको नमस्कार करेंगे, उनकी सेवा करेंगे, तो अभीसे ही नम्र होकर सेवा करनी शुरू कर दो, भगवान् दीख जायेंगे। आप अभिमानका त्याग करके छोटे बनोगे, तभी तो बड़े (परमात्मा) दीखेंगे!

स्वार्थबुद्धिके त्यागसे आप डरो मत। स्वार्थबुद्धिका त्याग करनेसे आपके स्वार्थमें बाधा नहीं लगेगी, प्रत्युत वर्तमानकी अपेक्षा स्वार्थसिद्धि ज्यादा होगी। आपके भीतर दूसरोंको सुख पहुँचानेका जितना भाव होगा, उतना ही दूसरोंके भीतर आपको सुख पहुँचानेका भाव अपने-आप पैदा होगा। जिन लोगोंने स्वार्थबुद्धिका त्याग किया है, उनके जीवनमें दुःख नहीं रहता। परन्तु स्वार्थके त्यागसे सुख मिलेगा—यह भाव भी आप मत रखो।

संसारमें जितना पतन हो रहा है, सब स्वार्थबुद्धिके कारण ही हो रहा है। केवल कहने-सुननेसे सबमें भगवद्बुद्धि नहीं होगी, प्रत्युत 'सब सुखी हो जायँ'—ऐसा भाव होनेसे सबमें भगवद्बुद्धि होगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—जब सब जगह भगवान् हैं तो फिर मूर्तिकी पूजा क्यों करें?

**स्वामीजी**—सब जगह भगवान् हैं तो क्या आप सब जगह भगवान्का पूजन करते हो? सब जगह पूजन नहीं कर सकते तो कम-से-कम एक जगह (मूर्ति आदिमें) तो पूजन शुरू करो। आप बातें तो करते हो, पर कहीं पूजा शुरू भी की है? कोरी बातोंसे काम नहीं होता। हरेक कामका एक तरीका होता है, विधि होती है। जो एक पीपलका भी पूजन करता है, उसने कम-से-कम एक जगह तो पूजा शुरू की। वह उससे तो अच्छा है, जिसने पूजा शुरू ही नहीं की! जिन्होंने मूर्तिपूजाका खण्डन किया है, उसमें अश्रद्धा पैदा की है, उनके द्वारा लोगोंका बहुत नुकसान हुआ है। खुद करके देखा नहीं, दूसरोंको करनेसे रोक दिया!

बालकको माँकी ज्यादा जरूरत होती है। परन्तु माँके हृदयमें बालकके हितकी जो लगन होती है, वह बालकके हृदयमें नहीं होती। इसी तरह सन्त-महात्माओंके हृदयमें आपके कल्याणकी जितनी लगन है, उतनी आपके हृदयमें नहीं है। उनका हृदय माँसे भी बढ़कर होता है।

जो भगवान्की, शास्त्रोंकी, सन्तोंकी, बड़े-बूढ़ोंकी बात नहीं मानता, उसको दुःख पाना ही पड़ेगा। जो स्वार्थका त्याग करके आपके हितकी बात कहते हैं, उनकी बात मान लो। समझमें न आये तो पूछ लो।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

गायसे खेती (जमीन) पुष्ट होती है और खेतीसे गाय पुष्ट होती है। दोनोंका आपसमें सम्बन्ध है। गाँवमें खेती करनेवाले लोग गायोंका जैसा पालन कर सकते हैं, वैसा शहरमें रहनेवाले नहीं कर सकते। अतः खेती करनेवालोंसे मेरा प्रार्थना है कि आप दुःख भी पायें, कष्ट भी उठायें तो भी गायोंका पालन करें। गाय रखनेसे आपको लाभ होगा, नुकसान नहीं होगा।

बड़ी मुश्किल बात यह हुई है कि आज लोगोंकी दृष्टि पैसोंकी तरफ हो गयी कि पैसा अधिक होना चाहिये। आप पैसोंसे वस्तु लेकर जी सकते हो, पैसोंसे नहीं जी सकते। **आपके जीवनमें वस्तु काम आती है, पैसा काम नहीं आता।** पहले किसानलोग घासका, अन्नका संग्रह रखते थे, पर आज घास बेचकर पैसोंका संग्रह करते हैं!

**हम भले ही मर जायँ, पर गायको नहीं मरने देंगे—ऐसा विचार हो जाय तो गायोंका पालन करना बड़ा सुगम हो जायगा।** मैंने गायोंका पालन करनेवालोंकी ऐसी-ऐसी बातें सुनी हैं कि 'जबतक घास रहेगा, गायोंको घास खिलायेंगे। घास खत्म हो जायगा तो अन्न गायोंको खिलायेंगे और हम भी खायेंगे। अन्न खत्म हो जायगा तो गायें भी मरेंगी और हम भी मरेंगे। हम जीते रहें और गायें मर जायँ, यह नहीं होगा।'

पहले हमारी माताओंके दो काम खास थे, सुबह जल्दी उठकर आटा पीसना और गायोंकी सेवा करना। इससे उनका शरीर ठीक रहता था और वे बीमार नहीं पड़ती थीं। आज दोनों काम छोड़नेसे जवान बहनें भी बीमार हो गयी हैं।

आप कहते हैं कि जनसंख्या बढ़ रही है, इसलिये खानेको अन्न नहीं मिलेगा। पर मैं कहता हूँ कि परिवार-नियोजन और गर्भपात करनेके कारण अन्न मिलना दूर रहा, पीनेको पानी भी नहीं मिलेगा। पहले एक स्त्रीके अधिक-से-अधिक दो ही बच्चोंका एक साथ पैदा होना सुना जाता था, पर आज बारह-बारह बच्चे एक साथ पैदा होनेका समाचार सुनते हैं तो यह परिवार-नियोजनका ही परिणाम है।

रूप्योंके लोभसे बहुत नुकसान हुआ है। आज देसी गायोंका कत्ल कर रहे हैं और विदेशी गायें ला रहे हैं, इससे बड़ा भारी नुकसान है। कसाईखानोंमें बड़ी संख्यामें पशुओंको मार रहे हैं। **पशुओंके बिना मनुष्योंका जीना मुश्किल है। पशुओंसे ही मनुष्य जीते हैं। मनुष्योंकी जीवनी-शक्ति पशुओंसे ही आती है।**

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

संसारकी सत्ता जीवोंकी दृष्टिमें ही है। क्रिया और पदार्थसे होनेवाले साधनोंमें परमात्मप्राप्ति करानेकी ताकत नहीं है, पर उद्देश्य परमात्माका होनेसे साधकको परमात्मप्राप्ति होती है। वास्तवमें परमात्माकी प्राप्ति जड़के त्यागसे होती है, जड़के द्वारा नहीं। जबतक भोग और संग्रहकी इच्छा है, तबतक कितनी ही ऊँची अवस्था हो जाय, परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती। भोग और संग्रहकी आसक्ति भगवान्की कृपासे मिटती है, इसलिये आप इनके रहते हुए भी भगवान्से प्रार्थना करो। प्रार्थनामें ये बाधा नहीं देंगे। भगवान्के शरण होकर 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो।

आप स्वयं परमात्माके अंश होनेसे परमात्माके स्वरूप हैं। जैसे भगवान्ने कहा है—'**मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना**' (गीता ९/४) 'यह सब संसार अव्यक्तमूर्ति (मेरे निराकार स्वरूप) से व्याप्त है'। ऐसे ही आप भी अव्यक्तमूर्ति हैं, स्थूलमूर्ति नहीं हैं। यह मार्मिक बात है। अव्यक्तका अंश भी अव्यक्त है—'**अव्यक्तादीनि भूतानि**' (गीता २/२८)। **परमात्माकी तरफ चलते ही आप अव्यक्त होते हैं और संसारकी तरफ चलते ही आप व्यक्त होते हैं।** व्यक्त संसारकी एक केश जितनी चीज भी आपकी नहीं है।

भगवान्की तरफ चलनेपर अपनेको पहले जैसा मानना गलती है। भगवान्की तरफ चलना बहुत विचित्र बात है, मामूली बात नहीं है। भगवान्की तरफ रुचि होते ही आप पहले जैसे शरीरवाले नहीं रहते, आपका परिवर्तन हो जाता है, आप अव्यक्तमूर्ति (निराकार) हो जाते हैं। कारण कि मूलमें आप साक्षात् परमात्माके अंश हैं। इसलिये साधक शरीर नहीं होता। शरीर तो संसारकी तरफ चलनेके लिये है। इस बातका ज्यादा विवेचन नहीं हुआ है, पर बात ऐसी ही है। परमात्माका अंश जड़, नाशवान् कैसे हो सकता है? परन्तु आपने जड़को पकड़ रखा है, यही जन्म-मरणका कारण है। आप शरीरका कितना ही पालन-पोषण करो, पर वह आपके साथ नहीं रहेगा। जैसे चौरासी लाख शरीर अभी नहीं हैं, ऐसे ही यह शरीर भी अभी नहीं है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—आपके सत्संगमें कभी सुनते हैं कि संसार जड़ है, नाशवान् है, और कभी सुनते हैं कि संसार भगवत्स्वरूप है—‘वासुदेवः सर्वम्’, तो इससे उलझन हो रही है कि किस बातको मानें?

**स्वामीजी**—एक बात भोगोंमें रचे-पचे लोगोंको संसारसे ऊँचा उठानेके लिये है और एक बात परमात्माकी प्राप्ति करानेके लिये है। जबतक आपके मनमें पदार्थोंका आकर्षण, प्रियता है, तबतक ‘संसार नाशवान् है, क्षणभंगुर है’—यह कामकी चीज है। तात्पर्य है कि **सांसारिक भोगोंमें खिंचाव मिटानेके लिये, भोगासक्ति छुड़ानेके लिये उसे नाशवान्, क्षणभंगुर कहा जाता है। वास्तवमें सिद्धान्तसे वह भगवत्स्वरूप ही है।** मनुष्यशरीर भोगोंको भोगनेके लिये नहीं मिला है। भोगासक्ति महान् पतन करनेवाली चीज है। यदि भोगोंमें आकर्षण न रहे अथवा यह जँच जाय कि सब कुछ परमात्मा ही है तो फिर संसारको नाशवान्, क्षणभंगुर कहनेकी जरूरत ही नहीं। सब कुछ परमात्मा ही है—ऐसा माननेवाला भोगोंकी तरफ जायगा ही नहीं। इसलिये अलग-अलग अधिकारीके लिये अलग-अलग बात कही जाती है।

**नारायण अरु नगर के, रज्जब राह अनेक।**

**भावे आवे किधर से, आगे अस्थल एक॥**

वृन्दावनके पश्चिममें रहनेवाला आदमी कहेगा कि वृन्दावन पूर्वमें है। परन्तु वृन्दावनके पूर्वमें रहनेवाला आदमी कहेगा कि नहीं, वृन्दावन पश्चिममें है; मैं खुद वहाँ गया हूँ। दक्षिणमें रहनेवाला आदमी कहेगा कि वृन्दावन उत्तरमें है, हम जानते हैं। उत्तरमें रहनेवाला कहेगा कि वृन्दावन दक्षिणमें है, मैंने खुद जाकर देखा है। इनकी बातें आपसमें कैसे मिलेंगी? जबकि एक भी आदमी झूठ नहीं बोलता है, सब सच बोलते हैं। तात्पर्य है कि उद्देश्य एक होनेपर भी वहाँतक पहुँचनेके मार्ग अलग-अलग होते हैं। इसलिये आपकी जो स्थिति है, उसपर विचार करके आप परमात्माकी तरफ चलो। **आपका जो इष्ट है, जिसपर आपका श्रद्धा-विश्वास है, प्रेम है, पहले उसको दृढ़तासे पकड़कर चलो, फिर अन्तमें स्वतः यह बात समझमें आ जायगी कि सब एक ही हैं, कोई फर्क नहीं है।**

सत्संगके द्वारा जो लाभ होता है, वैसा लाभ मेरेको कहीं नहीं दीखता। जो लाभ सत्संगसे होता है, वह लाभ किसीके द्वारा नहीं होता। मैं सत्संगको सबसे श्रेष्ठ मानता हूँ। पर लोग सत्संगकी परवाह ही नहीं करते, प्रत्युत जहाँ हँसी-दिल्लीगी हो, गाना-बजाना हो, वहाँ लोग ज्यादा जाते हैं। वे सत्संगकी गहरी बातोंको समझते ही नहीं। समझना तो दूर रहा, सुनना भी नहीं चाहते। समझते नहीं—यह दोष नहीं है, प्रत्युत समझना चाहते ही नहीं—यह दोष है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

आप जो भी काम करते हैं, उसीसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय; यहाँतक कि युद्ध भी परमात्माकी प्राप्तिका कारण हो जाय—यह कला गीता बताती है। पाप लगनेकी जगह है—राग-द्वेष। राग-द्वेषसे रहित होकर कर्तव्यका पालन करनेसे पाप नहीं लगता। उद्देश्य परमात्माकी प्राप्ति हो और राग-द्वेष न हों तो व्यवहार करते हुए परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। वह व्यवहार चाहे कर्तव्य-भावसे करें, चाहे सेवा-भावसे करें, चाहे पूजा-भावसे करें। ‘कर्तव्य’ से ‘सेवा’ का भाव श्रेष्ठ है और सेवासे ‘पूजा’ का भाव श्रेष्ठ है।

भाई-बहनोंसे कहना है कि आप घरमें जो कुछ काम करते हैं, उस कामको भगवान्का पूजन समझकर करें। हम भगवान्के, घर भगवान्का, काम भगवान्का! भगवान् कहते हैं—‘**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः**’ (गीता १८/४६) ‘उस परमात्माका अपने कर्मके द्वारा पूजन करके मनुष्यमात्र सिद्धिको प्राप्त हो जाता है’। केवल अपना भाव बदलना है। कहीं जानेकी, वेश बदलनेकी जरूरत नहीं। पूजनका उद्देश्य होनेपर, भगवान्के लिये कर्म करनेपर शुद्धि अपने-आप आ जाती है। व्याख्यान देना भी भगवान्का पूजन और व्याख्यान सुनना भी

भगवान्का पूजन! टट्टी-पेशाब करना, स्नान करना, कुल्ला करना, हाथ-पैर धोना, नींद लेना भी भगवान्का पूजन! नौकरी करना, खेती करना भी भगवान्का पूजन! इस प्रकार सब काम भगवान्का मानकर करो तो आपका मनुष्यजन्म सफल हो जायगा।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—मैं अनेक वर्षोंसे आपका सत्संग करती हूँ। आपने राग-द्वेष मिटानेपर विशेषतासे जोर दिया है। मुझे आपके सत्संगसे लाभ तो बहुत हुआ है, पर मैं यह नहीं समझ पायी हूँ कि मेरे अन्दर राग-द्वेष हैं या नहीं, समता आयी है या नहीं? इसका ज्ञान कैसे हो?

**स्वामीजी**—अगर आपको पता नहीं हो कि मेरेमे राग-द्वेष हैं या नहीं, तो अपनेमें राग-द्वेष मत मानो। उत्पत्ति-विनाशशील पदार्थोंमें जो मनका खिंचाव होता है, उसको 'राग' कहते हैं। जैसे, पुत्र, धन, मान, आदर, सत्कार आदिमें आकर्षण होता हो तो वह 'राग' है। कोई अपमान करे, तिरस्कार करे, बिना कारण आपमें दोषारोपण करे तो वह बुरा लगता है, यह 'द्वेष' है। मनके अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, उसका मनपर कोई असर (विकार) न पड़े तो वह 'समता' है।

राग-द्वेष मनुष्यके शत्रु हैं—'तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ' (गीता ३/३४)। ये राग-द्वेष जबतक दूर नहीं होंगे, तबतक परमात्माकी प्राप्ति होना कठिन है। कोई निन्दा करे या प्रशंसा करे, उसकी बेपरवाह कर दे। मनमें जितना विकार होता है, उतना दोष है। अतः उसकी बेपरवाह कर दो। दूर करनेमें एक द्वेष-वृत्ति होती है, एक उदासीन-वृत्ति होती है। द्वेष-वृत्तिसे जब विकार दूर होता है, तब उसमें द्वेष रह जाता है, जो ठीक नहीं है। अतः उदासीन-वृत्ति रहना बढ़िया है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

**श्रोता**—हमारे घरमें मन्दिर है, जिसमें हम भगवान्की पूजा करते हैं। दो दिन पहले हमारे घरसे किसीने भगवान्के चाँदीके आभूषण चुरा लिये, इस कारण हमारे पति और बच्चोंमें भगवान्के प्रति अश्रद्धा हो गयी कि ऐसे भगवान्को हम क्या मानें, जिन्होंने चोरोंका विरोध ही नहीं किया?

**स्वामीजी**—बिल्कुल ही मूढ़ताकी, महान् मूर्खताकी बात है! अगर भगवान् चोरी करनेवाले और पूजा करनेवालेमें फर्क मानें तो वे भगवान् क्या हुए? हम तो आपके लिये भी कहते हैं कि आपमें समता आनी चाहिये। अगर भगवान्में भी राग-द्वेष हों तो वे भगवान् क्या हुए? उनकी पूजा करनेसे भी क्या लाभ? किसीने कहा कि चूहा भगवान् शंकरके ऊपर (शिवलिंगपर) चढ़ गया तो भगवान् क्या हुए, तो चूहा भगवान्के ऊपर नहीं चढ़ेगा तो क्या बिल्लीके ऊपर चढ़ेगा? बालक माँ-बापकी गोदीपर ही तो चढ़ेगा। ज्ञानकी दृष्टिसे भी देखें तो जो तत्त्व (परमात्मा) शिवलिंगमें है, वही तत्त्व चूहेमें भी है।

कोई भगवान्की पूजा करे अथवा उनके गहने चुराये, भगवान् दोनोंके प्रति समान हैं। उनमें विषमता, राग-द्वेष नहीं हैं। अगर उनमें भी राग-द्वेष हैं तो वे भगवान् नहीं हैं। राग-द्वेष तो सन्तोंमें भी नहीं होते। एक बार श्रीसेवाराजजी महाराजकी जूती कोई चुरा ले गया तो लोगोंमें इस बातकी चर्चा होने लगी। महाराजने कहा कि जो जूती लाया, उसकी तो चर्चा नहीं और जो ले गया, उसकी चर्चा, यह क्या बात हुई? कोई दे गया, कोई ले गया, इसमें चर्चा कैसी? जूती है तो पहन ली, नहीं है तो नहीं सही! जब सन्तोंका ऐसा भाव होता है, तो फिर उनके इष्ट (भगवान्) के भावमें राग-द्वेष कैसे होंगे?

अगर आप अनुकूलतामें प्रसन्न होते हैं और प्रतिकूलतामें नाराज होते हैं तो यह आपका राग-द्वेष है। आपके पास धन आता है तो आप राजी हो जाते हो और धन चला जाता है तो आप नाराज हो जाते हो, तो फिर आपमें और कुत्तेमें फर्क क्या हुआ? कुत्तेको भी पुचकारें, तू-तू करें तो वह राजी होता है, पूँछ हिलाता है और दुत्कारें



तो उसका चेहरा खराब हो जाता है। मेरी ऐसी धारणा है कि जिनको अच्छा सत्संग मिला है, उनमें राग-द्वेष स्वतः-स्वाभाविक कम होते हैं। अगर राग-द्वेष कम न हों तो सत्संग क्या किया? 'सत्' का संग होगा तो निर्विकारता स्वतः आयेगी।

अनुकूलता-प्रतिकूलता ही संसार है। हमें संसारसे ऊँचा उठना है। अतः अनुकूलता आये या प्रतिकूलता आये, हरदम प्रसन्न रहना चाहिये। हरदम प्रसन्न रहनेसे रोग भी नहीं होता। रोग होता भी है तो उसका असर कम होता है।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

भगवान् ने मनुष्यशरीर दिया है तो साथमें विवेकरूपी गुरु भी दिया है। इसलिये आपका गुरु आपके साथमें है। यह वहम है कि गुरु मिलेगा तो ज्ञान देगा। एक मार्मिक बात है कि गुरु ज्ञान देता नहीं, प्रत्युत आपमें जो ज्ञान है, उसको ही जाग्रत् करता है। वह ज्ञान गुरुके सिवाय शास्त्र, घटना, परिस्थिति आदिसे भी जाग्रत् हो सकता है। भगवान् ने मनुष्यको अपना कल्याण करनेकी बहुत अधिक सामग्री दी है।

हित करनेकी अपेक्षा किसीका अहित न करना ऊँचे दर्जेकी बात है। किसीका बुरा न करना भलाईका बीज है। दूसरेके अहितकी भावना पैदा होते ही अपनी शान्ति नष्ट हो जाती है। हित करनेवाला तो कभी अहित भी कर सकता है, पर अहित न करनेवाला हित ही करेगा। किसीका भी अहित न करनेसे ही मनुष्य श्रेष्ठ बनता है। संसारमें सबसे श्रेष्ठ मनुष्य वह है, जिसके द्वारा किसीका अहित नहीं होता। उपकार करनेवालेको तो सामग्री, योग्यता, शक्ति, विद्या, धन आदिकी जरूरत है, पर दूसरेका अहित न करनेमें किसी सामग्री, योग्यता आदिकी जरूरत नहीं है—'निवृत्तिस्तु महाफला'। निवृत्ति सुगम है। जितने सन्त हुए हैं, निवृत्ति-प्रधान हुए हैं। उपकार करनेवाला तो पहले सामग्रीको स्वीकार करेगा, तब उसके द्वारा दूसरेका हित करेगा। पर किसीका अहित न करनेवालेको सामग्रीकी जरूरत ही नहीं। त्यागकी जो महिमा है, वह महिमा उपकार करनेमें नहीं है। त्यागीके द्वारा स्वतः-स्वाभाविक उपकार होता है। अतः किसीका अहित न करना बड़ी ऊँची बात है, और सरल बात भी है। किसीका अहित न करनेसे आपको स्वतः-स्वाभाविक शान्ति मिलेगी।

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

मेरे भीतर यह बात विशेष जँची हुई है कि 'हम भगवान् के हैं, भगवान् हमारे हैं'—यह बात सब भाई-बहनोंको मान लेनी चाहिये। यह बहुत दामी बात है। सुख आये तो भगवान् को याद करो, दुःख आये तो भगवान् को याद करो। जो काम हमारेसे नहीं होता तो भगवान् को कहो। कोई आफत आये तो भगवान् को पुकारो। जैसे बच्चेको कुत्ते, बिल्ली आदिसे डर लगता है तो वह 'माँ! माँ!!' पुकारता है, ऐसे ही काम, क्रोध, लोभ आदि आ जाय तो 'हे नाथ! हे नाथ!!' पुकारो। जैसे बालक माँके भरोसे निश्चिन्त रहता है, ऐसे भगवान् के भरोसे निश्चिन्त रहो। भगवान् के होनेसे सब काम ठीक हो जायगा; क्योंकि मूलमें हम भगवान् के हैं।

'भगवान् मेरे हैं'—यह प्रेमका जनक है। प्रेम त्याग, तपस्या आदिसे साधनोंसे नहीं होता, प्रत्युत भगवान् में अपनेपनसे होता है। यह मार्मिक बात है। मेरेको तो व्याख्यान देते कई वर्ष हो गये, बादमें यह बात मालूम हुई। जो चीज अपनी होती है, वह स्वतः प्रिय लगती है। 'हम भगवान् के हैं, भगवान् हमारे हैं'—यह मामूली बात नहीं है। यह बहुत ऊँचा भजन है। इसके समान कोई साधन नहीं है। 'हम भगवान् के हैं, भगवान् हमारे हैं'—यह पता लग गया तो अब हमारा दूसरा जन्म क्यों होगा?

\*\*\*

\*\*\*

\*\*\*

श्रोता—हम आपकी पुस्तकें पढ़ते हैं, प्रवचन सुनते हैं तो शान्ति मिलती है, लेकिन कभी-कभी मनके प्रतिकूल

अवस्थामें मनमें बहुत हलचल हो जाती है। यह न हो, इसके लिये क्या करें?

**स्वामीजी**—पुस्तकें पढ़नेसे जो शान्ति मिलती है, उस शान्तिको स्थायी रखो। ऊपरसे मिलनेवाली उस शान्तिको अपनी चीज बनाओ। वास्तवमें ऊपरकी शान्ति भीतरकी शान्तिको जगानेके लिये है। शान्ति आपका स्वरूप होनेसे स्वतः-स्वाभाविक है। अशान्ति संगसे पैदा होती है। काम-क्रोधादि दोष भी कुसंगसे पैदा होते हैं। आप मानते हैं कि मेरेमें काम-क्रोध थे, अब वे दूर हो गये, पर वास्तवमें मूलमें ही आपमें काम-क्रोध नहीं हैं।

प्रायः सत्संग करनेवाले ऊपरसे भाव भरते हैं। ऊपरसे भरे हुए भाव ठहरते नहीं। भीतरकी स्वीकृति ठहरती है। पुस्तकोंसे, सन्त-महात्माओंसे मिली हुई चीज हमारे भीतरके ज्ञानको जाग्रत् करनेके कामकी है। **बाहरसे मिलनेवाली बातें भीतरके भावोंको जगानेके लिये होती हैं। भीतरका भाव जाग्रत् होगा, तब असली लाभ होगा।** गुरु भी नया ज्ञान नहीं देता, प्रत्युत हमारे भीतरके ज्ञानको जाग्रत् करता है। भीतरसे हम परमात्माके अंश हैं। अतः हमारे भीतर कमी नहीं है। कमी ऊपरसे भरी हुई है। भीतरके भाव जाग्रत् होंगे तो वे जायेंगे नहीं, पर ऊपरसे भरे भाव ठहरेंगे नहीं। इसलिये भीतरसे यह भाव जाग्रत् करो कि हम भगवान्के अंश हैं—

**ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥**

(मानस, उत्तर. ११७/१)

**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।**

(गीता १५/७)

**‘अमृतस्य पुत्राः’**

(ऋग्वेद १०/१३/१; श्वेताश्वतरोपनिषद् २/५)



परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी वाणीपर आधारित  
'गीता प्रकाशन' का शीघ्र कल्याणकारी साहित्य

१. संजीवनी-सुधा—'गीता साधक-संजीवनी' पर आधारित शोधपूर्ण पुस्तक।
२. सीमाके भीतर असीम प्रकाश—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
३. बिन्दुमें सिन्धु—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
४. नये रास्ते, नयी दिशाएँ—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
५. अनन्तकी ओर—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
६. स्वातिकी बूँदें—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
७. अनुभव-वाणी—चुने हुए अनमोल वचन। अँग्रेजी-भाषान्तरसहित।
८. सहज गीता (अँग्रेजीमें भी)—नये पाठकोंके लिये 'साधक-संजीवनी' के अनुसार गीताका सरल हिन्दीमें भावार्थ।
९. हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं (गुजराती व अँग्रेजीमें भी)—इस प्रार्थनाके रहस्य तथा महत्त्वका अद्भुत वर्णन।
१०. कृपामयी भगवद्गीता (गुजरातीमें भी)—गीताकी महिमा और उसकी विलक्षणताका वर्णन।
११. लक्ष्य अब दूर नहीं (गुजरातीमें भी)—परमात्मप्राप्तिके विविध सुगम साधनोंका अनूठा संकलन।
१२. सहज समाधि भली (गुजरातीमें भी)—'चुप साधन' का विस्तृत विवेचन।
१३. अपने प्रभुको पहचानें—भगवान्के समग्ररूपका विस्तृत विवेचन।
१४. एक सन्तकी अमूल्य शिक्षा (क्या करें, क्या न करें)
१५. विलक्षण सन्त, विलक्षण वाणी—प० श्रीस्वामीजी महाराजकी वसीयत-सहित।
१६. गोरक्षा—हमारा परम कर्तव्य
१७. क्या करें, क्या न करें?—आचार-व्यवहार संबंधी शास्त्र-वचनोंका अनूठा संग्रह।
१८. भवन-भास्कर (परिशिष्ट-सहित)—वास्तुशास्त्रकी महत्त्वपूर्ण बातें।
१९. सुखपूर्वक जीनेकी कला—सर्वोपयोगी प्रश्नोत्तर।
२०. क्या आप ईश्वरको मानते हैं?—साधकोंके लिये चेतावनी।
२१. बोलनेवाली श्रीमद्भगवद्गीता (अर्थसहित)—इसे पढ़नेके साथ-साथ शुद्ध उच्चारणमें सुन भी सकते हैं।
२२. ग्लोब गीता—आकर्षक ग्लोबके आकारमें सम्पूर्ण गीता।

गीता प्रकाशन,  
कार्यालय—माया बाजार, पश्चिमी फाटक,  
गोरखपुर—273001 (उ०प्र०)  
फोन—09389593845; 07668312429  
e-mail: radhagovind10@gmail.com